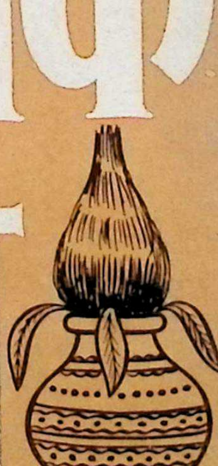
प्रसाद-साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि



डॉ० प्रेमदत्त शर्मा (एम.ए., पीएच.-डी)

प्रसाद-साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

डॉ० प्रेमदत्त शर्मा (एम. ए०, पीएच.-डी.)

जयपुर पुस्तक सदन

जयपुर पुस्तक सदन, जयपुर

- प्रथम संस्करण : दिसम्बर, १९६८
- मूल्य : सोलह रुपये
- प्रकाशक : जयपुर पुस्तक सदन,
  चौड़ा रास्ता, जयपुर
- मुद्रक : राजधानी मुद्रण शाला,
  तुर्कमान गेट, दिल्ली ।

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ राजस्थान विश्वविद्यालय की पीएच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत किया गया है। यद्यपि प्रसाद-साहित्य विगत तीन दशकों से विद्वानों और अध्येताओं के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है और इस बीच प्रसाद से सम्बन्धित अनेक पुष्टापुष्ट ग्रन्थ प्रकाश में आ चुके हैं, परन्तु प्रसाद के साहित्य मे जितने आलोचनात्मकक ग्रन्थों को जन्म दिया है, उतने गवेषणात्मक ग्रन्थों को नहीं। समय-समय पर प्रसाद के काव्य और नाटकों पर ही अनुसंधान कार्य हुआ है, परन्तु अभी तक प्रसाद के सर्वांगीण साहित्य को भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास नहीं हुआ है। प्रसाद साहित्य इतिहास, समाज, राजनीति, धर्म एवं नीति तथा दर्शन से प्रभावित है। भारतीय संस्कृति के परिपार्श्व में उक्त आधार-शिलाओं के माध्यम से प्रसाद-साहित्य का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत कार्य गवेषण और आलोचना का संपुतित स्वरूप है।

यह शोध-ग्रन्थ पाण्डित्य, सौजन्य एवं सारल्य की समन्वित प्रतिमूर्ति मेरे गुरुवर आचार्य प्रवर प्रो० डॉ० सरनामसिंह शर्मा 'अरुण', डी० लिट्० के निर्देशन में तैयार हुआ है। इन पृष्ठों में जो भी शक्ति है वह उन्हीं के श्रम और शिष्यवत्सलता का फल है—मेरी तो केवल सीमाएँ हैं। 'डॉक्टरेक्ट' की उपाधि से कहीं अधिक मैं अपनी उपलब्धि उनके स्नेह और आशीर्वाद का ही मानता हूं।

इस प्रबन्ध के प्रस्तुत करने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जिन सज्जनों से मुझे इस दिशा में मनोबल, प्रोत्साहन और सहायता मिली है मैं उनके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूं।

प्रबन्धगत त्रुटियाँ मेरी हैं और जो कुछ अत्रुटि है वह भगवत्कृपा या संयोग है। यदि पाठकों को इससे तनिक भी तोष मिला तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूँगा।

अन्त में मैं इस ग्रन्थ के प्रकाशक एवं श्री रोशनलाल जी जैन के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूं जिनके उत्साह और स्नेह ने मेरे श्रम को भोग्य वनाने में प्रथित सहयोग दिया।

बी-८९, जनता कालौनी
जयपुर (राजस्थान)

—प्रेमदत्त शर्मा

परम पूज्य गुरुदेव डॉ० सरनामसिंह शर्मा, डी. लिट्.

के

चरण-कमलों में

सादर

समर्पित

विषय-सूची

अध्याय १

भूमिका

संस्कृति शब्द का तात्पर्य

संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग के साथ संस्कृत की (डु) कृ (ञ्) धातु से बनता है। इसका शाब्दिक अर्थ साफ या परिष्कृत करना है[१]। संस्कृति का अर्थ हिन्दू संस्कृति विशेषांक में—परम्परागत अनुस्यूत संस्कार बतलाया गया है[२]। 'नालंदा विशाल शब्द सागर' में बतलाया गया है कि जाति या राष्ट्र की वे सब बातें, जो उसके (मनुष्य) मन, रुचि, आचार-विचार, कलाकौशल एवं सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास की सूचक रहती हैं, संस्कृति के अन्तर्गत आती हैं[३]। वृहत् हिन्दी-कोष में शुद्धि, सुधार, परिष्कार, निर्माण तथा पवित्रीकरण को संस्कृति कहा गया है[४]।

'संस्कृति' शब्द अंग्रेजी के 'कल्चर' का पर्याय है। 'कल्चर' शब्द 'कल्टीवेशन' का समानार्थ है[५]। कल्टीवेशन का अर्थ कृषि कर्म के साथ 'उन्नति'[६] और संवर्धन से भी है[७]।

---

१. हिन्दी-साहित्य कोष, पृ० ८०१

२. कल्याण (हिन्दू-संस्कृति विशेषांक), पृ० ४१

३. नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ० १३८८

४. वृहत् हिन्दी-कोष, पृ० १३९०

५. 'Etymologically the term culture is equivalent to cultivation'—
Dr. P. K. Achrya, Glories of Iadia, Introduction, 2nd Ed.

६. Dr. Raghuvira. comprehensive English-Hindi Dictionary,
Page 447 Edition June 1955.

७. V. S. Apte, Student's English-Sanskrit Dictionnry, Third Edition
Page 89,

संस्कृति की परिभाषा

संस्कृति के विषय में विद्वानों ने अनेक परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं, परन्तु वे आपस में एकमत नहीं हैं। फिर भी इनकी विचारधारा संस्कृति के कुछ पहलुओं को अवश्य बांध सकी है। डा० राधाकृष्णन् के अनुसार, 'संस्कृति—विवेक बुद्धि का, जीवन को भले प्रकार जान लेने का नाम है[१]।' डा० मंगलदेव शास्त्री का कथन है कि 'सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले उन-उन आदर्शों की समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिए[२]।' डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, संस्कृति को, मानव की विविध साधनाओं की परिणति में निहित मानते हैं[३]। रामधारीसिंह दिनकर संस्कृति को जीवन का तरीका मानते हैं और उन्हीं के शब्दों में, 'यह तरीका जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं[४]।' डा० सम्पूर्णानन्द के मतानुसार 'संस्कृति' वर्तमान अनुभूतियों एवं पुरातन अनुभूतियों के संस्कारों से निर्मित किसी समुदाय के दृष्टिकोण में निहित है[५]।' डा० सरनामसिंह शर्मा के अनुसार 'सामाजिक चेतना की समग्रता का सर्वोत्तम निर्वाह ही, जिसमें वैयक्तिकता विकार मुक्त होकर साधनाओं का श्रेष्ठतम आकलन करती है, संस्कृति है[६]। डा० सत्यकेतु विद्यालंकार चिन्तन द्वारा जीवन को कल्याणमय बनाने के प्रयत्नों के परिणाम को संस्कृति मानते हैं[७]। गुलाबराय जी संस्कृति को जातिगत संस्कारों में निहित मानते हैं[८]। मैथ्यू आर्नल्ड संसार में सर्वोत्तम बातों से परिचित होने को संस्कृति (Culture) कहते

---

१. अनु० विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी, 'स्वतन्त्रता और संस्कृति' (१९५५), पृ० ५३
२. मंगलदेव शास्त्री, भारतीय संस्कृति का विकास (वैदिकधारा), प्रथम संस्करण, पृ० ४
३. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल (निबन्ध संग्रह), प्रथम संस्करण, पृ० ६४
४. रामधारीसिंह 'दिनकर' संस्कृति के चार अध्याय, प्रथम संस्करण, पृ० ६५३
५. 'हिन्दू संस्कृति अंक' (कल्याण), पृ० ७०
६. डा० सरनामसिंह शर्मा, 'साहित्य, सिद्धान्त और समीक्षा', पृ० १४
७. डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० १९
८. गुलाबराय, भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, पृ० १

है[1]। टी० एस० इलियट ने संस्कृति को व्यक्तिगत, वर्गगत तथा समाजगत रूप में समझाने का प्रयत्न किया है[2]।

संस्कृति के सम्बन्ध में टायलर, मैकाइवर तथा पेज जैसे समाज-शास्त्रियों की विचार-धारा भी विचारणीय है। टायलर संस्कृति को जटिल समष्टि मानते हुए उसके अन्तर्गत ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून, प्रथा तथा अन्य क्षमताओं को सम्मिलित बतलाते हैं, जिन्हें मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है[3]। मैकाइवर और पेज के अनुसार संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में, कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन तथा आनन्द में पाये जाने वाले रहन-सहन और विचार के तरीकों में हमारी प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है[4]।

उक्त परिभाषाओं के देखने से विदित होता है कि किसी विद्वान् ने संस्कृति के उद्देश्यों का विवेचन किया है और किसी ने उसकी प्रवृत्ति की ओर संकेत किया है। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि संस्कृति व्यक्तिगत न होकर सामूहिक है, जिसका विकास संस्कारों से होता है।

---

१. 'Culture being a Pursuit of our total Perfection by means of getting to know, on all the matters which most concern us, the best which has been thought and said in the world, and thought this Knowledge turning a stream of fresh and free thought upon our stock notions and habits which we know fellow staunchly but mechanically —'

—Culture and Anarchy (Preface)

२. 'The Term culture has different associations according to whether we have in mind of Development of an individual, of a group or class, or of a whole Society.'

—Notes towards the definition of culture Page 21, 3rd ed.

३. 'Culture is that complex whole which includes knowledge, belief art, morals, law, custom and other capabilities aquired by man as a member of society.'

—E. B. Tylor, Premitive culture, ed. 1889 Page 1.

४. Culture is the expression of nature in our modes of living and of thinking in our every day intercourse in art, in literature in religion, in recreation and enjoyment.'

—Maciver & page, Society, Page 449,

संस्कृति का स्वरूप

समाज और संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह तो हो सकता है कि संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष से अपना सम्बन्ध न रखे, किन्तु यह नितान्त असम्भव है कि वह किसी जाति या समाज से अपना सम्बन्ध विच्छिन्न कर ले। संस्कृति का विकास सामूहिक प्रयत्नों के परिणातस्वरूप होता है। आगे आने वाली संतति इसके विकास में निरन्तर प्रयत्नशील रहती है। संस्कृति का विकास धीरे-धीरे होता है।

इस दीर्घकालीन साधन की पीठिका में एक परम्परा रहती है जिसका सम्बन्ध किसी देश विशेष से अवश्य रहता है। संस्कृति पर भौगोलिक वातावरण का प्रभाव भी रहता है। इसीलिए दो देशों की संस्कृति में भिन्नता पाई जाती है, परन्तु इस भिन्नता के साथ संस्कृति के कुछ उपकरण ऐसे हैं जो शाश्वत और व्यापक होते हैं। आदि मानव ने अपनी अनभिज्ञावस्था में बुद्धि और चिन्तन के परिणामस्वरूप प्राकृतिक शक्तियों पर विजय प्राप्त की, परन्तु इस विजय की प्राप्ति के पीछे एक शक्ति का नियन्त्रण था जो आदि मानव में भी था और आज भी पाया जाता है। प्रारम्भ में सांस्कृतिक उपादानों का स्वरूप स्थूल या अनगढ़ रहा होगा, परन्तु कालान्तर में उसका विकास होता गया।

संस्कृति के विकास में आदान-प्रदान का स्वभाव निहित होता है। पारस्परिक सम्पर्क से ही संस्कृति का विकास होता है। संस्कृति की शाश्वत दीर्घता, पारस्परिक सम्पर्कों पर निर्भर रहती है। भारतीय संस्कृति इसका प्रमाण है। मुसलमानों का प्रभुत्व भारत में स्थापित होने का प्रधान कारण हिन्दुओं की दूषित युद्ध-प्रणाली और अस्त्र-शस्त्रों की उनकी अनभिज्ञता थी। भारतीयों ने युग-प्रगति के साथ सम्पर्क स्थापित नहीं किया, इसी के परिणामस्वरूप विदेशी अपने नए युद्ध-सम्बन्धी आविष्कारों के साथ विजय प्राप्त कर सके। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—'हमें किसी सिद्धान्त का त्याग इसलिए नहीं करना चाहिए कि वह अभारतीय है। हमें विदेशी सिद्धान्त भी गुणों की कसौटी पर ग्रहण करने चाहिएं'[१]।'

संस्कृति का क्षेत्र

संस्कृति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसका सम्बन्ध मनुष्य के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक एवं कला आदि जीवन के विभिन्न पहलुओं से रहा है। मानव ने सामाजिक-सम्बन्धों के निर्वाह के लिए उसके विभिन्न पहलुओं को विकसित किया। उसने विवाह करके परिवार और समाज की स्थापना की। उसने

१. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, विचार और वितर्क, संस्करण १९५४, पृ० १२५

इन सामाजिक सम्बन्धों को दृढ़ बनाने के लिए अनेक प्रकार के नियमों का प्रतिपादन किया। सामाजिक सम्बन्धों को व्यापकता देने के लिए उसने अपने निकटवर्ती सम्बन्धों में विवाह करना निषेध समझा। परिवार का विस्तार कुल, जाति, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुंच गया। सामाजिक व्यवस्था के विकास के साथ-साथ संस्कृति के अन्य क्षेत्रों में भी विकास हुआ। राजनीतिक संस्था का विकास उस विन्दु पर पहुंच गया जहां आज का मानव-समाज किसी-न-किसी शासन-सूत्र से बद्ध है। मानव ने समाज के विकास के लिए जिस विषय को उपयोगी समझा उसको अपने आप से बांध लिया। उसने मनोरंजक आत्माभिव्यक्ति के लिए साहित्य और कला को जन्म दिया तथा आत्मतुष्टि के लिए धर्म का विकास किया। यह सभी संस्कृति के अंग संस्कार-जन्य हैं जिन्हें संस्कृति के क्षेत्र के अन्तर्गत समाविष्ट किया जा सकता है। संस्कृति का क्षेत्र व्यापक है। संस्कृति के स्थायित्व पर डा० सरनामसिंह का यह कथन ठीक ही है—'सभ्यताओं का विकास और विनाश हो सकता है, धर्मों का उत्थान और पतन हो सकता है, पर संस्कृति का मौलिक रूप चिरन्तन और चिरस्थायी है[1]।' संस्कृति के इन पहलुओं के विकास में देश की सभ्यता का प्रतिबिंब दृष्टिगोचर होता है।

संस्कृति और सभ्यता

संस्कृति विश्व-चेतना के मानस में अन्तर्निहित है, जबकि सभ्यता का अस्तित्व प्रकृति के बाह्य उपादानों पर निर्भर है। सभ्यता को सरलता से अपनाया जा सकता है। सभ्यता सामाजिक और आर्थिक वातावरण से प्रभावित होती है। सभ्यता का निवास संस्कृति के मूल में होता है। रहन-सहन की सभ्य अवस्था का अनुभव होने पर मनुष्य स्वयं संस्कारवान बनने लगता है। भोजन, वस्त्र, मकान, महल, मोटर, वायुयान आदि साधन सभ्यता के या कुलीनता के उपकरण हैं, परन्तु इनके प्रयोग की रीति में संस्कृति समाहित रहती है। दिनकर ने ठीक ही कहा है—'संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा महीन चीज होती है। यह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहती है जैसे दूध में मक्खन या फूलों में सुगन्ध[2]।' डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सभ्यता और संस्कृति के अन्तर का सम्यक् स्पष्टीकरण किया है। उनके अनुसार सभ्यता समाज की वाह्य व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति अन्तर के विकास का[3]। डा० सरनामसिंह शर्मा के शब्दों में 'संस्कृति व्यापक है और सभ्यता संकोचशील, संस्कृति के मूल तत्व परिवर्तन से ऊपर है पर सभ्यता परिवर्तनशील है[4]।' इस प्रकार संस्कृति अपने आप

१. डा० सरनामसिंह शर्मा, साहित्य, सिद्धान्त और समीक्षा, पृ० २१
२. रामधारीसिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, प्रथम संस्करण, पृ० ६५२
३. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, विचार और वितर्क, पृ० १२३
४. डा० सरनामसिंह शर्मा, 'साहित्य, सिद्धान्त और समीक्षा', पृ० २४

में सूक्ष्म तत्व और सभ्यता बाह्य और भौतिक पक्ष को ग्रहण किए हुए है। एक भवन-निर्माण में ईंट और पत्थर का प्रयोग सभ्यता के उपकरण सदृश हैं और उसमें कला का समावेश संस्कृति का रूप है। संस्कृति का निर्माण सभ्यता के परिवेश में होता है। उदाहरणार्थ प्राचीन काल में जब वैज्ञानिक सुविधाओं और बुद्धिवादिता का अभाव था उस समय जीवन में पारस्परिक जटिलता का अस्तित्व कम था, परन्तु आज के इस भौतिकतावादी युग में सभ्यता के विकास के साथ मानव अपनी मानवता को भूलता जा रहा है। उसकी स्वार्थ-भावना ने प्रबल रूप धारण कर लिया है । उसकी अन्य भावनायें उसी में डूब जाती हैं। इस भौतिकतावादी युग की यह क्रान्ति, संस्कृति का नया कदम है जो सभ्यता के बाह्य परिवेश पर आधारित है।

संस्कृति की अभिव्यक्ति के तत्त्व

भारतीय दर्शन के अनुसार संस्कृति के पाँच अवयव (कर्म, दर्शन, इतिहास, वर्ण तथा रीतिरिवाज) हैं[1]। बाबू गुलाबराय संस्कृति का विस्तृत क्षेत्र मानते हुए उस के अन्तर्गत साहित्य, संगीत, कला, धर्म, दर्शन, लोकवार्ता तथा राजनीति का समावेश करते हैं[2]। विद्वानों द्वारा दिए गए संस्कृति के अंगों के आधार पर निष्कर्ष रूप में निम्न प्रमुख तत्वों को रख सकते हैं। इतिहास, समाज-संगठन, राजनीति, धर्म, दर्शन, शिक्षा और कला तथा साहित्य। संस्कृति की अभिव्यक्ति के उक्त तत्त्वों का परिचय तथा संस्कृति से उनका सम्बन्ध देखना आवश्यक है।

इतिहास

इतिहास संस्कृति का प्रमुख तत्त्व है। इतिहास भूतकाल की संस्कृति एवं समस्त घटनाओं का लेखा-जोखा करता है। इतिहास उस समय की प्रजा, शासक, सेनापति, सामन्त, राजनीतिज्ञों एवं धार्मिक मठाधीशों के सभी प्रकार के कार्यों का विवेचन करता है। ऐतिहासिक सामग्री प्राचीनकाल की अनुश्रुति, प्राचीन भग्नावशेष, लेख, सिक्के तथा विदेशियों द्वारा किये गये वर्णन पर आधारित होती है। इसी के द्वारा उस समय की संस्कृति जानी जा सकती है। प्राचीन काल के प्रागैतिहासिक युग से लेकर आधुनिक काल तक के इतिहास के अध्ययन से भारतीय संस्कृति का चित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत हो जाता है।

समाज-संगठन

समाज में संस्कृति का विकास होता है। सांस्कृतिक जीवन निर्वाह के लिए समाज-संगठन आवश्यक है। मनुष्य उसका निर्वाह, अपने कुल, ग्राम तथा जनसमूह

---

१. कल्याण, हिन्दू संस्कृति विशेषांक, पृ० ७६

२. गुलाबराय, भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, आत्म-निवेदन, पृ० १

से सम्पर्क स्थापित करने पर ही कर सकता है। समाज मनुष्य का संगठन है। संस्कृति का विकास समाज में निहित है। अतः सांस्कृतिक जीवन-निर्वाह के लिये समाज-संगठन आवश्यक है। समाज के अन्तर्गत कुटुम्ब, वैवाहिक-सम्बन्ध, जाति, वर्ण-व्यवस्था, आश्रम, संस्कार तथा स्थान आदि विषयों का विवेचन होता है और इन्हीं व्यवस्थाओं में संस्कृति का उद्गम है। सांस्कृतिक-चेतना समाज में रहती है तथा एक आदर्श समाज ही सांस्कृतिक चेतना को विकसित करने में सहायक होता है। इस प्रकार समाज-संगठन में ही सांस्कृतिक विकास समाविष्ट होता है।

राजनीति

सांस्कृतिक विकास के लिये राजनीति का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। राजनीति के अन्तर्गत, राजा और प्रजा के सम्बन्धों, प्रजा के अधिकार तथा कर्त्तव्यों, शासकों के अधिकारों, राज्य के तत्त्वों तथा उनके क्षेत्रों, विभिन्न प्रकार की शासन-प्रणालियों आदि का विश्लेषण होता है। कल (बीता हुआ) की राजनीति आज का इतिहास है और आज की राजनीतिक कल (आने वाले) के इतिहास की सामग्री प्रस्तुत करेगी। समय के साथ राजनीति भी बदलती रही है। समय-समय पर उसमें भी नये परिवर्तन आवश्यक हो गये। शासक के साथ-साथ ही शासन-प्रणाली भी परिवर्तित होती रही है। विश्व की समस्त सभ्यताओं से सांस्कृतिक विकास में ये राजनीतिक परिवर्तन सहायक सिद्ध हुए हैं। संस्कृति और सभ्यता से सम्बन्धित राजनीति की घनिष्ठता को किसी प्रकार भुलाया नहीं जा सकता।

धर्म एवं नीति

वैशेषिक दर्शन-प्रणेता कणाद के अनुसार धर्म—'यतोऽभ्युदय निःश्रेयस्यसिद्धिः स धर्मः' अर्थात् जिसके अभ्युदय से निःश्रेय की सिद्धि हो वह धर्म है[1]। श्री शिवदत्त ज्ञानी के अनुसार 'धर्म उन सिद्धान्तों, तत्त्वों तथा जीवन-प्रणाली को कह सकते हैं जिससे मानव-जाति परमात्मा-प्रदत्त शक्तियों के विकास से अपना ऐहिक जीवन सुखी बना सके, साथ ही मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा, जन्म-मरण के झंझटों में न पड़ कर शान्ति व सुख का अनुभव कर सके[2]।'

धर्म की व्यवस्था करने के उपरान्त यह जानना आवश्यक है कि धर्म और संस्कृति में क्या सम्बन्ध है। संस्कृति समाज को सन्मार्ग द्वारा उन्नति की ओर अग्रसर करती

---

१. वैशेषिक १।१।२

२. शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति संस्करण सन् १९४४, पृ० २०२

है। संस्कृति और धर्म का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यहाँ तक कि कुछ लोग दोनों को एक ही मानने के भ्रम में पड़ जाते हैं[1]। परन्तु गुलाबराय जी दोनों का अन्तर बतलाते हुए लिखते हैं—'धर्म में श्रुति, स्मृतियों और पुराण ग्रन्थों का आधार रहता है, किन्तु संस्कृति में परम्परा का आधार रहता है[2]।' धर्म में रागात्मक पक्ष की प्रवलता रहती है। यही रागात्मक पक्ष संस्कृति की आस्था है। इस आस्था के अनेक रूपों में व्यक्ति-धर्म, परिवार-धर्म, समाज-धर्म तथा लोक-धर्म (राष्ट्र-धर्म) का परिचय मिलता है। नीति का सम्बन्ध मानव को उचित मार्ग की ओर उन्मुख करने से है। मनुष्य अपनी शैशव अवस्था पार करते ही कर्त्तव्यों के बन्धन में बंध जाता है। वह उनसे मुक्त नहीं हो सकता। नीति के अनेक भेद किये जा सकते हैं—पारिवारिक नीति, सामाजिक नीति, आर्थिक नीति और राजनीति उनमें से प्रमुख हैं।

दर्शन

व्युत्पत्ति की दृष्टि से दर्शन का अर्थ 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' अर्थात् जिस के द्वारा देखा जाय। कौन पदार्थ देखा जाय? हम कौन हैं? कहाँ से आये हैं? इस सर्वतो दृश्यमान जगत् का सच्चा स्वरूप क्या है? वह चेतन है या अचेतन? इस संसार में हमारे लिए कौन से कार्य कर्त्तव्य हैं? जीवन को सुचारु रूप से बिताने के लिए कौन से सुन्दर साधन मार्ग हैं आदि प्रश्नों का समुचित उत्तर देना दर्शन का प्रधान ध्येय है[3]। दर्शन का संस्कृति से घनिष्ठ संबंध है। दर्शन जीवन का आधार है। जीवन के प्रत्येक पहलू पर दर्शन का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। 'दर्शन' जीव, जगत्, ब्रह्म और जीवन के गूढ़ तथ्यों से सम्बन्धित है। जिन पर वैदिककाल की संस्कृति से लेकर आधुनिक काल तक विचार होता आ रहा है। दर्शन का संबंध विश्लेषणात्मक विवेचन से है। इसमें चिन्तनपक्ष की प्रधानता रहती है।

शिक्षा और कला

समाज में शिक्षा की प्रक्रिया प्राचीनकाल से चली आ रही है। शिक्षा की प्रथम सीढ़ी माता-पिता हैं। बालक सर्वप्रथम उन्हीं से ज्ञान प्राप्त करता है। उसके उपरान्त वह विधिवत् रूप से ज्ञानोपार्जन करता है। प्राचीनकाल में ज्ञानोपार्जन की व्यवस्था गुरुकुलों पर ही आधारित थी। गुरुकुलों में कुलपति या गुरु का बर्ताव बालक के साथ पुत्र सदृश रहता था। इसका प्राचीन रूप संकुचित था। उस समय सामाजिक संघर्ष

---

१. दे० कल्याण के हिन्दू संस्कृति अंक में पं० श्री हरिबक्ष जोशी का लेख, पृ० १५८-१६१

२. गुलाबराय, भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, संस्करण सन् १९५६, पृ० १

३. पं० बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ० ५

इतने विकसित नहीं होने पाये थे जैसे वाद में हुए।

शिक्षा संस्कृति के व्यावहारिक पक्ष से सम्वन्धित है। यह मानव को विकसित अवस्था तक पहुंचाने में सहायक सिद्ध होती है। शिक्षा मानव के भावों और विचारों को परिष्कृत करती है। इसी दृष्टि से इसका अध्ययन संस्कृति की अभिव्यक्ति के रूप में आवश्यक है।

कला में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति निहित होती है। संस्कृति किसी कार्य की प्रकृति विशेष में निहित होती है। इसीलिये कला का महत्व संस्कृति के प्रत्येक पहलू में निहित होता है। विभिन्न कालों में कला का विकास हमारे सम्मुख सांस्कृतिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। कला का रूप जीवन के लिये उपयोगी और प्रभावशाली होता है। ललित कलाएँ तो हमारे सांस्कृतिक स्तर का निर्धारण करती हैं।

साहित्य

साहित्य संचित ज्ञान राशि का मूर्त रूप है। इसीलिये वह किसी देश या काल की संस्कृति के ज्ञान का सर्वाधिक विश्वस्त और प्रामाणिक आधार होता है। साहित्य में संस्कृति के जातीय मनोभाव सुरक्षित रहते हैं। दर्शन का सत्य जब सौन्दर्य के संयोग से सज्जित होकर अपने शिवत्व की अभिव्यक्ति के लिए मचल पड़ता है तभी उच्चकोटि के साहित्य की सर्जना होती है। यह कहना किसी सीमा तक सत्य ही है कि साहित्य संस्कृति का वाहन है। इसमें संस्कृति का मनोरम इतिहास अंकित रहता है। किसी जाति विशेष का साहित्य उसके विचारों और भावनाओं के इतिहास का परिचय देता है। डा० राजेन्द्र प्रसाद साहित्य को सांस्कृतिक उत्थान-पतन की कसौटी मानते हुए कहते हैं, 'साहित्य मानव जाति के उच्च से उच्च और सुन्दर से सुन्दर विचारों तथा भावों का वह गुच्छा है, जिसकी बाहरी सुन्दरता और भीतरी सुगन्धि दोनों ही मन को मोह लेते हैं। कोई जाति तब तक बड़ी नहीं हो सकती; जब तक उसके भाव और विचार उन्नत न हों। जब भाव और विचार उन्नत होंगे, तब उनका विकास उस जाति के साहित्य के रूप में ही हो सकता है[१]। जातीय संस्कारों की समाप्ति ही संस्कृति है। इसी कारण साहित्य परोक्ष रूप से जातीय संस्कारों के परिचायक का कार्य करता है।

इस प्रकार सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के उक्त तत्व संस्कृति के संश्लिष्ट रूप का निर्माण करते हैं।

साहित्य और संस्कृति

साहित्य और संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। संस्कृति मनुष्य के धर्म, वाता-

---

१. डा० राजेन्द्र प्रसाद, साहित्य, शिक्षा और संस्कृति, पृ० १०

वरण ग्रौर संस्कारों से प्रेरित होती है । साहित्य, समाज, धर्म एवं काल से प्रभावित होता है। साहित्य का स्वतन्त्र व्यक्तित्व होता है । फिर भी वह ग्रपने देश की भूत ग्रौर भविष्य की संस्कृति से सम्बन्धित रहता है। मनुष्य किसी विषय पर सोच सकता है, उसका रस ले सकता है, पर साहित्यकार उसे ग्रपने विचारों से प्रदर्शित करता है। संस्कृति का रूप भी साहित्य के साथ बदलता है। एक प्रकार से यह कहना उचित ही होगा कि साहित्य संस्कृति का बाहन है। मनुष्य के मानसिक विकास के साथ संस्कृति भी ग्रपना विस्तृत रूप धारण कर लेती है तथा साहित्य उसे प्रकाश में लाने में सहायक होता है। डा० सरनामसिंह ने साहित्य को संस्कृति का इतिहास कहकर उसे ग्रतीत का प्रतिबिम्ब तथा 'ग्रनागत का प्रदीप' माना है।[1] साहित्य को संस्कृति का दर्पण कहा जा सकता है।

साहित्य समन्वय की भावना संस्कृति के निर्माण में सहायक हुई है। समय के साथ धर्म, दर्शन ग्रौर समाज के विभिन्न पात्रों में कई प्रकार के महाभेद प्रचलित रहे हैं, परन्तु उन सब में समन्वय की भावना ही उन्हें प्रगति के पथ की ग्रोर ले जा रही है।

साहित्य ग्रपने देश की संस्कृति को एक सूत्र में बांधता है । साहित्य ही संस्कृति के विकसित होने में मार्गप्रदर्शक का कार्य करता है । 'किसी भी देश की संस्कृति तब तक समझी नहीं जा सकती, जब तक कि वहाँ के विभिन्न शास्त्र, विद्या, कला ग्रादि भली-भाँति जान न लिये जाएँ[2] ।'

साहित्य युग से प्रभावित होता है । साहित्यकार प्राचीन मानदण्डों के साथ-साथ नवीन मानदण्डों की स्थापना करते हुये एक नये युग का निर्माण करता है।

साहित्यकार ग्रौर उसका युग

सामान्यतया साहित्य के तीन रूप देखने में ग्राते हैं, सार्वकालिक साहित्य, युग-साहित्य एवं दैनिक साहित्य। ग्रालोचक केवल उसी साहित्य को साहित्य कहते हैं जिसका कोई स्थायी मूल्य होता है। इस दृष्टि से कोई साहित्य एकदम व्यर्थ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि स्थायित्व का कुछ-न-कुछ ग्रंश दैनिक साहित्य तक में रहता है, किन्तु दैनिक साहित्य कुछ समय के लिए ग्रपना जलवा दिखा कर विस्मृति के महासागर में डूब जाता है, ग्रतएव उसे वास्तव में साहित्य संज्ञा से ग्रभिहित करना उचित नहीं है, ग्रन्यथा चटनी, चूरन, सिनेमा ग्रादि के विज्ञापन भी 'साहित्य' संज्ञा प्राप्त करके साहित्य के पावन ग्रभिधान को कलंकित कर सकते हैं।

---

१. डा० सरनामसिंह शर्मा, साहित्य, सिद्धान्त ग्रौर समीक्षा, पृ० १९
२. शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति संस्करण १९४४, पृ० २३

स्थायित्व का तात्पर्य 'सत्य' से है। साहित्य-मर्मज्ञों ने सत्य को (मेरा अभिप्राय साहित्यिक सत्य से है) दार्शनिक या वैज्ञानिक सत्य से विशेषता प्रदान की है। वैज्ञानिक का सत्य प्रयोग-सिद्ध दृश्यात्मक सत्य है, और दार्शनिक का सत्य चिन्तन की पीठिका है, किन्तु साहित्यकार का सत्य वह संभाव्य सत्ता है जिसकी प्रतिष्ठा अनुभूति-लोक में होती है और जो कल्पना के सम्पर्क से शब्दों में अभिव्यक्त होता है। फूल में वैज्ञानिक के लिए हँसी का कहीं नाम भी नहीं है और न वह हँसी दार्शनिक को ही दृष्टि-गोचर होती है, केवल साहित्यकार की अनुभूति में उसकी भाव-सृष्टि में ही उस हँसी की सर्जना दिखाई पड़ती है। यही कारण है कि फूल की खिलखिलाहट के साथ कवि-हृदय भी खिल उठता है। कवि वस्तु-लोक को, भावलोक में अनुभावित करके जो कुछ सहृदय पाठकों को देता है उससे वे भी उसी प्रकार प्रभावित होते हैं, जिस प्रकार कवि स्वयं होता है।

साहित्यिक सत्य की यह स्थिति 'शिव और सुन्दर' से संयुक्त रहती है। साहित्य में उस सत्य का प्रायः कोई मूल्य नहीं होता जो शिवत्व के विहीन है। शिवत्व ही साहित्य का उद्देश्य है, लक्ष्य है। शिवत्व ही साहित्यिक सत्य को विलुप्त होने से बचाता है और उसी साहित्य की प्रतिष्ठा होती है। इस शिवत्व का अपना मूल्य है। यह सत्योपेत होता है किन्तु इसका सौन्दर्योपेत होना भी आवश्यक है। जहां शिवत्व से सत्य की प्रतिष्ठा होती है वहाँ सौन्दर्य से वह आकर्षक बनता है। अतएव साहित्य, 'सत्य और शिव' के साथ सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है।

सत्य, शिव और सुन्दर का समन्वित रूप सुसाहित्य की एक धारा होती है। जिस प्रकार नदी की धारा में स्थानीय प्रमाद व्यक्त हुए बिना नहीं रह सकता उसी प्रकार साहित्य-धारा में युग-प्रभाव व्यक्य हुए बिना नहीं रह सकता। यह कहा जाता है कि कवि युग दृष्टा होता है और यह बिल्कुल ठीक है, किन्तु यह कहना भी उचित न होगा कि कवि या साहित्यकार युगसृष्टा भी होता है, इसलिए कि वह युग के प्रभाव को अपनी कृतियों में समाविष्ट करके परोक्ष रूप से एक संदेश दे जाता है जिससे युगीन क्रान्ति को जन्म मिलता है। उदाहरण के लिए रूसो और वालतयर के साहित्य को ले सकते हैं जिससे फ्रांस में एक बड़ी क्रान्ति का उद्भव हुआ था। इसी प्रकार तुलसी के साहित्य को भी उदाहृत किया जा सकता है। तुलसी ने अपने साहित्य से सामाजिक जीवन में जो क्रान्ति प्रस्तुत की थी उससे भारतीय जन-जीवन का इतिहास अपरिचित नहीं है। और तो और, प्रेमचन्द का साहित्य भी इसका अच्छा उदाहरण है। वर्तमान युग प्रेमचन्द की साहित्यिक क्रान्ति के फल का जो उपयोग कर रहा है उसे प्रेमचन्द के पाठक उपेक्षा-भरी दृष्टि से नहीं देख सकते।

प्रसाद जैसे युग-प्रवर्तक साहित्यकार के अध्ययन के लिए उसके युग का अध्ययन

करना परमावश्यक है । कहा तो यह जाता है कि साहित्यकार को युग निर्मित करता है, किन्तु यह कहना भी उतना ही सत्य है कि युग को साहित्यकार भी निर्मित करता है । रूसो और वाल्तेयर का उदाहरण इसका प्रमाण है । तुलसीदास भी इसी बात को सिद्ध करते हैं । अतएव युग और साहित्यकार का अन्योन्यश्रय संबंध मानना ही अधिक समीचीन है ।

प्रसाद-युग

इसमें संदेह नहीं कि प्रसाद ने युग का प्रवर्तन किया, किन्तु यह बात भी संदिग्ध नहीं है कि प्रसाद की साहित्यिक सृष्टि की पृष्ठभूमि में उनके युग की प्रधानता है । इस दृष्टि से प्रसाद को युगदृष्टा और युगसृष्टा दोनों ही नामों से अभिहित करना समीचीन है ।

प्रसाद ने द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता को सम्भवतः बड़ी चिन्ता से देखा था । शृंगार के बहिष्कार से प्रसाद को बड़ा असन्तोष था । अब न तो रीतिकाल के सजीव रहने का प्रश्न था और न अंग्रेजी के सम्पर्क से बने हुए वातावरण की उपेक्षा ही की जा सकती थी । इसमें सन्देह नहीं कि रीतिकाल में शृंगार का स्वरूप अधिक स्थूल हो गया था किन्तु द्विवेदी जैसे पावनतावादियों को उसमें अधिक दुर्गन्ध आने लगी थी । द्विवेदी जी ने शृंगार के परिष्कार के स्थान पर बहिष्कार का पक्ष लिया किन्तु जीवन में प्रमुखता से व्याप्त रहने वाला प्रेमतत्व, फ्रायड के अनुसार जीवन की प्रत्येक क्रिया को प्रेरित करने वाला कामतत्व, सहसा साहित्यिक क्षेत्र से निकाल दिया जाय, ऐसा न तो सम्भव है और न ऐसे किसी प्रयत्न को साहित्यकार का भावुक हृदय सहन ही कर सकता है । शृंगार के विरुद्ध द्विवेदीजी की प्रतिक्रिया देखकर प्रसाद का भावुक हृदय मानो तिलमिला उठा था । इसीलिए वे अपने साहित्य में शृंगार का पक्ष लेकर उठ खड़े हुए । किन्तु प्रसाद का शृंगार किसी कामुक का प्रलाप नहीं है, मानसिक ग्रन्थियों की प्रेरणा नहीं है । वह एक भावुक हृदय की तरल साहित्यिक अभिव्यंजना है जिसमें स्थूलता के स्थान पर सूक्ष्मता और विकृति के स्थान पर प्रांजलता है । प्रसाद सुन्दरता के पक्षपाती थे किन्तु सत्य और शिव के पक्षपाती भी थे । वे केवल सुन्दर सत्य देखना नहीं चाहते थे वरन् सुन्दर सत्य को शिवरूप में व्यक्त कर देखना चाहते थे । इसीलिए उनकी रचनाओं में शृंगार की बड़ी परिष्कृत झांकियां दिखाई पड़ती हैं । मनु को देख कर श्रद्धा की सम्मोहनात्मक अभिव्यक्ति में प्रेमी हृदय की एक झांकी देखिए—

> 'कौन तुम ? संस्कृति-जलनिधि तीर
> तरंगों से फेंकी मणि एक,

कर रहे निर्जन का चुपचाप
प्रभा की धारा से अभिषेक[1] ?'

इसका अभिप्राय यह नहीं कि उन्होंने शृंगारिक वास्तविकता को दबा दिया था। वे यथावश्यक शृंगार का रूप प्रस्तुत करते थे। 'चिन्ता सर्ग' में देव विलास का चित्र प्रस्तुत करते हुए देवियों के रूप का जो वर्णन किया है उस में स्थूलता तथा विकृति और घोर विलास का निरूपण होते हुए भी अश्लीलता कहीं नहीं है। इसमें निहित है प्रसाद का वह दृष्टिकोण जिसे हम द्विवेदी युग के प्रति हुई प्रतिक्रिया के रूप में देख सकते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि द्विवेदीजी ने भाषा के सुधार के मार्ग में बड़ा ठोस कदम उठाया था और छायावाद ने जो मार्जित भाषा साहित्य को दी उसमें द्विवेदी जी के परोक्ष योग की झाँकी पा लेना असम्भव नहीं है, किन्तु द्विवेदी-कालीन साहित्य की भाव-पीठिका प्रसाद के युग में जीवन के लक्षण व्यक्त नहीं कर सकती थी। द्विवेदी कालीन साहित्यिक अभिव्यक्ति युग-जीवन से सम्पृक्त नहीं थी। उसमें संस्कृत-निष्ठाता होते हुए भी बौद्धिक वस्तुपरता थी; एक विचित्र रूढ़ि-निष्ठा थी जिसे शैले और कीट्स के प्रशंसक कभी स्वीकार नहीं कर सकते थे। प्रसाद यह जानते थे कि अब भारतीय संस्कृति सो कर जन-जीवन को प्राणवान नहीं रख सकती। यदि उसे जन-जीवन में प्राण फूंकना है तो उसे रूढ़ियों का पक्ष छोड़कर समय को दाद देनी होगी। परिस्थितियों का पक्ष लेकर उनका सामना करना होगा। इसीलिए 'कामायनी' जैसी रचना का प्रादुर्भाव हुआ। जिसकी एक बड़ी विशेषता यह है कि उसमें सब कुछ 'भारतीय' दृष्टिकोण होते हुए भी सब कुछ 'भारतीय' नहीं है। कामायनी मैं जो संस्कृति पाठक की आँखों के सामने प्रस्तुत होती है उसके प्राणों में भारतीयता और रूप में पूर्व और पश्चिम को 'संकरता' है। स्पष्टतः यह प्रसाद का प्रतिक्रियात्मक दृष्टिकोण है, जो साधु था या असाधु, यह तो बड़े विवाद का विषय है, किन्तु युग-परिस्थितियों में यह आवश्यक था, इसीलिए प्रसाद ने उस दृष्टिकोण को अपनाया।

प्रसाद भारतीय संस्कृति के पक्षपाती थे, किन्तु वे रूढ़ियों के पक्षपाती नहीं थे। उन्हें 'प्रगति' बड़ी प्रिय थी, चाहे वह सामाजिक क्षेत्र में हो अथवा साहित्यिक क्षेत्र में। उन्होंने अपने चारों ओर एक ऐसा वातावरण पाया जो या तो साहित्य को रूढ़ियों के दलदल में धकेल रहा था या साहित्य की प्रगति को बुरी तरह अवरुद्ध कर रहा था। द्विवेदी-युग की साहित्यिक सृष्टि में इन दोनों का रूप दिखाई दे सकता है। हां, रूढ़ियों का ह्रास अवश्य हो गया था, किन्तु उसकी परम्परा विलुप्त नहीं हुई थी। द्विवेदी जी ने जो वातावरण पैदा किया था उसमें भी साहित्यिक प्रगति के अधिक

१. कामायनी, नवम संस्करण, पृ० ४५

शुभ लक्षण दिखाई नहीं दे रहे थे । द्विवेदी जी के प्रयत्नों में समय की गति की अवहेलना थी । इसमें संदेह नहीं कि उनके प्रयत्नों में रीतिकालीन रूढ़ियों से मुक्ति पाने की कामना भी थी । किन्तु सामाजिक चेतना की उपेक्षा कदापि नहीं की जा सकती थी । प्रसाद को द्विवेदी जी का तत्कालीन वातावरण के प्रति उपेक्षा भाव रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ । इसीलिये उन्होंने एक नई दिशा की ओर अपना मार्ग निर्धारित किया जिसमें प्रगतिपरक दृष्टिकोण निहित था ।

प्रसाद के युग में प्रबन्ध-काव्य रचे जा रहे थे, किन्तु उनमें प्राचीनतावादी वातावरण अभी तक प्रस्तुत था । प्रसाद इतिहास के पक्षपाती थे, किन्तु वे इतिहास को रूढ़ियों के संग्रह के लिए उपयुक्त नहीं मानते थे । उन्होंने इतिहास का उपयोग समाज को नई दिशा और साहित्य को नया लक्ष्य देने के लिये किया । 'कामायनी' में इतिहास का जो कुछ भी सूत्र लिया गया है वह सांस्कृतिक इतिहास की एक बहुत बड़ी पीठिका होते हुए भी नवीन उद्देश्य से सम्पन्न है । इतिहास का यही रूप उनके नाटकों में है । उन्होंने प्रायः सभी ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं, किन्तु जिस प्रकार उनके नाटकों में शास्त्रीय दृष्टि से नवीनता है उसी प्रकार सामाजिक दृष्टि से भी है । प्रसाद के नाटकों की सामाजिक नवीनता इतिहास पर आधारित है, जो उनकी एक बड़ी भारी सामाजिक देन है ।

इस प्रगतिशील दृष्टिकोण के पीछे प्रसाद की वह जागरूकता है जो उनसे पहिले के साहित्यकारों ने इस पैमाने पर प्रायः नहीं दिखलाई थी । प्रसाद अपने युग के द्रष्टा ही नहीं सृष्टा और प्रहरी भी थे । इसीलिये उन्होंने द्विवेदीयुगीन काव्य-प्रवृत्तियों का अनुकरण न करते हुए अपनी मौलिक प्रतिभा का प्रदर्शन किया । उन्होंने भाषा और भाव दोनों ही दृष्टियों से एक नवीन मार्ग ग्रहण किया । उन्होंने अंग्रेजी ढंग की लाक्षणिकता का समावेश किया तथा वृत्तों के लिये नया मार्ग अपनाया । 'प्रेम-पथिक' और 'महाराणा का महत्व' भिन्न तुकान्त काव्य लिखकर नवीन छन्दों की परिपाटी चलाई । 'कामायनी' में प्रबन्ध-काव्य के लक्षणों के साथ-साथ नवीन मानदण्डों की स्थापना की ।

काव्य के क्षेत्र में एक नवीन काव्य-प्रवृत्ति का सृजन किया जो छायावाद के नाम से प्रख्यात हुई । प्रसाद इस छायावादी युग के प्रवर्त्तक कहलाये । छायावाद के सम्बन्ध में उनकी अपनी मान्यता थी कि—'छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर रहती है । ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्य, प्रकृति-विधान तथा उपचार-वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद ही की विशेषताएं हैं । अपने भीतर से मोती के पानी को अन्तर स्पर्श करके भाव

समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति की छाया कान्तिमयी होती है[1] ।' यह छायावाद द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक कविता की प्रतिक्रिया थी, जो प्राचीन संस्कृति और पाश्चात्य साहित्य के आधार पर विकसित हुई ।

नाटकों के क्षेत्र में प्रसाद ने 'विशाख' नाटक तक, भारतेन्दुयुगीन प्राचीन परम्पराओं का अनुसरण किया, परन्तु उत्तरकालीन नाटकों में अपनी प्रतिभा का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया । नाटकों में भारतीय संस्कृति के गौरव का विशेष ध्यान रखा गया । दृश्य और अंकों के बन्धन की प्राचीन नाट्य-परम्परा को तोड़ कर उसके स्थान पर नये ढंग के नाटकों की रचना की ।

उपन्यास के क्षेत्र में मानवीय दुर्बलताओं के चित्र प्रस्तुत करते हुए धार्मिक एवं सामाजिक बन्धनों से पीड़ित नारी के आदर्शों की प्रतिष्ठा की ।

इस प्रकार प्रसाद, काव्य के समान ही नाटक और कथा-साहित्य के क्षेत्र में भी नवीन प्रणालियों के अग्रदूत कहलाये । प्राचीन नाट्य-साहित्य अधिकतर अनुमोदित था । उसमें मौलिकता का अभाव रहता था । प्रसाद ने ऐतिहासिक माध्यम से नाटकों का सृजन किया । इस युग में प्रसाद-स्कूल नाम से एक अलग दल तैयार हुआ, जिसमें प्रसाद के नाटकों की अनुकरण प्रणाली थी । उन्होंने युग-पुरुष एवं पथ-प्रदर्शक के रूप में कविता, नाटक तथा साहित्य, निवन्ध आदि सभी क्षेत्रों में युग का प्रतिनिधित्व किया । इसी के परिणाम-स्वरूप कए नवीन युग का निर्माण हुआ, यह था प्रसाद-युग ।

प्रसाद के समकालीन साहित्य में युग प्रतिबिम्ब

१९वीं शताब्दी में ब्रह्म-समाज, आर्य-समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल-सोसायटी आदि धार्मिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलनों ने राजनीतिक जागृति का रूप धारण किया था । इन आन्दोलनों के तीन प्रमुख उद्देश्य थे—धार्मिक एवं सामाजिक रूढ़ियों का प्रत्यावर्तन, निर्धनता के कारण आर्थिक व्यवस्था के विरुद्ध आन्दोलन तथा विदेशी सत्ता के विरुद्ध आन्दोल। इन्हीं आन्दोलनों का प्रभाव सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से प्रसाद के समकालीन साहित्य पर विभिन्न रूपों में पड़ा ।

सामाजिक एवं धार्मिक प्रतिबिम्ब

सामाजिक क्षेत्र में जन-जागरण का प्रारम्भ हुआ । तत्कालीन साहित्यकारों ने यातायात, उद्योग तथा नई सभ्यता के विकास से फलित समाजिक समस्याओं को अपने साहित्य का केन्द्र बनाया । उन्होंने विधवा-विवाह, बाल-विवाह-निषेध, दहेज-प्रथा, वैश्या-वृत्ति, नारी शिक्षा आदि समस्याओं का चित्रण किया । इन समस्याओं के साथ-साथ उन्होंने जाति व्यवस्था, सम्मिलित कुटुम्ब-प्रणाली तथा अन्तर्जातीय विवाह का भी

१. जयशंकर प्रसाद, 'काव्य कला तथा अन्य निबन्ध', पृ० १२७

वर्णन प्रस्तुत किया। नारी-समस्याओं का चित्रण प्रेमचन्द, बेचन शर्मा 'उग्र', ऋषभचरण जैन तथा निरालाजी ने प्रमुख रूप से किया। उग्रजी ने नारी की परतन्त्रता का चित्र खींचते हुए बतलाया—'स्त्री खाने और कपड़े के दामों पर, मुफ्त के माल की तरह लूट लेने की चीज़ है। स्त्रियों का केवल यही कर्तव्य होता है कि जिसके साथ बिकें उसके लिए, उसके परिवार के लिए, उसके संसार के लिए, अपने तन-मन के लहू की एक-एक बूंद गार दें[1]।'

'भारतभारती' में मैथिलीशरण गुप्त ने सामयिक समाज का चित्र खींचा, जिसका उद्देश्य सुधार की प्रेरणा रही। उन्होंने राष्ट्र में अनमेल विवाह[2], कन्या-विक्रय[3], गृह-कलह[4], व्यभिचार-संबंधी[5] सामाकिक एवं धार्मिक समस्याओं का चित्रण

---

१. पांडेय बेचन शर्मा उग्र, शराबी, संस्करण १९६१, आत्माराम एन्ड सन्स, दिल्ली पृ० ६४

२. मैथिलीशरण गुप्त, 'भारत भारती', पृ० १४०

प्रतिवर्ष विधवा-वृन्द की संख्या निरन्तर बढ़ रही,
रोता कभी आकाश है फटती कभी हिलकर मही।
हा ! देख सकता कौन ऐसे दग्धकारी दाह को ?
फिर भी नहीं हम छोड़ते हैं बाल्य-वृद्ध-विवाह को ॥ २४९॥

३. वही, पृ० १४०

बिकता कहीं वर है यहाँ, बिकती तथा कन्या कहीं,
क्या अर्थ के आगे हमें अब इष्ट आत्मा भी नहीं ?
हा ! अर्थ, तेरे अर्थ हम करते अनेक अनर्थ हैं—
धिक्कार, फिर भी तो कहीं सम्पन्न और समर्थ हैं ? ॥२५१॥

४. वही, पृ० १४६

अब गृह कलह के अर्थ भारत-भूमि रणचण्डी बनी,
जीवन अशान्ति-पूर्ण सबके, दीन हो अथवा धनी ॥२७९॥

५. वही, पृ० १४७

व्यभिचार ऐसा बढ़ रहा है, देख लो, चाहे जहां,
जैसा शहर, अनुरूप उस के एक चकला है वहाँ।
जाकर जहां हम धर्म-धन खोते सदैव सहर्ष हैं,
होते पतित, कंगाल, रोगी सैकड़ों प्रतिवर्ष हैं ॥२८२॥

किया । कवि शंकर ने समाज के पाखण्ड एवं चरित्रभ्रष्ट नारी को पतन का कारण माना[1] ।

राजनीतिक प्रतिबिम्ब

राजनीतिक क्षेत्र में सन् १९१४ के पश्चात् प्रथम विश्व-युद्ध में अंग्रेजों ने भारतवासियों को राजनीतिक अधिकार प्रदान करने का आश्वासन दिया । इसके परिणाम-स्वरूप साहित्य में अंग्रेजों के प्रति जातीय घृणा के भाव कम दिखाई दिए, परन्तु स्वराज्य के न मिलने से असंतोष अवश्य प्रकट किया जाता रहा । अंग्रेजों के अत्याचार पर भारतीय साहित्यकारों का क्षोभ प्रकट हुए बिना नहीं रहा । असहयोग आन्दोलन से पूर्व ही श्री माखन लाल चतुर्वेदी ने भारत माता के मुख से जलियांवाला बाग के अत्याचार पर इन शब्दों में क्षोभ किया—

'मैं मुंह बन्दी' का हार लिए,
'मत लिखो' कठिन कंकण धारे ।
'भारत रक्षा' के शूलों की,
पांवों में बेड़ी झनकारे ।।
'हथियार न लो' कि हथकड़ियां,
रोलट का हिय में घाव लिए ।
डायर से अपने, लाल कटा,
कहती थी आंचल लाल किए[2] ।'

नारियों ने सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लिया । तत्कालीन साहित्यकारों में से प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में इस आन्दोलन को प्रमुखता दी । 'कर्मभूमि' उपन्यास में मुन्नी का बलात्कार एक राष्ट्रीय आन्दोलन का कारण बना । उसमें सलीम सोचने लगा—

---

१. शंकर सर्वस्व (सम्पादक पं० हरिशंकर शर्मा, प्रकाशक गयाप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा), पृ० ६२

अनमेल अनीति प्रचार करें, अपवित्र प्रथा पर प्यार करें,
(ड) खल-मण्डल का उपकार करें, बिगड़े न समाज सुधार करें ।
उपकार अनेक प्रकार करें, व्यभिचार सुकर्म विसार करें,
कवि शंकर नीच विचार करें, बिन बोध बुरे व्यवहार करें ।।१८।।

२. माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा', हिमकिरीटनी, सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, जार्ज टाउन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, पृ० ७९ ।

'इन टके के सैनिकों की इतनी हिम्मत क्यों हुई ? यह गोरे सिपाही इंगलैंड की निम्नतम श्रेणी के मनुष्य होते हैं । इनका इतना साहस कैसे हुआ ? इसीलिए कि भारत पराधीन है । यह लोग जानते हैं कि यहां के लोगों पर उनका आतंक छाया हुआ है । वह जो अनर्थ चाहें, करें । कोई चूं नहीं कर सकता ।

यह आतंक दूर करना होगा । इस पराधीनता की जंजीर को तोड़ना होगा[1] ।'

सन् १९२० के असहयोग-आन्दोलन के समय हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना सफल हो गई थी । अब गांधीजी का नेतृत्व सम्पूर्ण देश को प्राप्त हो गया । गाँधीजी ने असहयोग-आंदोलन से प्रभावित होकर अछूतोद्धार, नारी-उत्थान तथा कृषकों की दशा को सुधारने का प्रयत्न किया । तत्कालीन कवियों की रचनाओं में गांधीजीं की विचारधारा फूट पड़ी । धनवानों का धन गरीबों की थाती के रूप में रहे, यही गांधीवादी विचारधारा में सच्चे रामराज्य का आशय है । उसी की कल्पना गुप्तजी ने इस प्रकार की है—

'राज्य है प्रिये, भोग या भार
... ...

प्रजा की थाती रहे अखंड[2] ।'

दूसरी ओर साहित्यकारों ने गाँधीवादी विचारधारा का तिरस्कार करने वाले अंग्रेजी राज-भक्तों की संकीर्ण तथा दयनीय मनोवृत्तियों के चित्रण को भी अपनी रचनाओं में स्थान दिया है । 'चन्द हसीनों के खतूत' उपन्यास में इसी प्रकार की गाँधीवादी विचारधारा की आँधी से बचने के लिए कृष्णमुरारी का पिता उससे कहता है—

'गाँधी का अनुसरण करना मूर्खता है । हमें कमी किस बात की है जो हम अंग्रेजी राज्य का विरोध करें । जमींदार हम, धनी हम, विद्वान् हम, सरकार द्वारा सम्मानित हम । क्या स्वराज्य में कुछ बहुत मीठे लड्डू मिलेंगे ? यह बेवकूफी है[3] ।'

आर्थिक समाज का प्रतिबिम्ब

तत्कालीन साहित्यकार समाज की आर्थिक परिस्थितियों से अनभिज्ञ नहीं थे । उनसे आर्थिक शोषण तथा भारत-दुर्भिक्ष देखा न गया । आर्थिक शोषण का प्रमुख कारण अंग्रेजी सरकार द्वारा देशी रियासतों को संरक्षण देना था । देशी रियासतों के राजाओं

१. प्रेमचन्द कर्मभूमि, चतुर्थ संस्करण, पृ० ३० ।
२. मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, संस्करण, २००५, पृ० ४३
३. बेचन शर्मा उग्र, 'चन्द हसीनों के खतूत', आठवां संस्करण, पृ० ८१

या जागीरदारों का अस्तित्व अंग्रेजी सरकार की कृपा-दृष्टि पर निर्भर था। वे स्वराज्य प्राप्ति को अपने लिए घातक समझते थे, किन्तु जनता उनके काले कारनामों से पीड़ित थी। इसी से प्रेमचन्द के शब्दों में यह भाव चित्रित हुआ—'इनमें न दया है, न धर्म है। ये हमारे भाई-बंद, पर हमारी ही गरदन पर छुरी चलाते हैं। किसी ने जरा साफ कपड़े पहने, और ये लोग उनके सिर हुए। जिसे घूस न दीजिए, वही आपका दुश्मन है, चोरी कीजिए, डाके डालिए, घरों में आग लगाइए, गरीबों का गला काटिए कोई आपसे न बोलेगा[१]।'

इस युग में कृषकों की बड़ी दयनीय दशा थी, ये बड़े पीड़ित और शोषित थे। इस युग के कवियों एवं लेखकों ने उनकी इस दशा का चित्र अपने साहित्य में अंकित किया है। गुप्तजी ने इन कृषकों की दशा को देखकर 'किसान' नामक लघु काव्य लिखा जिसमें किसान की करुण कथा का मार्मिक चित्रण हुआ। अभागे कृषक के ही शब्दों में—

'बनता है दिन-रात हमारा रुधिर पसीना,
जाता है सर्वस्व सूद में फिर भी छीना।
हा हा खाना और सर्वदा आँसू पीना,
नहीं चाहिए नाथ! हमें अब ऐसा जीना[२]।'

गुप्तजी के अतिरिक्त गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने 'कृषक-क्रन्दन' और सियाराम शरण गुप्त ने 'अनाथ' में किसान और मजदूरों पर ज़मींदार, महाजन और राजपुरुषों के अत्याचारों का भी वर्णन किया।

रूस की अक्टूबर सन् १९१७ की क्रान्ति की सफलता ने गरीब एवं पराधीन देशों में नवीन जागृति का संचार किया। साहित्यकारों ने भी उस जागृति का चित्रण अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया।

प्रेमचन्द जी ने 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में किसानों को प्रोत्साहित करने के लिए एक नवयुवक किसान-पात्र ब्रह्मराज के शब्दों में ऐसी ही जागृति का चित्र दर्शित करवाया है—

'तुम लोग तो ऐसी हंसी उड़ाते हो, जाने काश्तकार कुछ होता ही नहीं, वह जमींदार की बेगार ही भरने के लिए बनाया गया है। लेकिन मेरे पास जो

१. प्रेमचन्द, 'रंगभूमि', प्रथम भाग, ग्यारहवाँ संस्करण, पृ० २८०

२. मैथिलीशरण गुप्त, 'किसान', प्रका० साहित्य सदन चिरगांव (झांसी) संस्करण षष्ठ, पृ० ११

पत्र आता है, उसमें लिखा है कि रूस देश में काश्तकारों ही का राज है, वह जो चाहते हैं, करते हैं। उसी के पास कोई देश बलगारी (बलगेरिया) है। वहाँ अभी हाल ही की बात है, काश्तकारों ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और अब किसानों और मजदूरों की पंचायत राज करती है[1]।'

देश में दुर्भिक्ष से पीड़ित जनता को कवियों ने त्राहि-त्राहि करते हुए देखा और सुना और उसी के चित्र प्रस्तुत किये। गुप्तजी ने 'भारत-भारती' में दुर्भिक्ष का चित्र उतारते हुए लिखा—

'दुर्भिक्ष मानों देह धर के घूमता सब ओर है,
हा! अन्न! हा! हा! अन्न का रव गूंजता घनघोर है।
सब विश्व में सौ वर्ष में रण में मरे जितने हरे,
जन चौगुने उनसे दस वर्ष में भूखों मरे[2]?'

प्रसाद साहित्य में युग-प्रतिबिम्ब

साहित्यकार युगद्रष्टा भी होता है और युग-प्रवर्तक भी, किन्तु सभी साहित्यकार युग-प्रवर्तक नहीं कहे जा सकते और न युग-प्रवर्तक की क्षमता सभी में निहित होती है, किन्तु प्रसाद, युग-प्रवर्तक साहित्यकार थे। उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में प्रधानतः और जन-जीवन में सामान्यतः युग को प्रेरित किया। उन्होंने अपने युग की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर अन्य तत्कालीन साहित्यकारों के समान उक्त समस्याओं का चयन करके उनका समाधान प्रस्तुत किया।

सामाजिक एवं आर्थिक प्रतिबिंब

युग-प्रभाव से भला प्रसाद जी कैसे मुक्त रह सकते थे। वे तो एक ऐसे कलाकार थे जिन्होंने इतिहास को भी युग-सेवा में नियोजित किया। उनके सामने समाज का पूरा मानचित्र खुला था। उन्होंने अपने साहित्य में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का चित्रण किया है। नारी-समस्या उनके साहित्य का प्रमुख स्वर रहा। उसका प्रमुख रूप प्रेम के साथ अभिव्यक्त हुआ जिसने पाठकों पर सम्मोहन मंत्र का काम किया।

मानववाद की हिलौरों में नारी का आत्म-सम्मान जागा और प्रसाद ने नारी की पीड़ा को अपने अन्तस्तल में बड़ी सहृदयता से अनुभव किया। पुरुष के अत्याचारों की पोल लेखक ने खोल के रख-दी। 'कंकाल' की यमुना के शब्दों में लेखक का हृदय बोल उठा—

---

१. प्रेमचन्द, प्रेमाश्रम, पृ० ४६

२. श्री मैथिलीशरण गुप्त, भारत-भारती, वर्तमान खण्ड, पृ० ८७

'कोई समाज और धर्म स्त्रियों का नहीं वहन ! सब पुरुषों के हैं । सब हृदय को कुचलने वाले क्रूर हैं—स्त्रियों का एक धर्म है, वह है आघात सहने की क्षमता रखना[१] ।' ध्रुवस्वामिनी नाटक में भी नारी की पीड़ित दशा का परिचय दिया गया है, 'पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु-सम्पति समझ कर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास वना लिया है[२] ।' नारी की पीड़ा उपचार की अपेक्षा रखती थी। प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी में उपचार का जो चित्र प्रस्तुत किया वह पूर्ण न होते हुए भी वहुत महत्वपूर्ण है। यही कुछ समस्याओं का हल था।

प्रसाद के समय में एक वड़ी समस्या, आर्थिक थी । उसने सम्मिलित कुटुम्व प्रणाली की जड़ें जर्जर कर डालीं। वे ढीली पडती गईं। घर के मुखिया का अधिकार भी शिथिल पड़ता गया । प्रसाद को यह शैथिल्य अखरा और उनका खेद इन्द्रदेव के स्वर में इस प्रकार प्रकट हुआ—

'मुझे धीरे २ विश्वास हो चला है कि भारतीय सम्मिलित कुटुम्व की योजना की कड़ियां चूर २ हो रही हैं। वह आर्थिक संगठन अब नहीं रहा जिसमें कुल का एक प्रमुख सबके मस्तिष्क का संचालन करता हुआ रुचि की समता का भार ठीक रखता था । मैंने जो अध्ययन किया है, उसके वल पर इतना तो कह सकता हूं कि हिन्दू-समाज की बहुत-सी दुर्बलताएँ इस खिचड़ी कानून के कारण हैं······प्रत्येक प्राणी, अपनी व्यक्तिगत चेतना का उदय होने पर, कुटुम्ब में रहने के कारण अपने को प्रतिकूल परिस्थिति में देखता है। इसलिए सम्मिलित कुटुम्व का जीवन दुखदायी हो रहा है[३] ।'

किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि प्रसाद प्राचीन परम्पराओं के अंधपक्षपाती थे। वे सम्मिलित कुटुम्व-प्रणाली के दोषों से भी अवगत थे। उनकी मीमांसा वासवी के मुख से कराते हुए उन्होंने अजातशत्रु में लिखा है—

'वच्चे बच्चों से खेले, हो स्नेह बढ़ा उनके मन में,
कुल लक्ष्मी हो मुदित, भरा हो मंगल, उनके जीवन में।
बन्धुवर्ग हो सम्मानित, हो सेवक सुखी, प्रणत अनुचर,
शान्ति पूर्ण हो स्वामी का मन, तो स्पृहणीय न हो क्यों घर[४] ।

प्रसाद भारत की समाज-व्यवस्था से भी प्रसन्न नहीं थे । कठोर सामाजिक वन्धनों ने व्यक्तियों को पीड़ित कर रखा था। वर्ण-व्यवस्था के कठोर आघातों से समाज

---

१. कंकाल, पृ० २७५-७६

२. ध्रुवस्वामिनी, पृ० २५

३. तितली, पृ० ११६-११७

४. अजातशत्रु पृ० ११२६।

पीड़ित हो रहा था । वर्ण-व्यवस्था समाज में संतुलन लाने के लिए थी, उसको विषम बनाने के लिए नहीं । भारतवर्ष आज वर्णों और जातियों के बन्धन में जकड़ कर कष्ट पा रहा है और दूसरों को कष्ट दे रहा है ।···प्रत्येक व्यक्ति अपनी छूंछी महता पर इतराता हुआ दूसरे को नीचा—अपने से छोटा—समझता है, जिससे सामाजिक विमषता का विषमय प्रभाव फैल रहा है[1] ।'

इस प्रकार प्रसाद जी ने अपने साहित्य में युगीन साहित्यिक प्रवृत्तियों को स्थान देते हुए आदर्श समाज की ओर संकेत किया है ।

धार्मिक प्रतिबिम्ब

प्रसाद ने धार्मिक क्षेत्र में तत्कालीन साहित्यकारों के समान ईश्वर को मानव के रूप में माना है । उन्होंने जहाँ राम और कृष्ण के चरित्रों को चित्रित किया है, उन स्थानों पर उनका रूप महापुरुषों का रखा है, जो आदर्शवादी एवं कर्मवादी हैं[2] । इससे ऐसा दिखाई देता है कि उन पर आर्य समाज आदि सुधारवादी आन्दोलनों का प्रभाव अवश्य था । प्रसाद ने अपनी साहित्यिक कृतियों में मन्दिर, मस्जिद, मठ, पूजा-पाठ के ढोंग का चित्रण किया है । समाज में साधुओं के नैतिक पतन को भी दिखलाया है । तुलनात्मक दृष्टि से देखते हुए प्रसाद भारतीय संस्कृति के प्राचीन स्तम्भ का ही आश्रय लेते हैं । किसी धर्म को वे तुच्छ या हेय नहीं मानते किन्तु उनके बंटवारों से सनातन धर्म का पलड़ा ही भारी रहता है, ऐसा आभास स्थान २ पर उनकी कृतियों में मिल सकता है । 'देवरथ' की सुजाता की उक्ति से यह बात पुष्ट हो सकती है । वह स्थविर से वौद्धधर्म के सम्बन्ध में कहती है—'तुम्हारा धर्म-शासन घरों को चूर-चूर करके विहारों की सृष्टि करता है—कुचक्र में जीवन फंसता है । पवित्र गार्हस्थ्य बन्धनों को तोड़ कर तुम लोग भी अपनी वासना-तृप्ति के अनुकूल ही तो एक घर बनाते हो[3] ।'

प्रत्येक युग में धर्म के नाम पर शोषण होता रहा है । तत्कालीन साहित्यकारों के साथ-साथ प्रसाद ने भी 'कंकाल' उपन्यास में धार्मिक शोषण, दंभ, पाखण्ड तथा छुआछूत की समस्या का चित्रण किया है । 'कंकाल' उपन्यास में धर्म के नाम पर जो

---

१. कंकाल' पृ० ४।२८१

२. कानन कुसुम, श्रीकृष्ण-जयन्ती, पृ० १२५

'मानव-जाति बनेगी गौधन, और जो,
वनकर गोपाल घुमावेंगे उन्हें—
वही कृष्ण हैं आते इस संसार में,
परमोज्ज्वल कर देंगे अपनी कान्ति से'

३. इन्द्रजाल, देवरथ, पृ० १०७

कार्य होते हैं उसके विषय में किशोरी सोचती है—

> 'भीतर जो पुण्य के नाम पर—धर्म के नाम पर—गुलछर्रे उड़ रहे हैं, उसमें वास्तविक भूखों का कितना भाग है, यह पत्तलों के लूटने का दृश्य बतला रहा है। भगवान् तुम अन्तर्यामी हो[1] ?'

राजनीतिक प्रतिबिम्ब

देश की राष्ट्रीय चेतना के प्रभाव से साहित्य अछूता नहीं रह सकता था। उस राष्ट्रीय चेतना की छाया प्रसाद साहित्य में भी प्रतिबिम्बित हुई। प्रसाद ने काव्य-क्षेत्र में भारतीय जनता को राष्ट्रीय जागरण के आवाह्न में प्रोत्साहित होने के लिए कविताएँ लिखीं। उन्होंने विदेशियों की विजय और अपनी पराजय को संबोधित करते हुए कहा—

> 'आज विजयी हो तुम,
> और हैं पराजित हम,
> तुम जो कहोगे, इतिहास भी कहेगा वही,
> किन्तु यह विजय प्रशंसा भरी मन की—
> एक छलना है[2]।'

इस पराजित अवस्था में प्रसाद ने अपने प्राचीन गौरव की ओर ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने युद्ध में उस रण-रंगिनी तलवार को जीवन-संगिनी बतलाया है—

> 'अरी रण-रंगिनी !
> सिक्खों के शौर्य भरे जीवन की संगिनी !
> कपिशा हुई थी लाल तेरा पानी पान कर।
> दुर्मद दुरन्त धर्म दस्युओं की त्रासिनी—
> निकल, चली जा तू प्रतारणा के कर से[3]।'

प्रसाद के नाटकों में राष्ट्रीय भावना, बड़ी दृढ़ता के साथ, पौराणिक तथा ऐतिहासिक आख्यानों के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। प्रसाद ने उनमें जो विदेशियों की पराजय दिखाई है उनमें राष्ट्रीय भावना की झलक स्पस्टतः दिखाई देती है। पात्रों में देश के प्रति उल्लास, वलिदान की भावना आदि राष्ट्रीय चेतना का आलोक प्रसारित करती हैं। संकटकालीन परिस्थितियों में देशवासी त्याग, एकता तथा आत्म-वलिदान

---

१. कंकाल, पृ० १।६९
२. लहर, शेरसिंह का शस्त्र समर्पण, पृ० ५२.
३. वही, पृ० ५१

की भावनाओं से प्रेरित होकर अपना जीवन हंसते हुए त्याग देते हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन में पुरुष ही नहीं नारी भी समय आने पर युद्ध का आवाहन करती है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में अलका नागरिकों को युद्ध में चलने के लिए जो प्रोत्साहन देती है उसमें राष्ट्रीयता का उद्बोधन स्पष्ट है—

'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती—
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती—
'अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है—बढ़े चलो, बढ़े चलो[1]।'

प्रसाद के युगान्तकारी साहित्य के निर्माण में जितना श्रेय युग की परिस्थितियों को है, उससे कहीं अधिक उनके व्यक्तित्व को है, क्योंकि व्यक्ति की सृजनात्मक प्रतिभा को क्रियाशील बनाने में बाह्य आवरण की अपेक्षा घरेलू वातावरण अधिक समर्थ होता है। अतः उनकी सांस्कृतिक चेतना को उद्बुद्ध करने वाले उपकरणों के रूप में उनके व्यक्तितव का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

भारतेन्दु के अवतार

प्रसाद एक महती विभूति थे जो भारतेन्दु के अधूरे छोड़े हुए कार्य को पूरा करने के लिये प्रसाद रूप में अवतरित हुए। भारतेन्दु ने साहित्य के सभी अंगों में नवीनता लाने का प्रयास किया था, परन्तु वे उसे ठोस न बना सके। यह कार्य प्रसाद ने किया। उन्होंने अपनी बौद्धिक प्रतिभा और पौरुषवान व्यक्तितव से हिन्दी में शक्ति, समृद्धि और आनन्द की वृद्धि कीं। प्रसाद में भारतेन्दु के वे सभी संस्कार उपलब्ध थे जो उन्हें विरासत में मिले।

संस्कार

प्रसाद का जन्म काशी के सांस्कृतिक वातावरण के मध्य तथा माघ शुक्ला दशमी सं० १९४६ में सुघनी साहु नाम के परिवार में हुआ। प्रसाद नें वैदिक साहित्य एवं उपनिषदों का गहन अध्ययन दीनबन्धु ब्रह्मचारी के संरक्षण में किया। प्रसाद ने अतीत के प्रति स्वाभाविक आकर्षण से परिचित होने का प्रयास किया। उन्होंने ऐतिहासिक मान्यताओं का खण्डन करते हुए उसी आधार पर नवीन मानदण्डों की स्थापना की जिससे हमारा साहित्य ही नहीं इतिहास भी वैभवशाली बना। उन्होंने भारतीय संस्कृति के रूप को पहिचानते हुए अपने साहित्य के माध्यम से जगत् को उससे परि-

१. चन्द्रगुप्त, पृ० १०७

चित कराया । धार्मिक क्षेत्र में शैवागमी होना उनकी पैतृक सम्पत्ति थी । प्रसाद शैवगामी होने के साथ-साथ नियतिवादी भी थे । नियति ने उनकी बाल्यावस्था ही में उनसे कटु व्यंग किया था । इसी कारण उनका सुख-दुख आनन्द की अखण्डता में लीन हो गया । प्रसाद को बौद्ध-संस्कृति के प्रति भी अनुराग और गहन आस्था थी । अतः प्रसाद के साहित्य का आधार स्तम्भ, भारतीय संस्कृति का यही अंग बना ।

सर्वतोमुखी व्यक्ति

प्रसाद की प्रतिभा से साहित्य के सभी अंगों को पोषण और विकास मिला । काव्य इनका विचरण-क्षेत्र था । ये सफल नाटककार थे । ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर उन्होंने नाटकों की सर्जना की । उन्होंने अपने अलग ही ढंग की कहानियों की रचना की । अपनी रचनाओं को सुबोध और हृदयगम्य बनाने तथा साहित्य-संसार में फैली भ्रान्तियों के निवारण हेतु प्रसाद ने निबन्धों की रचना भी की ।

प्रसाद के व्यक्तित्व में मनुष्य, कवि और दार्शनिक, तीनों का समन्वित स्वरूप दृष्टिगत होता है । उनका भावुक कवि-हृदय नाटक में ही नहीं, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में भी देखने को मिलता है । निबन्धों में वे शुद्ध विवेचक के रूप में दिखाई देते हैं । भारतीय संस्कृति (दर्शन) उनके जीवन का आधारभूत स्तम्भ है । सामाजिक तथा जातिगत विषमताओं ने उन्हें झकझोरा है, परन्तु वे उनसे विचलित हुए बिना ही एक चिकित्सक की भाँति उनका उपचार करते हुए अपने कर्तव्य का मार्ग प्रशस्त करते रहे । इस प्रकार प्रेममयी कोमल भावनाओं, भावुकता तथा जीवन के गूढ़तम रहस्यों को सुलझाने में समर्थ भारतीय संस्कृति (दार्शनिकता) से जो अनुपम और विशद् निर्माण हुआ उसकी संज्ञा है 'जयशंकर प्रसाद ।'

सांस्कृतिक साहित्यकार

प्रसाद-साहित्य में भारतीय संस्कृति की बहुलता दिखाई देती है । वे संस्कृति के प्रकांड पंडित थे । उन्होंने अतीत को 'कनक किरण के अन्तराल' के माध्यम से देखा और उससे जो कुछ ग्रहण किया उसे अपने साहित्य में प्रत्यावर्तित किया । उनके साहित्य की आधारशिला थी, 'भारतीय संस्कृति ।'

प्रसाद को भारतीय संस्कृति के प्रति अत्यधिक मोह था । उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से आधुनिक समस्याओं का समाधान अतीत के वैभव से किया । जैसा कि उनके विविध साहित्य के परिचिय से हमें ज्ञान होता है ।

अध्याय २

परिचयात्मक वर्गीकरण

जयशंकरप्रसाद हिन्दी-साहित्य में नवीन ज्योति-किरणों का आलोक लेकर अवतीर्ण हुए। उन्होंने अपनी प्रतिभा से साहित्य के विभिन्न अंगों को उद्भासित और पुष्ट किया। उनकी रचनाएँ हिन्दी साहित्य की अक्षय निधि मानी जाती हैं। उन्होंने जिस प्रचुर साहित्य का निर्माण किया, उसको अध्ययन की सुविधा के लिए दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—पद्य-साहित्य और गद्य-साहित्य।

पद्य साहित्य

पद्य क्षेत्र में प्रसाद की अनेक रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। उनके 'कामायनी' काव्य की गणना महाकाव्यों में होती है। 'प्रेम-पथिक' और 'महाराणा का महत्व' उनके प्रसिद्ध खण्डकाव्य हैं। इनके अतिरिक्त उनकी कुछ रचनाएँ वर्णनात्मक भी हैं, जिनका वर्णन प्रबन्ध या आख्यानक काव्यों में परिगणित किया जा सकता है। इस श्रेणी में 'चित्राधार', 'कानन-कुसुम' और 'लहर' में संकलित 'अयोध्या का उद्धार', 'वन मिलन', 'प्रेम-राज्य', 'चित्रकूट', 'कुरुक्षेत्र,' 'अशोक की चिन्ता', 'शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनि', 'प्रलय की छाया', 'भरत', 'शिल्प-सौन्दर्य', 'वीर बालक' और 'श्रीकृष्ण-जयन्ती' की गणना की जाती है। 'चित्राधार' और 'कानन-कुसुम' के संग्रह मुक्तक-काव्य के रूप में अवतरित हुए हैं। इनके अतिरिक्त कुछ कविताएँ गीतात्मक शैली में भी लिखी गईं। 'झरना', 'आँसू', 'लहर' तथा नाटकों के गीत इसी श्रेणी के हैं। 'कामायनी' के गीतों को इस कोटि के गीतों में समाविष्ट कर लेने से केवल पुनरावृत्ति होगी; इसलिए उनका उल्लेख यहां उचित नहीं है।

कामायनी

प्रबन्धात्मक शैली में लिखा हुआ 'कामायनी' महाकाव्य प्रसादजी की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसका रचना काल सन् १९३५ है[1]। इसका कथानक मानव जाति को लेकर

१. किशोरीलाल गुप्त, 'प्रसाद' का विकासात्मक अध्ययन, पृ० २४८

चला है। यह काव्य चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इड़ा, स्वप्न, संघर्ष, निवेद, दर्शन, रहस्य और आनन्द सर्गों में विभाजित है। प्रत्यक सर्ग का नामकरण उसमें वर्णित घटनाओं के अनुसार किया गया है । 'कामायनी' देश, काल और जाति की सीमा लांघ गई है। वह मानव और उसकी मानवता को ही अपना विषय बना लेती है[1] । कथानक अति सूक्ष्म है—चिन्ता में मग्न मनु के हृदय में आशा का संचार होता । 'आत्मवाद' की खोज में श्रद्धा से मिलना, श्रद्धा का आत्म-समर्पण, दोनों का कुछ समय तक एक साथ रहना, यज्ञ करना, इड़ा के पास जाकर राज्य की स्थापना का प्रयत्न, श्रद्धा का स्वप्न देखकर मनु की खोज में जाना, उन्हें समझाना, मनु का सारस्वत प्रदेश से श्रद्धा से संकुचित होकर चले जाना, श्रद्धा का उनकी खोज में जाना, भावलोक, ज्ञानलोक तथा कर्मलोक के दर्शन करना और तीनों के समन्वय से आनन्द की अवाप्ति इस प्रबन्ध काव्य की संक्षिप्त कथा है।

इस महाकाव्य में तीन प्रमुख पात्र—मनु, श्रद्धा और इड़ा का ही समावेश किया गया है। इन पात्रों का प्रतीकात्मक मूल्य स्मरणीय है। मनु मन के प्रतीक हैं, जो श्रद्धा (हृदय) की ओर झुक कर तर्कशून्य हो जाते हैं । तव इड़ा (बुद्धि) को अपनाते हैं। इस प्रकार हृदय और बुद्धि के समन्वय से ज्ञान की प्राप्ति होती है। हृदय पक्ष (श्रद्धा) की श्रेष्ठता के कारण ही अन्त में उन्हें शान्ति मिलती है।

'कायामनी का पर्यवसान' निर्वेद में हुआ । सम्पूर्ण काव्य में शृंगार रस को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है, तथापि काव्यान्त में शान्त रस प्रमुख हो गया है। शृंगार और शान्त रस के अतिरिक्त भयानक, अद्भुत, वात्सल्य रौद्र, वीर, करुण आदि रस सहायक रूप में आये है।

कलात्मक दृष्टि से कामायनी का अभिव्यक्ति कौशल बड़ा वैभवपूर्ण है। एक ओर ध्वनियों का वर्णन है, तो दूसरी ओर अलंकारों की छटा दर्शनीय है। एक ओर मानवीकरण पर जोर दिया है, तो दूसरी ओर ताटंक, शृंगार, रसमाला, रौला, सार, पदपादाकुलक, हरिगीतिका आदि सुन्दर छन्दों का विधान है। इसमें संगीत-तत्व की प्रधानता रही है।

'कामायनी' परम्परागत महाकाव्य की वर्णन-प्रणाली को त्याग कर आधुनिक महाकाव्य की कोटि में आती है। उसमें भावों की प्रधानता रही है और कवि सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों के अमूर्त रूप को मूर्त बनाने में सफल हुआ है।

'कामायानी' में कवि ने आनन्दवाद की प्रतिष्ठा की है जिसमें मनु, इड़ा तथा श्रद्धा तीनों का समन्वय बतलाया गया है।

---

१. डा० प्रेमशंकर प्रसाद का काव्य, पृ० ४३८

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में कामायनी एकांकी, अव्यावहारिक, निर्बल तथा ह्रासोन्मुख रूढ़ि के स्थान पर, व्यापक और बहुमुखी जीवन-दृष्टि का संदेश सुनाती और नियोजना करती है[1]।'

प्रेम-पथिक

'प्रेम-पथिक' के दो रूप मिलते हैं। यह काव्य सन् १९०५ में पहले ब्रजभाषा में लिखा गया था। इसके आठ वर्ष बाद सन् १९१३ में उसका परिवर्तित एवं परिवर्द्धित, तुकान्त-विहीन रूप खड़ी बोली में प्रकाशित हुआ। इसकी कथा प्रेम-प्रधान है। पथिक राह चलता हुआ एक कुटिया के पास आता है, वहाँ एक तापसी रहती है। वह पथिक से विश्राम करने का अनुरोध करती है। तापसी द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर पथिक ने अपनी आत्मकथा उसे सुनाई, वह आनन्दनगर का निवासी है। वहाँ उसके पिता के साथ एक मित्र अपनी कन्या सहित रहते थे। वहाँ पर पिता के मित्र की कन्या से पथिक की घनिष्ठ मित्रता हो जाती है। अन्त में उस बालिका का पिता किसी दूसरे से उसका विवाह कर देता है। चमेली अपनी ससुराल चली जाती है। पथिक भी उस नगर को छोड़ कर चल देता है। एक रात पहाड़ी पर बैठ कर वह चन्द्रमा की आँख मिचौनी देख रहा था। उसे चन्द्रमा में चमेली की परछाईं नजर आई। रात्रि समाप्त हो गई। तापसी ने पथिक को पहिचान लिया। वह खुद चमेली थी, पथिक का नाम किशोर था। पथिक से चमेली ने अपनी विवाह के बाद की कथा कही। वह अब विधवा थी और एक झोंपड़ी में अपना समय बिता रही थी। अन्त में किशोर और चमेली एक-दूसरे से मिलकर एक साथ जीवन व्यतीत करने की सोचते हैं।

कथा काल्पनिक है। इस पर गोल्डस्मिथ के हेमरिट का प्रभाव अवश्य है। यह प्रसाद जी की प्रौढ़ रचना होने से छायावाद के सभी गुण इसमें मिलते हैं। उपनिषदों, शैव-ग्रन्थों तथा अन्य सूफी-सिद्धान्तों के रूप इसमें स्थान-स्थान पर मिलते हैं। प्रेम का व्यापक रूप से प्रदर्शन किया गया है। इसको प्रदर्शित करने में कवि ने अभिव्यक्ति और अनुभूति में अद्भुत चमत्कार दिखाया है। प्रेम का मार्ग साधारण नहीं है। उसकी प्राप्ति में अनेक विघ्न-बाधाएँ उपस्थित होती हैं। यही भाव कवि ने व्यक्त किए हैं—

'पथिक ! प्रेम की राह अनोखी भूल-भूलकर चलना है
घनी छांह है जो ऊपर तो नीचे कांटे बिछे हुए,
प्रेमयज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा,
तब तुम प्रियतम स्वर्ग विहारी होने का फल पाओगे,'[2]

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, पृ० ८८,
२. प्रेम-पथिक पृ० १६

प्रसाद ने इस कृति में प्रेम और उसके आदर्श की अभिव्यक्ति करते हुए नियतिवाद की स्थापना की है[1]। इसमें उनकी अभिव्यक्ति उपदेशात्मक रही है, इससे शैली ने वर्णनात्मक रूप ले लिया है। प्रकृति के चित्र भी अनेक स्थलों पर आए हैं। भाषा प्रौढ़ है, जिसमें खड़ी बोली के शब्दों को अपनाया गया है। कुछ स्थलों पर सुन्दर उपमाएँ, रूपक आदि अलंकार आए हैं।

महाराणा का महत्व

इस खण्ड-काव्य का प्रकाशन सन् १९१४ में हुआ[2]। इसका प्रारम्भ आपसी बातचीत से होता है। खानखाना की प्यासी बेगम दासी से पूछती है कि दुर्ग कितनी दूर है। दासी के सैनिक से पूछने पर सैनिक उसके रुकने का व पानी प्राप्त होने का स्थान बतलाते हैं। यह भूमि महाराणा प्रताप की है। यहाँ पर रुकना खतरे से खाली नहीं है। खानखाना का हरम महाराणा की भूमि में पहुंचता है। उसी समय राजपूतों का एक दल अमरसिंह के संरक्षण में उस स्थान पर आता है। दोनों दलों में युद्ध होता है। अमरसिंह विजयी होकर पराजित मुगल-सैनिकों के साथ बेगम को भी वन्दी बनाकर राणा प्रताप के पास आता है। बेगम के बन्दी कर लाने का समाचार राणा प्रताप को कृष्णसिंह से मिलता है। इससे महाराणा प्रताप खिन्न होकर कहते हैं—

"शीघ्र उसे उसके स्वामी के पास अब
भेज दीजिए, बिना एक भी दुख दिए।
सैनिक लोगों से मेरा संदेश यह
कहिए कभी न कोई क्षत्रिय आज से
अबला को दुख दे, चाहे हों शत्रु की[3]।"

नवाब की बेगम लौटा दी जाती है। बेगम प्रताप की प्रशंसा करती है। नवाव लज्जित होता है। वह अकबर के पास जाकर सारा वृत्तान्त कहता है। अकबर लज्जित होता है और लड़ाई बन्द कराने का आदेश देता है।

कथानक ऐतिहासिक है, परन्तु कहीं-कहीं कल्पना का सहारा अवश्य लिया गया है। 'महाराणा का महत्व' में अतीत के गौरव-गान द्वारा भारतीय तरुणों में देश-प्रेम और मनोत्थान की भावना भरने की योजना है[4]। इस कृति में प्रेम की महत्ता को चित्रित किया है। यह रचना इतिवृत्तात्मक शैली में लिखी गई है। इसमें कवि

---

१. प्रेम-पथिक पृ० ३—'लीलामय की अद्भुत लीला जिससे जानी जाती है,
कौन उठा सकता है धुंधला पट भविष्य का जीवन में।'

२. किशोरीलाल गुप्त, प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन, पृ० २५१

३. महाराणा का महत्व, पृ० १२

४. डा० भोलानाथ तिवारी, कवि प्रसाद संस्करण १९५८, पृ० ६७

ने प्रकृति की अवहेलना की है। प्रकृति के सुन्दर दृश्य वातावरण के अनुकूल आये हैं।

भाषा प्रभावानुकूल है। उर्दू के शब्दों की बहुलता से शैली में स्वाभाविकता आ गई है। अलंकारों की दृष्टि से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकार आये हैं। इस काव्य की रचना इक्कीस मात्रा में अरिल्ल छन्द में की गई है। इसका आकार लघु एवं प्रभावोत्पादक है।

अयोध्या का उद्धार

'अयोध्या का उद्धार' 'चित्राधार' में संकलित आख्यानक शैली की प्रथम कविता है। यह कविता सम्वत् १९६७ में प्रकाशित हुई[1]। इसकी कथा का आधार कालिदास कृत रघुवंश का १६ वां सर्ग है। महाराज रामचन्द्र के उपरान्त कुश को कुशावती और लव को श्रीवस्ती नामक प्रदेश मिले और अयोध्या उजड़ गई। एक रात कुश को निद्रावस्था में एक रमणी ने रघुवंश की अनेक प्रशस्तियां गाने के पश्चात् कहा—"उठो, जागो, सुप्रभात हो, प्रजा सुख निद्रा ले।" कुश ने उससे दुःख का कारण पूछा। उस रमणी ने उत्तर में अपने को अयोध्या की राजश्री बतलाया और कहा—"अयोध्या को शासकहीन पाकर नागवंशीय कुमुद ने हस्तगत कर लिया है। तासों करो उद्धार।" अन्त में कुश ने कुमुद को युद्ध में परास्त कर अयोध्या का उद्धार किया। पराजित नागवंशीय कुमुद ने अपनी पुत्री कुमुदनी का विवाह कुश से कर दिया।

इस काव्य की रचना वर्णनात्मक शैली में की गई है। अनेक स्थलों पर छन्द परिवर्तन देखने योग्य है। साधाराण कोटि की रचना होते हुए भी इसमें कवित्व के विकासांकुरों की खोज कर लेना असम्भव नहीं है।

वन मिलन

'चित्राधार' में संगृहीन 'वन मिलन' कालिनास के अभिज्ञान शाकुन्तल से प्रेरित दूसरी इतिवृत्तात्मक शैली में लिखी हुई आख्यानक कविता है। इसकी कथा का प्रारम्भ शकुन्तला नाटक के अन्त से होता है। कथा का प्रारम्भ प्रकृति-चित्रण से हुआ है—

> 'अरुण विभा, विलसित-हिम-शृंग मुकुटधर छाजत।
> मालिनि मन्द प्रवाह सुखद-सुहुकुल विराजत॥
> तरुगन रात्रि बसहु-मरक्त-हारावलि लाजे।
> साँचहु भूधर नृपति समान हिमालय राजे[2]॥

१. चित्राधार, वन मिलन, पृ० ७०

२. किशोरीलाल गुप्त, प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन, पृ० २५१

प्रियंवदा और अनुसुया कण्व ऋषि के आश्रम में अपनी सखी शकुन्तला से मिलने के लिए चिंतित हैं । वे यह सोचती हैं कि शकुन्तला ने राजसुख प्राप्त कर अपनी सखियों को त्याग दिया है । गोमती राजधानी गई थी, परन्तु उसने कोई खबर उन्हें नहीं दी थी, कुछ दिनों के उपरान्त कश्यप ऋषि के शिष्य मालव कण्व ऋषि के आश्रम पर जाते हैं । वे महाराज दुश्यन्त का शकुन्तला और भरत के साथ मारीच आश्रम से यहां आने का समाचार देते हैं । जब वे वनवासियों के सम्मुख आते हैं तो चारों ओर आनन्द की लहर दौड़ जाती है । इसी समय शकुन्तला की माता मेनका चीनांशुक उड़ाती हुई उतर पड़ती है । सब मिल जाते हैं—

'चिर बिछुरे सव मिले हिये आनन्द बढ़ावन'[1]

कवि ने वन और वन-बालाओं के सौन्दर्य का चित्रण बड़े ही निराले ढंग से किया है । इससे विषय-प्रतिपादन में मौलिकता आ गई है । वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है । सम्पूर्ण रचना रोला छन्द में हुई है । भाषा परिमार्जित है ।

प्रेम राज्य

'चित्राधार' के द्वितीय संस्करण में संकलित 'प्रेम-राज्य' की कथा पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध नामक दो परिच्छेदों में विभक्त है । इसका आधार ऐतिहासिक है । पूर्वार्द्ध में विजयनगर के राजा सूर्यकेतु और अहमदनगर के बहमनी वंश के मुसलमान सुलतान के बीच तालीकोट के युद्ध का वर्णन है । राजा सूर्यकेतु सेनापति के विश्वासघात से मारा जाता है । युद्ध से पूर्व राजा अपने पांच वर्षीय बालक चन्द्रकेतु को एक भील सरदार के आश्रय में छोड़ गये थे जो उसे लेकर हिमालय की तराई में चला जाता है । उधर सेनापति राजा के मारे जाने पर घर पहुंचता है । उसकी पत्नी, उसकी कायरता एवं विश्वासघात के कारण उसके नाम एक पत्र लिखकर, जिसमें उसको धिक्कारा गया है, चली जाती है । सेनापति अपनी पुत्री ललिता को लेकर दुःखी अवस्था में चला जाता है । उत्तरार्द्ध में चन्द्रकेतु और ललिता के प्रेम और परिणय की कहानी है । कवि ने दोनों के प्रेम-राज्य का कितना सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है, इसका एक नमूना नीचे के छन्द में देखा जा सकता है—

'वह किशोर नव चन्द्रकेतु ललिताहु किशोरी ।
तन्मय लखत परस्पर इकटक अद्भुत जोरी ॥
लखे नवल यह 'प्रेम-राज्य' अति हुए आनन्दित ।
चमकि उठ्यो नवचारु, चन्द्र तारागन बन्दित[2] ॥

इसमें एक ओर तो भारत-गौरव से सम्बन्धित एक गीत प्रस्तुत किया गया है

---

१. चित्राधार, वनमिलन, पृ० ६३
२. वही, प्रेम-राज्य, पृ० ८५

ग्रौर दूसरी ग्रोर प्रकृति के ग्रंचल में प्रेम ग्रौर सौन्दर्य के मधुर चित्र ग्रंकित किये गये हैं। ललिता का सौन्दर्य-चित्रण नवीनता लिए हुए है। इसका दार्शनिक झुकाव शैवाद्वैत की ग्रोर है[१]।

चित्रकूट

यह ग्राख्यानक कविता 'कानन-कुसम' में संगृहीत है। इसकी कथा चार भागों में विभाजित है—चित्रकूट पर सीता एक शिला पर ग्रासीन है। वहाँ सीता ग्रौर राम में आपस में वार्तालाप हो रहा है। राघव जानकी से प्रश्न कर रहे हैं कि तुम्हें इस भयानक वन में डर तो नहीं लग रहा है। जानकी उत्तर देती है जिसके पास इतना बड़ा धनुर्धर हो उसे क्या डर? तथा 'नारी के सुख सभी साथ पति के रहते हैं।' इतना कह कर जानकी राघव की गोद में सो जाती हैं। इसी समय लक्ष्मण ग्राकर एक भील द्वारा कथित भरत के चतुरंग सैन्य के साथ ग्राने की बात कहते हैं। राम हंस जाते हैं। सुबह होने पर ग्रपने नित्य कृत्यों से निवृत्त होकर भोजन करने बैठते हैं। लक्ष्मण ताजा फल खाने के बहाने पेड़ पर चढ़कर भरत को कुत्सित कार्य के लिये ग्राता देखकर धनुष मांगते हैं।

राम ने कहा—'तुम्हें भ्रम है, पेड़ पर से उतर ग्राग्रो।' उसी समय भरत वहां ग्राते हैं ग्रौर भाई-भाई के गले मिलने लगे।

कथानक रामायण के ग्रयोध्या-काण्ड पर आधारित है। राम ग्रौर सीता के प्रेमालाप में नवीनता ग्रा गई है। कथोपकथन नाटकीय ढंग से हुग्रा है। कुछ स्थलों पर नई उपमाग्रों का प्रयोग भी हुग्रा है। ग्रतुकान्त शैली में वर्णित यह काव्य ब्रजभाषा में लिखा गया है।

कुरुक्षेत्र

कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित यह ग्राख्यानक कविता 'कानन-कुसुम' में संगृहीत है। इसमें कृष्ण की बाल्यावस्था से लेकर उनकी युवावस्था तक के कार्यों का वर्णन किया गया है। कृष्ण का बांसुरी बजाना, कालिन्दी के कूल पर धेनुचारण का कार्य

---

१. 'ग्रहो लखो यह विश्वेश्वर की सृष्टि ग्रनुपम।
शिवस्वरूप, तिन माँहि, विराजत लखि सब ही सम॥
यह विराट संसार तासु, ग्रव्यक्त रूप है।
× × ×
चन्द्र सूर्य युगनेन जबहिं वह ग्रपने मेलत।
तबहिं तममय जगत मांहि नर आंखिन देखत।

—चित्राधार, प्रेम-राज्य, पृ० ८२

करना, अत्याचारी कंस को मारना, सहस्त्रों आक्रमणों का सामना करना, सुभद्रा का विवाह पार्थ से कराना, पाण्डवों का संरक्षक बनना, धर्म राज्य की स्थापना करना, राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान करना, शिशुपाल का वध करना, कौरवों के षड्यन्त्रों से पाण्डवो के वनवासी होने पर महाभारत के युद्ध में सहायता करना, युद्ध में अर्जुन के सारथी के रूप में कार्य करना आदि प्रसंगों का वर्णन किया गया है। अन्त में कृष्ण रण-भूमि में अर्जुन की दैन्यावस्था देखकर कर्म करने का उपदेश देते हैं—

> 'कर्म जो निर्दिष्ट है, हो धीर करना चाहिए
> पर न फल पर कर्म के, कुछ ध्यान रखना चाहिए
> ....
>
> उठ खड़े हो, अग्रसर हो, कर्मपथ से मत टरो
> क्षत्रियोचितधर्म जो है, युद्ध निर्भय हो करो[1] ।'

इस आत्मानक में प्रकृति चित्रण सुन्दर बन पड़ा है।

अशोक की चिन्ता

'अशोक की चिन्ता' नामक आख्यानक 'लहर' में संकलित है। इसमें कलिंग युद्ध के परिणाम-स्वरूप युद्ध के भीषण रक्तपात को देख कर तथा पीड़ित कलिंग-वासियों की त्रस्त पुकारों को सुन कर सम्राट् अशोक के मन में भीषण परिवर्तन हुआ। उस परिवर्तन के कारण वह जीवन की निस्सारता को देखने लगा और इस प्रकार सोचता रहा—-जीवन पतंगे के समान क्षणिक है, जो तृष्णा या वासना रूपी अग्नि में जल रहा है। शासन-मद क्षणिक है—सच्चा शासन जनता के हृदय पर होता है, मनुष्य गर्व के नशे को त्याग कर प्राणीमात्र का हित करे। नियति की प्रबलता के कारण ही बड़े-बड़े साम्राज्य नष्ट हो गए। अतः सम्राट् की दिग्विजय की आशा मन्द पड़ गई है। धन तथा वैभव मधुशाला के सदृश्य हैं। उसका ध्यान जीवन की क्षणभंगुरता की ओर नहीं जाता। सुख का अन्त दुःख में होता है। सुख क्षणिक है दुःख स्थायी। संसार परिवर्तनशील है, प्रकृति का यही कार्य है, सुबह के बाद शाम आती है। प्रकाश अंधकार के पर्दे में छिप जाता है।

अशोक मानव की इस पीड़ित दशा को देखकर सोचता है तथा मानवता को किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचाना एवं अपने धर्म शासन द्वारा पीड़ित संसार को सुखमय बनाना ही अपना कर्तव्य समझता है। वह अत्याचारों से पीड़ित मार्ग में दया का स्रोत बहाकर मार्ग को सुगम बनाना ही श्रेयकर समझता है।

इस आख्यानक में मानव की चित्तवृत्तियों का चित्रण दिया गया है। सम्पूर्ण कविता बौद्ध धर्म और दर्शन से प्रभावित है। भाषा में प्रौढ़ता का अभाव है।

---

१. कान-कुसुम, कुरुक्षेत्र, पृ० २१६

शेरसिंह का शस्त्र समर्पण

'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' आख्यानक काव्य लहर में संगृहीत है। पंचनद नरेश रणजीतसिंह सैन्य संगठन में निपुण थे, परन्तु उनकी मृत्यु के उपरान्त उनकी विधवा रानी अपने पुत्र दलीप के साथ उस सुसंगठित सेना का नियंत्रण न कर सकी। अन्त में अंग्रेजों और सिक्खों के बीच गुजरात के युद्ध में सिक्खों की पराजय हुई। उस समय शेरसिंह के हृदय में उद्बोधित उद्गारों को प्रसाद जी ने इस कविता में व्यक्त किया है।

युद्ध में सिक्ख प्राणों की चिन्ता न करते हुए लड़े, उनका पौरुष और वीरता इस प्रकार थी—

'उजेस्थित रक्त और उमंग भरा मन था
जिन युवकों के मणिबन्धों में अबन्ध बल
इतना भरा था
जो उलटता शताब्दियों को[1]।'

परन्तु आज वे सभी वीर देश-द्रोही लालसिंह के विश्वासघाती होने से 'इस बलि-वेदी पर सब सो गये[2]।' ऐसा लगता है कि शेरवीर रणजीतसिंह की आज ही मृत्यु हुई है। पंजाव उसी शोक में निमग्न है तथा शेरसिंह को शस्त्र समर्पण करना पड़ा है।

यह कविता अतुकान्त शैली में लिखी गई है। इसमें वीर और करुण रस की अपूर्व धारा बही है।

पेशोला की प्रतिध्वनि

'पेशोला की प्रतिध्वनि' में भारत के अतीत गौरव का चित्र प्रस्तुत किया गया है। 'पेशोला' उदयपुर की पिछोला झील है जहाँ आज—

'कालिमा बिखरती है, सन्ध्या के कलंक-सी,
दुन्दुभि-मृदंग-तूर्य शान्त स्तब्ध, मौन हैं[3]।'

इस प्रताप की जन्म भूमि में वीरों को प्रोत्साहित करने के लिये एक प्रतिध्वनि गूँज रही है—'कौन लेगा भार यह ? कौन विचलेगा नहीं[4] ?' ......'कहता है कौन ऊँची छाती कर, मैं हूं......मैं मेवाड़ में[5];' परन्तु आज वह वीरता नहीं। यह वही

१. लहर, शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण, पृ० ५४
२. वही पृ० ५४
३. लहर, पेशोला की प्रतिध्वनि, पृ० ५९
४. वही, पृ० ५७
५. वही, पृ० ५७

मेवाड़ है, परन्तु प्रतिध्वनि नहीं सुनाई पड़ रही है ।

यह आख्यानक अतुकान्त शैली में लिखा गया है । इसमें कवि ने वीरता के भावों को प्रदर्शित किया है ।

प्रलय की छाया

'प्रलय की छाया' नामक आख्यानक काव्य 'लहर' में संगृहीत है । इसमें गुर्जर-नरेश कणदेव की रानी कमलावती के हृदय के उन अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण है, जब वह अनेक वर्षों तक सुलतान अलाउद्दीन के रंगमहल में अपने पति के पराजित होने पर उसकी अंकगामिनी बनकर अपना जीवन व्यतीत कर रही थी । वह सौन्दर्य में चित्तौड़ की रानी पद्मावती से कम न थी—

'स्पर्द्धा थी रूप की
पद्मनी की बाह्य रूप-रेखा चाहे तुच्छ थी,
मेरे इस साँचे से ढले हुये शरीर के
सम्मुख नगण्य थी[१] ।'

उसकी इच्छा नारी जाति के अपमान का बदला लेने की थी । उसने सोचा—

'पद्ममिनी जली थी स्वयं किन्तु मैं जलाऊँगी—
वह दावानल ज्वाला
जिसमें सुलतान जले[२] ।'

किन्तु उसके हृदय में इतना साहस कहां था । उसके मन में लालसाएँ जाग पड़ीं—

'बिखरे प्रलोभनों को मानती-सी सत्य में
शासन की कामना में भूमी मतवाली हो[३] ।'

उसने अपना शरीर सुल्तान को त्याग दिया ।

कवि ने कमला के इस पश्चाताप का चित्र बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है । सुमन जी के शब्दों में यह कविता एक 'मास्टर-पीस' है । इसका प्रवाह, इसकी रसमयता, इसके अलंकार सब एक से एक बढ़कर हैं । ध्वनि, रस, अलंकार, भाव और शब्द-सौष्ठव का इसमें बड़ा ही सुन्दर संयोग है[४] ।

भरत

'कानन-कुसुम' में संगृहीत 'भरत' नामक आख्यानक काव्य का प्रकाशन जनवरी

---

१. लहर, प्रलय की छाया, पृ० ६४
२. वही, प्रलय की छाया, पृ० ६४
३. वही, पृ० ७५
४, श्री रामनाथ 'सुमन', कवि 'प्रसाद' की काव्य-साधना, संस्क० १९५७, पृ० १०५

१९१३ को 'इन्दु' में हुआ[१]। इस रचना में शकुन्तला और दुश्यन्त के पुत्र भरत की कश्यप ऋषि कण्व के आश्रम में घटित बाल-लीलाओं का चित्रण किया गया है। यह वही वीर बालक है जिसके वन के शिशु—सिंह भी सहचर रहे थे तथा—

'जिसने अपने बलशाली भुजदण्ड से
भारत का साम्राज्य प्रथम स्थापित किया[२]।'

शिल्प-सौन्दर्य

'शिल्प-सौन्दर्य' में अत्याचारी आलमगीर द्वारा आर्य मन्दिरों को खुदाने के परिणामस्वरूप भरतपुर के जाट सरदार सूर्यमल के हृदय में उसके प्रति प्रतिहिंसा जागृत हुई। उन्होंने अपनी गदा सोनी मन्दिर के संगमरमर के छज्जे पर चलाई। दीवार के कम्पित होने से सूर्यमल रुके और उनके हृदय में शिल्प-सौन्दर्य को नष्ट न करने की करुणा जाग उठी, क्योंकि शिल्प और साहित्य की समाप्ति धर्मान्धता के कारण ही हुई है—

'लुप्त हो गए कितने ही विज्ञान के
साधन, सुन्दर ग्रन्थ जलाए वे गए[३]।'

प्रसाद ने इस कविता में शिल्प और साहित्य की महत्ता को प्रदर्शित किया है। यह कविता अतुकान्त शैली में लिखी गई है।

वीर बालक

'वीर बालक' आख्यानक कविता में बतलाया गया है कि सिक्ख-गुरु गोविन्दसिंह के दोनों पुत्रों ने इस्लाम धर्म न स्वीकार करके मृत्यु को ही स्वीकार किया। सुवेदार ने उन्हें ईंटों से चुना दिया, परन्तु वे अन्त तक अपने प्रण से विचलित नहीं हुए।

दोनों बालकों का बड़ा ही हृदयविदारक चित्र प्रस्तुत किया गया है। यह कविता अतुकान्त शैली में वर्णित है।

श्रीकृष्ण-जयन्ती

'कानन-कुसुम' में संकलित श्रीकृष्ण-जयन्ती का प्रकाशन सन् १९१३ में 'इन्दु' में हुआ[४]। यह आख्यानक कविता चार खण्डों में विभक्त है। संसार व्योम के सदृश अन्धकारमय है। प्रकृति गोपाल के आने की प्रतीक्षा कर रही है। उसके आने पर प्रकाश देने वाली ज्योति प्रकट होगी। संसार बंधन से मुक्त होगा। दिव्य, अलौकिक हर्ष और आलोक प्रस्फुटित होगा। गोपाल मानव जाति में समाहित हो जायेंगे।

---

१. किशोरीलाल गुप्त, 'प्रसाद' का विकासात्मक अध्ययन, पृ० २५४
२. कानन-कुसुम, भरत, पृ० १०६
३. वही, शिल्प सौन्दर्य, पृ० १०९
४. किशोरीलाल गुप्त, 'प्रसाद' का विकासात्मक अध्ययन, पृ० २५५

यह कविता अतुकान्त शैली में लिखी गई है। कवि ने प्रारम्भ में जगत के आन्तरिक अंधकार का प्रतीक प्रकृति के अंधकार को माना है।

मुक्तक काव्य

प्रसाद की कुछ कविताएँ ऐसी हैं, जिनमें प्रवन्धात्मकता का अभाव दिखाई देता है। वे कविताएँ अपने आप में पूर्ण हैं। इस प्रकार की कविताएँ 'चित्राधार' और 'कानन-कुसुम' में संगृहीत हैं।

चित्राधार

'चित्राधार' में संकलित कविताओं को पढ़ने से ज्ञात होता है कि यह प्रसाद जी की किशोरावस्था का प्रथम प्रयास है। इसे व्रजभाषा में लिखे मुक्तक छन्दों को 'पराग' तथा 'मकरन्द-बिन्दु' नामक दो शीर्षों में विभक्त किया गया है।

पराग

'पराग' में कुल मिलाकर २२ कविताएँ संगृहीत हैं। विषय की दृष्टि से इनमें शारदीय-शोभा, रसाल-मंजरी, रसाल, वर्षा में नदी-कूल, उद्यान-लता, प्रभात-कुसुम, शारदीय महापूजन, नीरद, शरद-पूर्णिमा, संध्या-तारा, चन्द्रोदय और इन्द्रधनुष प्रकृति सम्बन्धी, अष्टमूर्ति, विनय और विभो भक्ति सम्बन्धी, विदाई, नीरव-प्रेम, विस्तृत-प्रेम और विसर्जन प्रेम सम्बन्धी तथा 'भारतेन्दु-प्रकाश' भारतेन्दुजी के प्रति श्रद्धांजलि हेतु लिखी गई हैं। 'कल्पना-सुख' और 'मानस' उनकी अन्तर्मुखी रचनाएँ हैं।

प्रसाद सौन्दर्य के कवि हैं। उनकी प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में सौन्दर्य और रति की अभिव्यक्ति होती है। 'संध्या-तारा' में उनकी सौन्दर्यानुभूति देखिए—

> 'संध्या के गगन महं सुन्दर वरन।
> को ही झलकत तुम अमल रतन ॥
> तारा तुम तारा अति सुन्दर लखात।
> तुम्हें देखिए को नहीं आनन्द समात[1] ॥'

इन प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में छायावाद का सहारा लिया है, जिसमें प्रकृति मानव की सहचरी बनकर आई है। इनकी कुछ कविताओं में उत्प्रेक्षा और संदेश अलंकारों का बाहुल्य है[2]।

भक्ति-सम्बन्धी कविताओं में ईश्वर से प्रार्थना की गई है। इनमें रहस्यवाद का संकेत दिखाई देता है। 'विनय' कविता में सर्वव्यापी परमात्मा का स्वरूप देखिए—

---

१. चित्राधार, संध्या-तारा, पृ० १६३
२. वही, चन्द्रोदय और इन्द्रधनुष, पृ० १६४-६५

'जो सर्व व्यापक तऊ सबसे परे हैं ।
जो सूक्ष्म हैं पर तऊ वसुधा धरे हैं ॥
जो शब्द में रहत शब्द न पार पावे ।
ताकी महान् महिमा कवि कौन गावे ॥
जो भानु मध्य नित भासत ओज धारे ।
शीतांसु जासु लहि कान्ति प्रभा पसारे[1] ॥

इस सर्वात्मवादी रहस्यवाद के अतिरिक्त कवि पर दास्य भाव की भक्ति का भी प्रभाव अंकित है—

'हों, पातकी, तदपि, हों प्रभु दास तेरी ।
हों, दास नाथ तब है हिय आस तेरो[2] ॥'

'कल्पना' में कवि ने काव्य में कल्पना के महत्व को प्रदर्शित किया है । 'मानस' कविता में चिन्ता, हर्ष, विषाद, क्रोध, निर्वेद, लोभ, मोह, आनन्द आदि मानस के अनेक रूपों को बतलाया है ।

प्रेम-विषयक रचनाओं का रूप प्रचीन है, परन्तु उनमें छायावाद का स्वरूप देखा जा सकता है—

'प्रिय जबहीं तुम जाहुगे, कछुक यहाँ से दूरि ।
आंखिन में भरि जायगी, तव चरनन की धूरि ॥
तुम अपनी ही मूर्ति को, मलिन करहुने फेरि ।
इन पुतरिन में आपने चरनन की रज गेरि[3] ॥'

मकरंद-बिन्दु

'चित्राधार' के अंतिम खण्ड 'मकरंद-बिन्दु' में कथित, सवैया, दोहा तथा पदों में संकलित कविताएं हैं । इनकी रचना ब्रजभाषा में हुई है । इनका विषय प्रकृति-प्रेम और भक्ति-भावना से सम्बन्धित है । इन मुक्तकों में भक्ति की झलक स्पष्टतः दिखाई देती है । इन कविताओं में प्रसाद ने इष्टदेव के गुणों का बखान किया है । इन इष्टदेवों को नाम की संज्ञा देकर विभूषित नहीं किया है । वे स्वयं भक्त नहीं थे । उन्होंने उस परम्परा का निर्वाह किया, परन्तु धीरे-धीरे यह परम्परा समाप्त हो गई और प्रकृति की ओर उनका आग्रह हुआ । उसमें आलम्बनों का सहारा लिया गया ।

कानन कुसुम

मुक्तक रचनाओं का दूसरा संकलन 'कानन कुसुम' है जिसकी रचना खड़ी बोली

१. चित्राधार, विनय, पृ० १५५
२. वही, विभो, पृ० १५७
३. वही, विदाई, पृ० १५९

में हुई है। इनमें से अधिकांश कविताओं का प्रकाशन 'इन्दु' में हो चुका है। इसमें कुल ४९ कविताएं हैं। इनके शीर्षक विभिन्न विषयों से सम्बन्धित हैं। उनके सम्बन्ध में प्रसाद ने स्वयं कहा है—'जो उद्यान से चुन-चुनकर हार बनाकर पहनते हैं, उन्हें 'कानन-कुसुम' क्या आनन्द देंगे ? यह तुम्हारे लिए है। इसमें रंगीन और सादे, सुगन्ध वाले और निर्गन्ध, मकरन्द से भरे हुए, पराग में लिपटे हुए, सभी तरह के कुसुम हैं[1]।'

'कानन-कुसुम' में मुक्तक की श्रेणी में भक्ति-विषयक, प्रकृति-प्रेम सम्बन्धी तथा समसामयिक कविताएं आती हैं।

भक्ति-विषयक कविताओं में कवि का प्रेम-चिंतन विकसित अवस्था में दिखाई देता है। अब इसमें 'चित्राधार' के कवि जैसे श्रद्धायुक्त वन्दना के स्वर दिखाई नहीं देते। ये कविताएं रहस्यवाद की ओर झुकी हुई दिखाई देती हैं[2]। इन पर दार्शनिक चिंतन का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वे प्रभु को चित-चोर के रूप में देखने लगते हैं—

'पर कहो तो छिपके तुम जाओगे क्यों किस ओर को—
है कहाँ वह भूमि जो रक्खे मेरे चितचोर को[3]।'

कानन-कुसुम में प्रकृति मानवी रूपों में अंकित हुई है, किन्तु प्रसादजी वाल्मीकि, कालिदास, पंत तथा वर्डसवर्थ की तरह प्रकृति का बाह्य रूप चित्रित करने में असफल रहे हैं—

'यह शून्यता वन की घनी, बेजोड़ पूरी शान्ति से
करुणा-कलित कैसी कला कमनीय कोमल कान्ति से[4]।'

'कानन-कुसुम' में संगृहीत मुक्तकों की भाषा खड़ी बोली है। कविताओं में ब्रजभाषा में प्रयुक्त होने वाले कवित्त तथा छप्पय छन्दों को ग्रहण किया है, किन्तु उर्दू-छन्दों के प्रति भी उनका मोह कम नहीं है।

'कानन-कुसुम' भाव, विचार, कल्पना, तथा कला सभी दृष्टियों से नवीनता और प्राचीनता के संगम पर खड़ा है। ब्रजभाषा की रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ इसमें बहुत कम हैं। द्विवेदीयुगीन कुछ अधिक हैं, पर उन्हें छोड़कर छायावाद की ओर कवि बढ़ रहा है। 'निराला' की तरह क्रान्ति करते हुए नहीं, अपितु धीरे-धीरे[5]।'

---

१. कानन-कुसुम की भूमिका से उद्धरित।
२. डा० भोलानाथ तिवारी, कवि प्रसाद, पृ० ४२
३. कानन-कुसुम, महाक्रीड़ा, पृ० १०
४. वही, एकान्त में, पृ० ५३
५. डा० भोलानाथ तिवारी, कवि प्रसाद, संस्क० १९५८ पृ० ४६

गीति-काव्य

'झरना', 'आंसू' तथा 'लहर' में संगृहीत कविताओं को तथा नाटकों के गीतों को इस श्रेणी में रख सकते हैं।

झरना

'झरना' गीति-काव्य की एक सुन्दरतम कृति है। इसमें 'समर्पण' और 'परिचय' के अतिरिक्त ४८ कविताएं संगृहीत हैं। इसका संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण सन् १९१८ में प्रकाशित हुआ[१]। इसकी कविताओं में प्रकृति और प्रेम के सुन्दर चित्र प्रस्तुत हुए हैं। 'प्रेम-पथिक' के सात्विक प्रेम के आधार पर ही 'झरना' का विकास हुआ है।

'झरना' में कवि की प्रौढ़ता का विकास दृष्टिगोचर होता है। प्रकाशक के शब्दों में—'जिस शैली की कविता को हिन्दी-साहित्य में आज दिन 'छायावाद' का नाम मिल रहा है, उसका आरम्भ प्रस्तुत संग्रह द्वारा ही हुआ था। इस दृष्टि से यह संग्रह अत्यन्त महत्वपूर्ण है[२]।'

'किरण' कविता में छायावाद का स्वरूप दिखाई देता है। किरण किसी अज्ञात विश्व की विकल वेदना दूती-सी है—

'किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज,
रंगी हो तुम किसके अनुराग,
स्वर्ण, सरसिज, किंजल्क समान,
उड़ती हो परमाणु पराग।
धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश,
मधुर मुरली सी फिर भी मौन,
किसी अज्ञात विश्व की विकल—
वेदना दूती-सी तुम कौन[३] ?'

'झरना' में प्रत्याशा, स्वप्नलोक, दर्शन, मिलन-प्रार्थना, मिलने की कसौटी, अतिथि सुधा में गरल-बिन्दु, परिचय, वालू की बेला, अर्चना, बिखरा हुआ प्रेम, कब ?, स्वभाव, असंतोष, अनुनय, प्रियतम, निवेदन आदि गीत प्रेम और विरह पक्षों को लेकर चले हैं। प्रेमी अपने प्रियतम से मिलना चाहता है, परन्तु द्वार बन्द देखकर वह दुखी होता है और कह उठता है—

---

१. किशोरीलाल गुप्त, 'प्रसाद' का विकासात्मक अध्ययन, पृ० २४७

२. झरना, निवेदन नामक शीर्षक से उद्धरित।

३. झरना, किरण, पृ० १४

'धूल लगी है, पद कांटों से विंधा हुआ, है दुख अपार।
किसी तरह से भूला-भटका, आ पहुंचा हूं तेरे द्वार[1] ॥'

वह व्यथा की याचना करता है। अन्त में वह कह उठता है—

'सुप्रभात मेरा भी होवे, इस रजनी का दुःख अपार—
मिट जावे जो तुमको देखूं खोलो, प्रियतम ! खोलो द्वार[2] ।'

वह अपने प्रियतम से अनुनय करता है—

'हो जो अवकाश तुम्हें, ध्यान कभी आवे मेरा,
अहो प्राण प्यारे, तो कठोरता न कीजिये।
क्रोध से, विषाद से, दया या पूर्व प्रति ही से,
किसी भी वहानें से तो याद किया कीजिये[3] ।'

उसने अपने प्रियतम को सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है, परन्तु वह अव भी उपेक्षित है, अव भी वह यही चाहता है कि किसी प्रकार प्रियतम उसे स्वीकार कर ले—

'कुछ भी मत दो, अपना ही जो मुझे बना लो, यही करो।
खता जब तक आँखों में, फिर और ढार पर नहीं ढरो[4] ॥

'झरना' गीत संग्रह में भाव, भाषा, और शैली का पर्याप्त विकास हुआ है। इसमें प्रतीकात्मक प्रयोग भी दृष्टिगत होते हैं। वालू की वेला में आँसुओं से सिक्त मनुहार को कवि ने प्रतीकों द्वारा चित्रित किया है—

'निठुर इन्हीं चरणों में मैं रत्नाकर हृदय उलीच रहा।
पुलकित, प्लावित रहो, बनो मत सूखी वालू की वेला[5] ॥

अन्त में डा० भोलानाथ तिवारी के शब्दों में 'इस रचना के गीतों में प्रमुखतः प्रेम और उससे सम्बन्ध भावनाओं के चित्र हैं। कहीं-कहीं अपवाद रूप से प्रकृति भी है……'झरना' का गीतकार बहुत सफल न होकर प्रयोक्ता मात्र है; पर उसके प्रारम्भिक रूप में ही 'आंसू' और 'लहर' के गीतिकार की सम्भावना स्पष्ट है[6] ।

आंसू

'आंसू' एक विरह-काव्य है। डा० श्रीकृष्णलाल ने विरह-काव्य को गीतिकाव्य

१. वही, खोलो द्वार, पृ० १७
२. वही, खोलो द्वार, पृ० ७
३. वही, अनुनय, पृ० २६
४. झरना, प्रियतम, पृ० ३०
५. वही, वालू की वेला, पृ० १८
६. डा० भोलानाथ तिवारी, कवि प्रसाद, पृ० ७८

के भेद करते हुए 'शोक-गीत' के अन्तर्गत माना है तथा 'आंसू' को इस दिशा में एक सुन्दर रचना कहा है[1]। इसका प्रथम प्रकाशन सम्वत् १९८२ में हुआ[2]। प्रथम संस्करण के गीत व्यक्तिगत वेदना से सम्बन्धित थे, परन्तु द्वितीय संस्करण के प्रथम संस्करण में वर्णित छन्दों की संख्या को बढ़ा दिया गया है तथा इसके क्रम में भी परिवर्तन कर दिया गया है।

'आंसू' में प्रेम-सौन्दर्य, संयोग और वियोग, प्रकृति तथा दार्शनिक चिन्तन से सम्बन्धित विषयों की प्रमुखता रही है। इस काव्य की गाथा कवि के जीवन से संबंधित है। इसमें पत्नी-शोक से संतप्त प्रसाद का विलाप मुखर है। कवि के अन्तर में वेदना और स्वर में शोक-राग है। याद में तड़पते हुए वह कह उठता है—

'इस करुणा कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती[3] ?'

इस असीम वेदना की स्मृति आज वह पीड़ा स्मृति की रेखा बनकर छा गई है—

'जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति-सी छाई
दुर्दिन में आंसू बनकर
वह आज बरसने आई[4]।'

यह पीड़ा स्मृति के रूप में छा गई है। स्मृति ही आंसू की विकसित अवस्था है। स्मृति का सम्बन्ध विरह और मिलन से है—

'बस गई एक बस्ती है
स्मृतियों की इसी हृदय में
....
इस ज्वालामुखी जलन के
कुछ शेष चिह्न हैं केवल
मेरे उस महा-मिलन के[5]।'

१. डा० श्रीकृष्णलाल, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ११५
२. किशोरीलाल गुप्त, 'प्रसाद' का विकासात्मक अध्ययन, पृ० २४८
३. आंसू, पृ० ७
४. वही, पृ० १
५. वही, पृ० ६

अन्त में कवि को मिलन की आशा समीप आती दिखती है। वह कह उठता है—

'चेतन लहर न उठेगी
जीवन समुन्द्र थिर होगा
सन्ध्या हो सर्व प्रलय की
विच्छेद मिलन फिर होगा[1]।'

कवि मानव जीवन को दुःखमय देखकर ही विषण्ण नहीं होता प्रत्युत सुख के सम्बन्ध में भी वह आशावान् है। भारतीय कवि दुःख को सुख से मिलाकर ही तृप्त होता है। 'आंसू' का कवि दुःख और सुख के नृत्य को चेतना के रंगमंच पर उतार कर आंख और मन के खेल के रूप में ग्रहण करता है—

'मानव जीवन वेदी पर
परिणय हो विरह-मिलन का
दुख सुख दोनों नाचेंगे
है खेल आंख का मन का[2]।'

'आंसू' प्रसाद जी की पूर्व रचनाओं से बहुत आगे है। उसमें 'चित्राधार' की-सी हलकी, चमत्कार-चंचल दृष्टि नहीं है, न 'प्रेम-पथिक' का-सा 'रोमांटिक' प्रेमादर्श का निरूपण है। वह अधिक गहरी चीज है। 'आंसू' कवि के जीवन की वास्तविक प्रयोगशाला का आविष्कार है। 'आंसू' में कवि निःसंकोच भाव से विलास-जीवन का वैभव दिखाता, फिर उसके अभाव में आँसू बहाता और अन्त में जीवन से समझौता करता है। विलास में जो मद, जो विराट् आकर्षण है, उसे कवि उतने ही विराट् रूपकों और उपमानों से प्रकट करता है। उसके अभाव में जो वेदना है, वही आंसू मन बन कर निकली है[3]।

कहने की आवश्यकता नहीं कि 'आंसू' के पद मोतियों की लड़ी के सदृश हैं। उसका प्रत्येक मोती अलग रह कर भी चमक देता है तथा तार में रहकर भी सौन्दर्य को बढ़ाता है। सम्पूर्ण पद अपने में पूर्ण हैं। 'आंसू' में संगीतात्मकता, भाव-प्रधानता, मार्मिकता, आवेग, तीव्रता, विरह आदि के प्रमुख तत्व इतनी अधिक मात्रा में हैं कि हिन्दी के कम ही गीति-काव्य इसके समकक्ष रखे जा सकते हैं।

लहर

'आंसू' के बाद प्रसादजी की स्फुट-मुक्त गीत रचनाएँ 'लहर' में संकलित हैं। इसका प्रकाशन सन् १९३३ में हुआ[4]। इसमें वियोगावस्था का पूर्ण परिपाक दिखाई

१. आंसू, पृ० ५६
२. वही, पृ० ४६
३. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, पृ० ५८
४. किशोरीलाल गुप्त, 'प्रसाद' का विकासात्मक अध्ययन, पृ० २४८

देता हैं। आंसू की वेदना जब धुल चुकी है। प्रेम के सम्बन्ध में कवि की परिपक्व धारणा बन जाती है। इसमें बीते हुए दिनों की स्मृतियां और यौवन की आंख-मिचौनियां हैं, परन्तु इनका रूप शान्त है। प्रेम की तीव्रता विश्व प्रेम में प्रदर्शित हो गई है।

कवि ने प्रेम के विभिन्न पक्षों, वियोग-विरह के मिलन को इसमें बड़े ही कलात्मक ढंग से व्यक्त किया है। उसके इन गीतों में एक ओर तो वे गीत हैं जिनमें कवि अपने प्रियतम के मिलन की प्राचीन स्मृतियों को स्वप्न के रूप में उपस्थित करता है। वह कह उठता है—

'तुम्हारी आंखों का बचपन।
खेलता था जब अल्हड़ खेल,
अजिर के उर में भरा फुलेल,
हारता था, हंस-हंस कर मन,
वाह रे, वह व्यतीत जीवन[1]।

वह यौवन की स्मृति का वर्णन करते हुए कहता है—

'आह रे, वह अधीर यौवन।
मत-मारुत पर चढ़ उद्भ्रान्त,
बरसने ज्यों मदिरा अश्रान्त—
....

चूमने को अपना जीवन,
चला था वह अधीर यौवन[2]।'

दूसरी ओर कवि अपने प्रिय को अपनी पुतलियों में प्राण बनकर आने, मुख चन्द्र दिखाने तथा इस संसार को पुनः वृन्दावन बनाने की प्रार्थना करता है—

'मेरी आंखों की पुतली में
तू बनकर प्राण समा जा रे।
....

जग की सजल कालिमा रजनी में मुखचन्द्र दिखा जाओ।
हृदय-अन्धेरी-झोली इसमें ज्योति भीख देने आओ।
... ...

स्नेहालिंगन की लतिकाओं की झुरपुट छा जाने दो।
जीवन-धन! इस जले जगत को वृन्दावन बन जाने दो।'[3]

---

१. लहर, पृ० २३
२. वही, पृ० २१
३. वही, पृ० १०

इस प्रकार ये गीत प्रेम के विभिन्न पक्षों से परिव्याप्त दिखाई देते हैं ।

कवि ने प्रकृति के चित्रों में प्रेम और वेदना को इस प्रकार संपुटित किया है कि यह कहना कठिन है कि कवि प्रकृति का चितेरा है अथवा प्रेम का । इन्हीं चित्रों में कहीं-कहीं 'रहस्यवाद' ने बड़ी मनोहर अंगड़ाई ली है—

'तुम हो कौन और मैं क्या हूं ?
इसमें क्या है धरा, सुनो ।
मानस जलधि रहे चिर-चुम्बित—
मेरे क्षितिज ! उदार बनो ।'

ये गीत प्रतीकों से ओतप्रोत हैं । 'है सागर संगम अरुण नील[1] ।' और निज अलकों के अंधकार में तुम कैसे छिप जाओगे[2] ?' में रहस्यवाद की झलक स्पष्ट दिखाई देती है । प्रथम कविता प्रकृति से सम्बन्धित है, परन्तु उसमें आत्मा-परमात्मा के मिलन की ओर संकेत किया है, दूसरी कविता में अंतिम चार पंक्तियों में रहस्यवाद की झलक दिखाई देती है[3] ।

निष्कर्षतः यह कह देना उचित ही है कि—'बहु भावमय जीवन का एक अच्छा प्रतिबिम्ब हम 'लहर' में देखते हैं । इसमें विलास की स्मृतियाँ हैं, दो दिन प्रेम की गोद में सुख से बिता लेने की आकांक्षा है, रूप एवं वैभव के चित्र हैं, जागरण की पुकार है, नियंत्रण की प्रवृत्ति है, और आनन्द का उल्लास है[4] ।'

नाटकों के गीत

प्रसादजी असंदिग्ध रूप से मूलतः कवि हैं । उनकी काव्य-प्रतिभा नाटक में आने से मन्द नहीं पड़ी है । नाटकों में उनके गीतों का एक विशेष स्थान रहा है । इन गीतों का आकलन परिस्थिति, वातावरण, अग्रिम घटना को प्रकाश में लाने के लिए ही नहीं; अपितु मनोरंजन के लिए भी हुआ है ।

विषय की दृष्टि से नाटकों में आये हुए ये गीत प्रेम-प्रधान, दर्शनपरक, भक्तिपरक, उपदेशात्मक तथा राष्ट्रीय-भावना से प्रेरित हैं ।

प्रेम-प्रधान गीत विरह, मिलन और रूप-चित्रण से प्रस्फुटित हैं । 'विशाख' में प्रिय के प्रेमी के प्रेम में बंध जाने की स्मृति कितानी सुन्दर है—

---

१. लहर, पृ० १५
२. वही, पृ० १०
३. वही, पृ० १०
४. रामनाथ सुमन, कवि प्रसाद की काव्य साधना, पृ० ९४

'देख नयनों ने एक झलक, वह छवि की घटा निराली थी।
मधु पीकर मधुप रहे सोये, कमलों में कुछ-कुछ लाली थी।
सुरभित हाला पी चुके पलक, वह मादकता मतवाली थी।
भोले मुख पर वे खुले अलक, मुख की कपोल पर लाली थी[1]।'

इसके कुछ गीत यौवन और वासना की मादकता को लिये हुए हैं। सुवासिनी मन्द के समक्ष अपने को पूर्ण यौवनमयी होकर व्यक्त करती है—

'आज इस यौवन के माधवी कुंज में कोकिल बोल रहा।
मधु पीकर पागल हुआ, करता प्रेम-प्रलाप,
शिथिल हुआ जाता हृदय, जैसे अपने आप।
लाज के बन्धन खोल रहा[2]।'

दूसरी श्रेणी में प्रसादजी के वे नाटकीय गीत आते हैं, जो दार्शनिक हैं। इन दार्शनिकता से प्रभावित गीतों में आनन्दवाद की स्पष्ट झलक दिखाई देती है—

खोल तू अब भी आंखें खोल।
जीवन-उदधि हिलोरें लेता, उठतीं लहरें लोल।
छवि की किरनों से खिल जा तू,
अमृत-झड़ी सुख से मिल जा तू।
... ...
भूल अरे अपने को मत रह जकड़ा, बन्धन खोल।
खोल तू अब भी आंखें खोल[3]।'

प्रसाद के नाटकीय गीतों में दार्शनिकता का प्रभाव विभिन्न स्थानों पर दृष्टिगोचर होता है। 'अजातशत्रु' में दार्शनिक गीत अधिक मात्रा में आये हैं। अधिकतर गीतों पर बौद्ध-दर्शन का प्रभाव दृष्टिगत होता है। बौद्ध-दर्शन के क्षणिकवाद का उदाहरण देखिये, जिसमें सांसारिक मोह जाल को दुःखमय बतलाया है—

'अधीर न हो चित विश्व-मोह-जाल में।
वह वेदना-विलोल-वीचि-मय-समुद्र है॥
है दुःख का भवर चला कराल चाल में।
वह भी क्षणिक, इसे कहीं टिकाव नहीं॥

१. विशाख, पृ० ३९
२. चन्द्रगुप्त, पृ० १५५
३. एक घूंट, पृ० १२

सब लौट जायेंगे उसी अनन्त काल में ।
अधीर न हो चित विश्व-मोह-जाल में[1] ।।'

'विशाख' में प्रेमानन्द तथा 'अजातशत्रु' में गौतम और मल्लिका को बौद्ध-दर्शन के दुखवाद एवं करुणावाद से प्रभावित बतलाया गया है । 'राज्यश्री' में प्रसाद ने करुणा के राज्य की ओर ध्यान आकर्षित किया है—

'करुणा-कादम्बिनि बरसे ।
दुःख से जली हुई यह धरणी प्रमुदित हो सरसे ।
प्रेम-प्रचार रहे जगती तल दया दान दरसे ।
मिटे कलह शुभ शांति प्रकट हो अचर और चर से[2] ।'

तीसरी श्रेणी में वे गीत आते हैं, जो राष्ट्रीय भावना को लेकर लिखे गये हैं । इस प्रकार के गीत 'चन्द्रगुप्त' और 'स्कन्दगुप्त' में अधिक मात्रा में आये हैं । इन गीतों में राष्ट्रीय भावनाओं का समावेश है । जनता के हृदय में एक क्रांति है तथा समाज की परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ी हुई तड़पती आत्मा का विद्रोह है—

'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती—
स्वयं प्रथा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती—
'अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है—बढ़े चलो बढ़े चलो ।।'
असंख्य कीर्ति-रश्मियां,
विकीर्ण दिव्य दाह-सी ।
सपूत मातृभूमि के—
रुको न, शूर साहसी ।
अराति सैन्य सिन्धु में—सुवाडवाग्नि से जलो,
प्रवीर हो, जयी बनो, बढ़े चलो, बढ़े चलो[3] ।

गद्य-साहित्य

इसमें सन्देह नहीं कि प्रसाद प्रमुखतः कवि थे अतएव उनके गद्य में भी उनका

१. अजातशत्रु, पृ० ९३-९४
२. राज्यश्री, पृ० ७५
३. चन्द्रगुप्त, पृ० १९४

कवि ही मुखर रहा हैं। उनका 'कवि' उनकी गद्य की सभी विधाओं पर हावी हो गया है। नाटकों के गीतों में ही नहीं, वरन्, कथोपकथनों में भी उनका कवि उभरे बिना नहीं रहा है। गीतों का प्रयोग उपयुक्त स्थलों पर ही हुआ है। प्रसाद का साहित्य कल्पनापृथुल है। प्रसाद की कल्पनाएँ 'नाजुक खयाली' मात्र नहीं हैं। उनमें उपमानों का सुदृढ़ आधार और संकेतों एवं ध्वनियों की अमोघ शक्ति है। उपन्यासों में नवीन-समाज की विभिन्न समस्याओं को सुलझाने के साथ-साथ संदेश भी दिए हैं। उनका गद्य नाटक, कहानी, उपन्यास, चम्पू और निवन्ध में विभक्त किया जा सकता है।

नाटक

कालक्रम एवं प्रौढ़ता की दृष्टि से प्रसाद के सम्पूर्ण नाटक-साहित्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—प्रयोग-कालीन और उत्तर-कालीन नाट्य-साहित्य। प्रयोग-कालीन नाटकों में 'सज्जन', 'प्रायश्चित', 'कल्याणी-परिणय', 'करुणालय' तथा 'राज्यश्री' को रख सकते हैं। उत्तर कालीन नाटकों में 'विशाख', 'अजातशत्रु', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'कामना', 'स्कन्दगुप्त', 'एक घूंट, 'चन्द्रगुप्त', तथा 'ध्रुवस्वामिनी', का समावेश हो सकता है। इस प्रकार, उन्होंने कुल मिलाकर १३ नाटकों का सृजन किया।

प्रयोग-कालीन नाट्य-साहित्य

इसके अन्तर्गत 'सज्जन', 'प्रायश्चित', 'कल्याणी-परिणय', 'करुणालय' तथा 'राज्यश्री' को लिया जा सकता है। इन नाटकों का रचनाकाल सन् १९१० से १९१५ तक का है[1]। इस काल के नाटकों में प्राचीन नाट्य-लक्षणों को ध्यान में रखते हुए प्राचीन नाट्य-पद्धति का अनुसरण किया गया है, जो प्रसाद की नाट्य-कला के प्रारम्भिक प्रयोग हैं। इनमें विशेष रूप से घटनाओं की प्रमुखता है।

सज्जन

प्रसाद के सज्जन नामक प्रथम नाटक का प्रकाशन 'इन्दु' पत्रिका में सन् १९१०-१२ में हुआ[2]। यह एक पौराणिक नाटक है। इसमें पांच दृश्य हैं। इसकी कथा महाभारत के एक प्रसंग पर आधारित है। युधिष्ठिर दुर्योधन के कुचक्रों से पीड़ित होकर द्वैतवन में कालक्षेप करना चाहते हैं। दुर्योधन अपने साथियों सहित उनके दुःखी जीवन को देखकर प्रसन्न होने के ध्येय से, धन में हर्षोत्सव मनाने जाता है। वन का रक्षक गंधर्व चित्रसन उसे सावधान करता है, परन्तु दुर्योधन अपने गर्व में पूर्ण होने के कारण उसकी बात नहीं मानता। अंत में युद्ध होता है। इस घटना की खबर धर्मराज

१. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन—'प्रसाद की नाट्य-वृतियों का कालक्रम' नामक शीर्षक से उद्धरित।
२. वही।

युधिष्ठर को लगती है । वे उसे उसके साथियों सहित छुड़ाकर उदारता का परिचय देते हैं। दुर्योधन इस सज्जनता पर लज्जित होता है ।

यह घटनाप्रधान नाटिका है। 'सज्जन' नाटक में प्राचीन भारतीय सिद्धान्तों का पालन किया गया है। प्रारम्भ में नान्दी और प्रस्तावना दोनों हैं। नान्दी प्राचीन परम्परा से युक्त है[1] । नान्दी के साथ प्रस्तावना है । सूत्रधार प्राचीन परम्परा के अनुसार कार्य करता है। नाटक का अन्त भरत-वाक्य से हुआ है[2] । नाटक स्वगत और हास्य दोनों से उपेत है। कथोपकथन गद्य-पद्य मिश्रित हैं। भाषा संस्कृति गर्भित और गीत ब्रजभाषा में हैं। इसमें हरिश्चन्द्र-कालीन-नाट्यशैली को अपनाया गया हैं[3] । यह नाटक भारतेन्दु जी के 'धनंजय-विजय' से मिलता-जुलता है।

प्रायश्चित

सर्वप्रथम यह नाटक सन् १९१४ में 'इन्दु' में प्रकाशित हुआ[4] । इसके पश्चात् इसे चित्राधार के द्वितीय संस्करण में संगृहीत कर दिया गया। इसका छः दृश्यों में विभाजित कथानक एक मध्यकालीन धटना पर आधारित है । इसकी कथावस्तु पृथ्वीराज और जयचन्द के पारस्परिक बैर और मुहम्मद गौरी के आक्रमण की घटनाओं से सम्बद्ध है। प्रतिकार के रूप में जयचन्द अपने जामाता पृथ्वीराज पर चढ़ाई करता है। युद्ध में उसे मार कर प्रसन्न होता है। आकाशवाणी द्वारा उसके कार्यों पर उसकी भर्त्सना की जाती है । उसे सुन कर तथा युद्ध के रक्तपात को देख कर उसे पश्चाताप होता है। युद्ध से लौटते समय मुहम्मद गौरी कन्नौज पर आक्रमण करता है। जयचन्द अपना सारा दायित्व अपने पुत्र एवं मंत्री को दे कर गंगा में डूब कर आत्महत्या कर लेता है।

---

१. 'अजय किरातहिं देखि चकित हुए के निज मन में ।
पूजन लाग्यों करन सुमन चुनि सुन्दर धन में ।।
लखि किरात के गले सोह कुसुमन की भाला ।
अर्जुन तब करि जोरि कह्यो अस कौन दयाला ।।
गुन गहत जौन शठता किये, सो क्षमहु नाथ वितरहु विजय ।
हमि प्रमुदित पूजित विजय, सो जब शंकर जय जयति जय ।।'
—चित्राधार, सज्जन, पृ० ९९

२. चित्राधार, सज्जन, पृष्ठ ११४—'धर्म को राज सदा जय होवे।'

३. डा० दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, तृतीय संस्क०, पृ० २१४

४. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, 'प्रसाद की नाट्य-कृतियों का कालक्रम' नामक शीर्षक उद्धरित ।

इसका कथानक जयचन्द, पृथ्वीराज, मुहम्मद गौरी आदि ऐतिहासिक पात्रों को लेकर चला है, परन्तु इसमें चरित्र-चित्रण को विशेष स्थान नहीं दिया गया है। घटनाओं की प्रधानता रहने से पात्रों का चरित्र उभरने नहीं पाया है। इसमें 'सज्जन' की प्राचीन परम्परा (प्रारम्भ में नान्दी पाठ और प्रस्तावना तथा अन्त में भरत-वाक्य) के स्थान पर नवीन अर्थात् पाश्चात्य परम्परा को अपनाया गया है। इसमें न नान्दी है, न प्रस्तावना, न पद्यमय वार्तालाप है, न संगीत; और त्रासदी होने के कारण न अन्त में भरत-वाक्य ही है। इस नाट्य रचना पर शेक्सपीयर के मैकवैथ का प्रभाव परिलक्षित होता है।[1] पात्रों की सामाजिक स्थिति पर विचार कर लेखक ने उसके अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है। यह प्रयोग भी केवल परीक्षा के विचार से ही किया है, क्योंकि भविष्य में उसका प्रयोग नहीं है[2]।

कल्याणी परिणय

कल्याणी-परिणय का प्रथम प्रकाशन नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १७, संख्या २, में सन् १९१२ को हुआ। इसके उपरान्त यह चित्राधार के प्रथम संस्करण में सन् १९१८ में छपा। अब यह स्वतन्त्र रूप से उपलब्ध न हो कर 'चन्द्रगुप्त मौर्य' के चतुर्थ अंश में समाविष्ट मिलता है। उसकी कथावस्तु ९ दृश्यों में विभक्त है। इसमें मौर्य-कालीन इतिहास की झांकी प्रस्तुत की गई। चन्द्रगुप्त द्वारा परास्त होने पर सैल्यूकश अपनी पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ करता है।

'कल्याणी परिणय' की कथावस्तु संक्षिप्त होने के कारण चरित्र-चित्रण के विकास को अवसर नहीं मिलने पाया है। फिर भी चाणक्य की कूटनीतिज्ञता एवं दूर-दर्शिता, चन्द्रगुप्त की शूरता एवं युद्ध-कौशल तथा सैल्यूकस की वीरता एवं अभिमान की भावना दृष्टव्य है। इसमें भारतीय नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तों का पालन किया गया है। पद्यात्मक संवादों की अधिकता है, जिसका परित्याग उत्तरकालीन नाटकों में कर दिया गया है। प्रारम्भ में प्रस्तावना के स्थान पर नान्दी पाठ है और अन्त में भरत-वाक्य के निर्वाह के लिए कल्याणी-परिणय से सम्बन्धित एक मंगल-गान है। गीतों का प्रयोग प्रसंगानुकूल हुआ है।

करुणालय

इसका प्रथम प्रकाशन सन् १९१२ में हुआ[3]। गीति-शैली में लिखे हुए इस

---

१. किशोरीलाल गुप्त, 'प्रसाद' का विकासात्मक अध्ययन, पृ० १५५-५६

२. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० ६

३. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, 'प्रसाद की नाट्य-कृतियों का कालक्रम' से उद्धरित।

एकांकी का पौराणिक कथानक पांच दृश्यों में विभाजित बलि-विरोध पर आधारित है। राजा हरिश्चन्द्र अपने सेनापति सहित नौका-विहार कर रहे हैं, उसी समय आकाशवाणी होती है। महाराज ने वरुण को पुत्र बलि चढ़ाने की प्रतिज्ञा की थी, परन्तु वह पूर्ण न हो सकी। उनका पुत्र रोहित बलि के भय से वन में जा कर सौ गायों के बदले अजीगर्त के मझले पुत्र शुनःशेष को बलि हेतु लाता है। बलि के समय अजीगर्त आकर सौ गायें और मांगता है। इसी समय विश्वामित्र अपने सौ पुत्रों सहित आते हैं। तभी सुव्रता दासी न्याय की भीख मांगती हुई वहां आती है। वह विश्वामित्र और शुनःशेष को पहचान लेती है। वह स्वयं को विश्वमित्र की गन्धर्वविवाहिता पत्नी बतलाती है, जिसे विश्वामित्र ने जंगल में छोड़ दिया था। वहीं शुनःशेष का जन्म होता है। सुव्रता पुत्र को वहीं छोड़ कर दासी बन गई थी। विश्वामित्र भी दोनों को पहचान लेते हैं। शुनःशेष के बन्धन खुल जाते हैं। वह अपने माता-पिता से मिल जाता है और बिछुड़े हुए पति-पत्नी भी मिल जाते हैं।

कथा संक्षिप्त होने से पात्रों का चरित्र-चित्रण उभरने नहीं पाया है। राजा हरिश्चन्द्र का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है उसका आधार 'प्रसाद' की कल्पना है। राजा को सत्यवादिता के पथ से डिगता हुआ बतलाया है। प्रसाद ने इस प्रकार के गद्यपद्य मिश्रित नाटक को गीति-नाट्य कहा है[1]। नाटक में अनेक स्थलों पर करुणापूर्ण दृश्य आये हैं। उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रसाद बौद्धदर्शन एवं अहिंसावाद से प्रभावित हैं। इस कृति में नाटकीय अंश की न्यूनता तथा कथातत्व की प्रधानता है। यह कथोपकथन द्वारा पद्य में लिखी हुई कहानी बतलाई जाती है[2]।

राज्यश्री

'राज्यश्री' का प्रकाशन 'इन्दु' में जनवरी सन् १९१५ को हुआ था[3]। इसके प्रथम संस्करण में केवल तीन अंक थे। द्वितीय संस्करण में एक दृश्य और बढ़ा दिया गया है। उपलब्ध संस्करण चार अंकों में विभाजित है। कथानक हर्षकालीन है, जिसका आधार हर्षचरित तथा चीनी यात्री हुएनच्वांग का ऐतिहासिक विवरण है। कथा इस प्रकार है—राज्यश्री कन्नोज के राजा ग्रहवर्मा की पत्नी है। ग्रहवर्मा मृगया खेलने जाता है। मालव-नरेश देवगुप्त छल से उसकी हत्या कर देता है और राज्यश्री को बन्दिनी बनाता है। राज्यवर्धन देवगुप्त से प्रतिकार लेने के लिए उसे बन्दी बनाता है। देवगुप्त मारा जाता है। इसी बीच शान्तिदेव (विकटघोष) राज्यश्री को बन्धन से मुक्त करता

---

१. काव्य, कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ९२-९३

२. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० १०

३. वही, 'प्रसाद की नाट्य कृतियों का कालक्रम' से उद्धरित।

है। वह नरेन्द्रगुप्त के प्रलोभन में आकर राज्यवर्धन की हत्या करता है। फिर वह धन के लोभ से राज्श्री पर अत्याचार करना चाहता है, परन्तु दिवाकरमित्र उसकी सहायता करता है। इसी समय हर्षवर्धन राज्यश्री को खोजता हुआ आता है। राज्यश्री चिता में जल कर प्राणान्त करना चाहती है। हर्षवर्धन उसे पुनः राजरानी बनने का आग्रह करता है, परन्तु वह नहीं मानती।

'राज्यश्री' नाटक के प्रथम संस्करण में नान्दी-पाठ और अंत में प्रशस्तिवाक्य आये हैं। कुछ स्थलों पर पद्यात्मक कथोपकथन भी आये हैं। परन्तु द्वितीय संस्करण कथानक, चरित्र-चित्रण एवं कथोपकथन की दृष्टि से अधिक प्रौढ़ है। डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा का कहना है कि 'राज्यश्री' के परिवर्तित और परिवर्द्धित संस्करण में नाटककार की रचना-शक्ति का प्रौढ़ रूप दिखाई पड़ता है[1]।' नाटक में सात गीत आये हैं, इनमें प्रेम-गीतों की अधिकता है। नाटकीय दृष्टि से इसे सफल नाटक कहा जा सकता है। भाषा पात्रानुकूल है। ऐतिहासिक घटनाओं की अधिकता है। इसे अभिनय-नाटक न कहकर पुस्तकालय-नाटक की श्रेणी में रखा जा सकता है।

उत्तरकालीन नाट्य-साहित्य

उत्तरकालीन नाटकों का रचनाकाल सन् १९२१ से १९३३ तक का है। इस काल में उन्होंने 'विशाख', 'अजातशत्रु', 'कामना', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'स्कन्दगुप्त', 'एक घूंट', 'चन्द्रगुप्त' तथा 'ध्रुवस्वामिनी' नाटकों की रचना की। प्रसादजी के प्रयोग-कालीन नाटक छोटी-छोटी घटनाओं को लेकर चले थे। उन नाटकों में प्रौढ़ता का अभाव था। उन नाटकों में घटनाओं का अभाव होने में वे एक कहानी के सदृश लगते थे; परन्तु उत्तरकालीन नाटकों में ऐतिहासिकता को माध्यम बनाकर घटनाओं की व्यापकता तथा पात्रों का चारित्रिक विकास, अन्तर्द्वन्द्व एवं वाह्यद्वन्द्व आदि बातों का ध्यान दिया गया। इन नाटकों में प्रसाद ने अपनी नाटकीय प्रतिभा का उज्ज्वल रूप प्रस्तुत किया है।

विशाख

'राज्यश्री' नाटक के पांच वर्ष उपरान्त सन् १९२१ में 'विशाख' नाटक का प्रकाशन हुआ[2]। तीन अंकों में विभाजित 'विशाख' का ऐतिहासिक कथानक कल्हण की 'राजतरंगिणी' के आरम्भिक अंश पर आधारित है, परन्तु कथावस्तु में अनेक स्थलों पर परिवर्तन कर दिया गया है। तक्षशिला के गुरुकुल का स्नातक विशाख काश्मीर के राजा नरदेव के राज्य में भ्रमण करता है। राजा द्वारा चन्द्रलेखा की समस्त भूमि

---

१. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २४

२. प्रकाशक, भारतीय ग्रंथ-भंडार, काशी।

छीनकर बौद्ध-विहार को दे दी जाती है। काश्मीर का महन्त चन्द्रलेखा पर मुग्ध होकर उसे बन्दी बना लेता है। विशाख अपने प्रयत्न से उसे छुड़ाता है। फिर राजा नरदेव उस पर आसक्त होता है। प्रजा के विद्रोह से राजा अपने कर्तव्य-पथ पर आ जाता है। विशाख द्वारा चन्द्रलेखा का उद्धार होता है। अन्त में चन्द्रलेखा के साथ गृहस्थ का सुख भोगता है।

'विशाख' नाटक की कथावस्तु ऐतिहासिक होती हुई भी इतनी सरल है कि आचार्य वाजपेयी जी ने इसे एक स्त्री और उसके प्रेमियों की कथा कहा है, जो प्रायः सभी प्रेम-कथाओं में रहा करती है[१]। इसमें नाटककार का प्रमुख उद्देश्य बौद्धविहारों में निवास करने वाले भिक्षुओं के व्यभिचार एवं घृणित कृत्यों का वर्णन करना रहा है। चारित्रिक दृष्टि से नाटक साधारण कोटि का है। पुरुष पात्रों में प्रेमानन्द का चरित्र सबसे उज्ज्वल और प्रभावशाली है। उसे देवकोटि के चरित्रों में रखा जा सकता है। स्त्री-पात्रों में चन्द्रलेखा का चरित्र प्रधान है; परन्तु उसके चरित्र में शारीरिक सौन्दर्य की विशेषता प्रमुख रही है। पात्रों के कथोपकथन सरल हैं; परन्तु कई स्थलों पर पात्रों की 'थियेटरी भाषा' हो गई है[२]। पात्रों द्वारा पद्य-गद्य-मिश्रित भाषा का प्रयोग प्रारम्भिक नाटकों की अपेक्षा कम ही रहा है।

नाटक में कुल मिलाकर छोटे-बड़े ३२ गीत आये हैं। अधिकतर गीत दुःख और करुणा से ओतप्रोत हैं। नाटक में प्रारम्भिक नाटकीय परम्परा का निर्वाह नहीं किया गया है। नान्दी-पाठ को नाटक में कोई स्थान नहीं मिला है। 'हास्य की जैसी छटा इस नाटक में मिलती है, प्रसाद के किसी अन्य नाटक में उपलब्ध नहीं है। शैशव और यौवन की जितनी अनुभूतियाँ इस नाटक में प्राप्त हैं, उतनी कदाचित् अन्यत्र उपलब्ध न हों। उनके शैशव की मधुर स्मृति, यौवन की कठोर विषमताएँ मूर्तिमयी होकर खड़ी हो जाती हैं[३]।'

प्रसादजी के इस नाटक की एक विशेषता यह है कि इसमें चन्द्रलेखा की रक्षा के लिए नाग-विद्रोह एवं न्याय की उपलब्धि में आधुनिक राष्ट्रीय भावना का स्वर दिखाई दे रहा है। प्रेमानन्द के चरित्र में गांधीजी के सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा और मैत्री का स्वर मुखरित हुआ है।

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, संस्क० २००७, पृ० २४०

२. देखो कैसी पिघल गई। गर्म कड़ाई में घी हो गई।
गहने का जब नाम सुना, बस पानी पानी। —विशाख, पृ० ४८

३. डा० दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, तृतीय संस्करण, पृ० २२४-२२५

अजातशत्रु

'अजातशत्रु' नाटक का प्रकाशन सन् १९२२ में हुआ[1]। इसका ऐतिहासिक कथानक तीन अंकों में वर्णित है। नाटक की कथावस्तु तीन स्थानों से सम्बन्ध रखती है— मगध, कौशल और कौशाम्बी । मगध के राजा बिम्बसार का पुत्र अजातशत्रु, जो बाद में राजा हो जाता है, कौशल के राजा प्रसेनजित् का भानजा और कौशाम्बी के राजा उदयन का साला है । इस प्रकार तीनों स्थानों के राज-परिवार परस्पर सम्बद्ध हैं। परिवार की कलह ही राजनीतिक षड्यन्त्र का कारण बन जाती है । सम्पूर्ण नाटक अन्तर्द्वन्द्व एवं बाह्यद्वन्द्व से प्लावित है।

नाटककार को कथावस्तु की विभिन्न घटनाओं को एक सूत्र में बाँधने में किसी अंश तक सफलता मिली है । नाटक की कथा बड़ी होने से वह उपन्यास के सदृश दिखाई देता है । नाटक में कुछ ऐसे दृश्य आये हैं, जिनका कथा-व्यापार से कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु प्रसाद ने ऐतिहासिकता के निर्वाह के लिये इस प्रकार के दृश्यों को स्थान दिया है । कथा की कार्यावस्थाएं भारतीय एवं पाश्चात्य शास्त्रीय पद्धति पर आधारित है । वस्तुयोजना के परिणामस्वरूप पात्रों में करुणा, दया एवं क्षमा के भाव अधिकता से समाहित हैं । चारित्रिक दृष्टि से पात्रों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है । गौतम, वासवी, मल्लिका, पद्मावती को देवत्व की श्रेणी में; प्रसेनजित और बिम्बसार को मानव की श्रेणी में तथा अजातशत्रु, छलना, विरुद्धक, देवगुप्त, मागन्धी आदि पात्रों को मानव की कोटि में रखा जा सकता है।

नाटक में कुल मिलाकर २० गीत आये हैं, जो प्रेम, करुणा, भक्ति तथा दर्शन से प्रयुक्त हैं । भाषा प्रारम्भिक नाटकों की अपेक्षा क्लिष्ट है । इसका प्रमुख कारण दार्शनिक विचारों की बहुलता है।

जनमेजय का नागयज्ञ

इसका प्रकाशन सन् १९२६ में हुआ[2]। कथानक महाभारत की एक पौराणिक कथा पर आधारित है। नाटक की कथावस्तु तीन अंकों में विभाजित है। कथा का प्रारम्भ ब्राह्मणों और क्षत्रियों के विद्रोह से होता है। एक दिन परीक्षित के पुत्र जनमेजय से ब्रह्महत्या हो गई । इसके प्रायश्चित के लिये अश्वमेध यज्ञ कराया गया। इस पर ब्राह्मण उत्तेजित हुए । अन्त में उन्होंने यज्ञ के नाग-दौहित्र सोमश्रवा को अपना पुरोहित बनाया। यज्ञ के मध्य में ही नागों का हस्तिनापुर पर आक्रमण हुआ। जनमेजय ने यज्ञ के बीच ही नागों का दमन किया और तक्षशिला पर अपना अधिकार

१. प्रकाशक, हिन्दी-ग्रंथ-भंडार, काशी।
२. प्रकाशक, साहित्य-रत्नमाला कार्यालय, काशी।

जमा लिया। इस प्रकार नाग-जाति का विद्रोह समाप्त हो गया।

प्रस्तुत नाटक में अधिकतर पात्र ऐतिहासिक हैं। पात्रों की अधिकता से चरित्र पूर्णतः उभर नहीं पाये हैं। नाटक में कुल दस गीत आये हैं। कुछ काट-छांट करके नाटक को अभिनयशील बनाया जा सकता है। दूसरे अंक के सातवें दृश्य में नागों द्वारा आग लगाने का वर्णन है। तीसरे अंक के आठवें दृश्य में जीवित नागों की आहुतियां दी गई हैं। इनको हटाने पर नाटक रंगमंचीय बन सकता है। भाषा पात्रानुकूल है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' प्रौढ़काल की रचना होने पर भी इस नाटक में वस्तु-संविधान अत्यन्त शिथिल एवं अशास्त्रीय है। अशास्त्रीय इसलिए है कि अन्य नाटकों में घटना-क्रम का आरोह जैसे अन्त में एक समष्टि प्रभाव उत्पन्न करके रसोद्रेक में योग देता है वैसे इस रचना में नहीं दिखाई पड़ता[1]।

कामना

'कामना' नामक एकांकी का रचनाकाल सन् १९२३-२४ है; परन्तु पुस्तक के रूप में इसका प्रकाशन सन् १९२७ में हुआ[2] 'कामना' प्रतीक-शैली में लिखा हुआ नाटक है, जिसमें भावनाओं को नाटकीय-पात्रों के रूप में चित्रित किया गया है। यह 'प्रवन्धचन्द्रोदय', 'विज्ञान गीता' और 'देवमायाप्रपंच' की शैली पर लिखा गया है। पंत कृत 'ज्योत्सना' भी इसी प्रकार की प्रतीक-शैली की रचना है।

'कामना' की कथावस्तु का आरम्भ समुद्रतट पर स्थित फूलों के द्वीप से होता है। इस द्वीप की रानी कामना है। कामना के अतिरिक्त इस द्वीप के लीला, लालसा और विनोद निवासी हैं। एक विदेशी युवक विलास यहां पर आता है। कामना उसका स्वागत करती हैं। वह अपने व्यक्तित्व से सभी को प्रभावित कर लेता है। सर्वप्रथम वह स्वर्ण और मदिरा के प्रभाव से कामना को अपने अधिकार में करना चाहता है। कामना स्वयं भी उसे चाहती है; परन्तु वह उससे विवाह नहीं करती। कामना के प्रयत्नों द्वारा लीला का विवाह विनोद से होता है। उधर विलास का विवाह कामना से न हो कर लालसा से होता है। द्वीप के चारों तरफ स्वर्ण, मदिरा और विलासिता का प्रभाव स्थापित हो जाता है। कामना के प्रयत्न से विवेक सबको सावधान करना चाहता है। संतोष इस स्वर्ण, मदिरा और विलास से प्रभावित सभ्यता पर व्यंग्य करता है। भूकम्प में सारा नगर नष्ट हो जाता है। विलास और लालसा के जाल की समाप्ति होती है। अन्त में कामना का संन्तोष से पुर्नमिलन होता है। वह उसका हाथ पकड़ती है।

---

१. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २३०

२. वही, 'प्रसाद की नाट्य-कृतियों का कालक्रम' नामक शीर्षक से उद्धरित।

कथावस्तु का चयन बड़े ही मार्मिक ढंग से किया गया है । कथा में रूपक के आधार पर मानव-सभ्यता का जन्म और बिलास बतलाया गया है । 'फिर भी उसकी रेखायें अस्पष्ट नहीं हैं । कामना और विलास का व्यक्तित्व काफी मांसल है । विवेक में खासी शक्ति है । उधर लालसा के चरित्र की रेखाएँ चंचल हैं । शेष पात्र साधारण रूपक के पात्र हैं'[1] । पात्रों का चरित्र प्रतीकों के रूप में देखा जा सकता है । नाटक में अभिनेयता का अभाव है । 'कामना' का अन्त प्रसादान्त न हो कर सुखान्त रूप में हुआ है । प्रसाद आनन्द के उपासक हैं, अतः उन्होंने दुखद वातावरण को अन्त में सुख में परिणित कर दिया है । नाटक की भाषा भावपूर्ण और कलात्मक है ।

स्कन्दगुप्त

'स्कन्दगुप्त' का प्रकाशन सन् १९२८ में हुआ[2] । इस नाटक की ऐतिहासिक कथावस्तु पांच अंकों में विभाजित है । गुप्तकुल के विलासी सम्राट् अपनी छोटी रानी अनन्तदेवी से प्रभावित हैं । अनन्तदेवी अपने पुत्र पुरगुप्त को शासक बनाना चाहती है । स्कन्दगुप्त महाराज कुमारगुप्त की पहली रानी देवकी से उत्पन्न हुआ है । स्कन्दगुप्त एक योग्य व्यक्ति है । उसमें शासकोचित गुण हैं; परन्तु वह अपने अधिकारों के लिए उदासींन दिखाई देता है । मालव को विदेशी आक्रमण से बचाने के लिए वह अटूट प्रयत्न करता है। उधर स्कन्दगुप्त की सौतेली मां अपने पुत्र पुरगुप्त को शासक बनाने के लिए षड्यन्त्र रचती है । कुमारगुप्त का निधन होने पर अनन्तदेवी शर्वनाग की सहायता से देवकी की हत्या करना चाहती है । स्कन्दगुप्त ठीक समय पर पहुंच कर अपनी मां की रक्षा करता है । स्कन्दगुप्त मालव के सिंहासन पर अभिषिक्त होता है । धनकुबेर की कन्या विजया स्कन्दगुप्त की ओर आर्कषित होती है । मालव-कुमारी देवसेना ने भी स्कन्दगुप्त को अपने अन्तःकरण में प्रविष्टित कर रखा है, परन्तु वह विजया को उसकी ओर आर्कषित होते देख कर यह रहस्य किसी से नहीं कहती । विजया भटार्क की ओर आर्कषित होती है; परन्तु स्कन्दगुप्त विजया को चाहता है । अनन्तदेवी पुनः हूणों से मिलकर युद्ध करती है । भटार्क उसका साथ देता है वह । ठीक समय पर शुभा का बाँध काट देता है। स्कन्दगुप्त अपनी सारी सेना के साथ बह जाता है । स्कन्दगुप्त पुनः युद्ध करने के लिए सैन्य-संगठन करता है । अब भट्टार्क उसके साथ हो जाता है । सैन्य-संचालन के लिए विजया के रत्नागार से उसे धन मिलता है । युद्ध में हूण पराजित होते हैं । स्कन्दगुप्त पुरगुप्त को राज्य देकर आजीवन कौमार्यव्रत की प्रतिज्ञा करता है ।

---

१. डा० नगेन्द्र, प्रसाद की कामना, जयशंकर प्रसाद जीवनदर्शन, कला और कृतित्व, प्रथम संस्करण, पृ० १२२.

२. प्रकाशक, भारती-भण्डार, काशी ।

१. कथावस्तु में घटनाओं का पूर्ण समाहार हुआ है। प्रत्येक दृश्य में उत्सुकता बनी रहती है और उत्सुकता की चरमसीमा नाटक के चतुर्थ अंक में दिखाई देती है, जहां स्कन्दगुप्त की सारी आशाओं पर तुषारापात होता है, परन्तु अन्त में घटनाओं की चरमसीमा पर पहुंच कर नाटक शांतिपुर्ण वातावरण में समाप्त होता है। पात्रों में अन्तर्द्वन्द्व की योजना की गई है। इसकी योजना जीवन की गहन समस्याओं को प्रकाश में लाने के लिए हुई है। सफल पात्र वही है जो इन समस्याओं पर विजय प्राप्त कर सके। पात्रों का चयन गुण एवं दोष के साथ किया गया है। स्कन्दगुप्त और पुरगुप्त पर्णदत्त और भट्टार्क, देवसेना और विजया, देवकी और अनन्तदेवी आदि पात्र विभिन्न गुण-दोषों पर आधारित हैं।

नाटकीय दृष्टि से प्रसाद की यह सफल कृति है। नाटक में कुल १७ गीत आये हैं। अधिकतर गीत प्रेम और सौन्दर्य से ओत-प्रोत हैं। भाषा संस्कृतगर्भित होते हुए भी पात्रानुकूल है। नाटक का उद्देश्य भारतवासियों को जागृत करना है। नाटक राष्ट्रीय-भावना से परिव्याप्त है। इसमें नदी, युद्ध वन आदि के दृश्यों की अधिकता है। इनको हटाने पर नाटक अभिनय योग्य बन सकता है। आचार्य वाजपेयी इस नाटक को कलात्मक दृष्टि से ऊँचा मानते हुए कहते हैं कि--'इस नाटक की कला-क्षमता उनके अन्य नाटकों की अपेक्षा ऊँची है[1]।

एक घूँट

'एक घूँट' आधुनिक-काल का प्रथम एकांकी है, जिसका प्रकाशन सन् १९२९ में हुआ[2]। इसका कथानक एक ही दृश्य पर आधारित है। 'एक घूँट में प्रसाद ने जीवन के सम्बन्ध में कुछ विचारों को रूपक में प्रस्तुत किया है। जीवन का लक्ष्य क्या है ? आदर्श और यथार्थ में क्या भेद है ? स्त्री और पुरुष में किस प्रकार के सामंजस्य की आवश्यकता है ? इन प्रश्नों के उत्तर प्रसाद ने विभिन्न चिन्तन-धाराओं के प्रतिनिधियों से दिलवाये हैं[3]। नाटक का कथानक इस प्रकार है वरुणाचल आश्रम में रसाल की पत्नी वनलता अपने को उपेक्षिता समझ कर निराश अवस्था में बैठी हुई है। रसाल आनन्द के स्वागत में एक व्याख्यान देने की तैयारी में है। आनन्द स्वच्छन्द प्रेम का समर्थक है। वह इसी का प्रचार करता है। रसाल आनन्द के स्वागत में अपने व्याख्यान द्वारा आनन्द के संदेश की व्याख्या करता है। उपस्थित जन आनन्द के

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, पृ० १६१।

२. प्रकाशक, पुस्तक मंदिर, काशी। डा० जगन्नाथ प्रसाद ने पुस्तक के रूप में इसका प्रकाशन सन् १९३० माना है।

३. डा० सोमनाथ गुप्त, हिन्दी नाट्य-साहित्य का इतिहास, दूसरा सं०, पृ० १९१।

व्याख्यान से प्रभावित होते हैं। 'जैसे उजली धूप सब को हँसाती हुई आलोक फैला देती है, जैसे उल्लास की मुक्त प्रेरणा फूलों की पंखड़ियों को गदगद कर देती है, वैसे ही जीवन की निरन्तर परिस्थिति होनी चाहिए'[1]। आनन्द प्रेमलता की ओर आकर्षित होता है, वह उससे प्रेम की एक घूँट मांगता है। विदूषक और झाड़ू वाला भी अपनी पत्नियों को अपनाते हैं। वनलता का हृदय-भाव जानकर रसाल भी उसे अपनाता है। अन्त में प्रेमलता आनन्द का एक घूँट पीने का आग्रह करती है। इस प्रकार स्वच्छन्द-प्रेम का प्रसार होता है।

इस एकांकी में स्वच्छन्द-प्रेम औ आनन्दवादी सिद्धान्तों को स्थान दिया गया है। वरुणाचल, आश्रम, कुंज, मुकल, वनलता, रसाल, प्रेमलता, आनन्द आदि पात्रों का प्रतीक के रूप में आवरण हुआ है। इसमें जीवन से सम्बन्धित विभिन्न विचारों का प्रतिवादन बड़े ही सुन्दर ढंग से हुआ है। इस एकांकी में आये हुए गीत करुणा और दुख से प्लावित हैं। डा० जगन्नाथ प्रसाद इस नाट्य कृति को अन्योपदेशिक रचना मानते हैं[2]।

चन्द्रगुप्त

'चन्द्रगुप्त' नाटक का प्रकाशन सन् १९३१ में हुआ[3]। इस समय राष्ट्रीय भावना जनता के अन्दर प्रबल रूप से थी। सन् १९१९ के रौलेक्ट ऐक्ट ने जनता पर गहरा प्रभाव डाला था। ऐसे समय में प्रसादजी ने 'चन्द्रगुप्त' में क्रांतिकारी भावनाओं को जाग्रत किया। 'चन्द्रगुप्त' का चार अंकों में विभाजित कथानक एक मौर्यकालीन घटना पर आधारित है। नाटक की कथावस्तु चन्द्रगुप्त द्वारा पंजाब की क्रांति में भाग लेने से लेकर अंत में कार्नेलिया से उसका विवाह तथा राक्षस को पुनः मंत्रिपद पर बैठाने तक रही है। अधिकारिक कथावस्तु को आगे बढ़ाने के लिए प्रासंगिक कथाओं का सहारा लिया गया है, परन्तु कुछ प्रासंगिक कथाएँ अलका और सिंहरण, पर्वतस्वर और कल्याणी, चन्द्रगुप्त और कल्याणी की कथाएँ आधिकारिक कथा को आगे बढ़ाने में सहायक नहीं हुई हैं। नाटक में पात्रों की बहुलता होते हुए भी पात्रों की चारित्रिक विशेषता का ध्यान रखा गया है।

नाटक में संवाद पात्रानुकुल हैं। स्वगत भाषणों का अधिक उपयोग हुआ है। संवादों में रस के अनुसार वीररस के प्रसंग में पदावली, भाषा, शैली, एवं भाव की योजना हुई है। शृंगाररस की पदावली कोमल, शान्त एवं सरस है। शान्तरस में गम्भीर एवं

---

१. एक घूँट, पृ० १६-१७।

२. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २०६।

३. प्रकाशक, भारती भण्डार, काशी।

शान्त वातावरण अभिव्यक्त हुआ है।

पात्रों की भाषा में व्यक्तिगत विशेषता है। चाणक्य की भाषा में अपूर्व शक्ति दृढ़ता और ओज है। चन्द्रगुप्त चाणक्य का मुखापेक्षी है, अतः चाणक्य के साथ उसकी भाषा में शक्ति और बुद्धि है । चाणक्य की अनुपस्थिति में वह साधारण प्रेमी-सा दिखाई देता है । इसी कारण उसका प्रेमी रूप कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व पर हावी रहने से अन्तर्द्वन्द्व की अधिकता है। सिंहरण और अलका राष्ट्रीय प्रेम से ओत-प्रोत होने से उनकी भाषा ओजपूर्ण और सरल है । आम्भीक के देशद्रोही होने से उसकी भाषा स्वार्थपरता एवं अकर्मण्यता से परिपूर्ण है । इतना होने पर भी प्रसाद के सभी पात्र खड़ी बोली ही बोलते हैं । नाटक में तत्कालीन समाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का सफल चित्रण हुआ है । प्रसादजी ने परिस्थितियों के अनुकूल एवं पात्रों के व्यक्तित्व को उभारने के लिये गीतों को स्थान दिया है । नाटक में कुल १३ गीत आये हैं। गीतों में मनोविज्ञान की पीठिका का योग है। नाटक में इतर भाव होते हुए भी उत्साह भाव का वातावरण ही प्रशस्त है।

नाटक की कथा २५ वर्षों की है, संवाद लम्बे हैं और गीतों की अधिकता है। नदियों के दृश्य, आत्महत्या, एवं युद्ध के दृश्य अनुपयुक्त हैं, परन्तु कथा एवं दृश्यों में कुछ परिवर्तन करके नाटक को अभिनय योग्य वनाया जा सकता है । चन्द्रगुप्त को आधार बनाकर द्विजेन्द्रलाल राय ने भी नाटक लिखा था, किन्तु राय के नाटक में विश्व-प्रेम की भावना अधिक है और प्रसाद के नाटक में बलिदानमयी राष्ट्रीयता की भावना प्रबल है ।

ध्रुवस्वामिनी

'ध्रुवस्वामिनी' प्रसादजी का अंतिम ऐतिहासिक नाटक है । इसका प्रकाशन सन् १९३३ में हुआ[1] । इस नाटक का ऐतिहासिक कथानक गुप्तकालीन इतिहास पर अवलम्बित है । इसकी कथावस्तु तीन अंकों में विभाजित है जिनमें, केवल तीन ही दृश्य आये हैं। नाटक की कथा नारी के आत्म-निर्णय की समस्या और उसके समाधान के प्रयत्नों को लेकर चली है । इसकी कथा इस प्रकार है—गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त की इच्छा के विरुद्ध उत्तराधिकार नियम के अनुसार रामगुप्त सिंहासनरूढ़ होता है। ध्रुवस्वामिनी का उससे विवाह होता है, परन्तु ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त के स्थान पर उसके छोटे भाई कुमार चन्द्रगुप्त से प्रेम करती है । रामगुप्त, ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त के विषय में चिन्तित रहता है । उधर शक अवसर पाकर रामगुप्त को पहाड़ी घाटियों में घेर लेते हैं । उनका सरदार शकराज एक संधिपत्र भेजता है, जिसमें रामगुप्त से

१. प्रकाशक, भारती-भंडार, काशी।

ध्रुवस्वामिनी आदि रमणियों की मांग की जाती है। क्लीव रामगुप्त, जो अपना समय हीजड़े, बौने, कुबड़े आदि के दृश्य देखने तथा मदिरोन्मत्त रहने में व्यतीत करता है, ध्रुवस्वामिनी की एक भी बात नहीं मानता। अंत में ध्रुवस्वामिनी चन्द्रगुप्त के साथ उपहार-स्वरूप शक-शिविर में जाती है। वहाँ चन्द्रगुप्त शकराज का वध करता है, तथा वहाँ का सम्पूर्ण शासन-भार अपने अधिकार में करता है। रामगुप्त दुर्ग-विजय का समाचार सुनकर वहाँ आता है, परन्तु ध्रुवस्वामिनी अपने विवाह को राक्षस विवाह कहकर उस बंधन से मुक्त होना चाहती है। इसी समय कोमा अपने पति शकराज का शव मांगने आती है। ध्रुवस्वामिनी उसे शव ले जाने की अनुमति दे देती है। परिषद् द्वारा ध्रुवस्वामिनी को मोक्ष की आज्ञा हो जाती है। किसी सैनिक द्वारा राम-गुप्त की हत्या होने पर 'राजाधिराज चन्द्रगुप्त और महादेवी ध्रुवस्वामिनी की जय' का स्वर गूँज उठता है।

'ध्रुवस्वामिनी' की कथा में नाटकीयता का पूर्ण निर्वाह किया गया है। वस्तु-चयन की दृष्टि से यह प्रसाद के नाटकों में सबसे अधिक सुगठित है। प्रमुख कथा प्रथम और द्वितीय अंक में ही रही है, परन्तु तृतीय अंक में मोक्ष की समस्या का समाधान हुआ है, जो विशेष कथा नहीं है। नाटक में प्रसाद ने प्रमुख रूप से मोक्ष-प्रथा तथा पुनर्लग्न-समस्या पर प्रकाश डाला है। नाटक में अंतर्द्वन्द्व का सुन्दर निर्वाह हुआ है। यह द्वन्द्व ध्रुवस्वामिनी, रामगुप्त तथा चन्द्रगुप्त के हृदय में चलता है।

अभिनय की दृष्टि से यह एक सफल नाटक है। 'रंगमंच की अनुकूलता का जितना विचार इसमें दिखाई पड़ता है, उतना 'चन्द्रगुप्त' और 'स्कन्दगुप्त' आदि नाटकों में नहीं है[1]।'

'ध्रुवस्वामिनी' में चार गीत आये हैं। दो गीत मंदाकिनी द्वारा गाये गये हैं। पहला गीत 'यह कसक और आंसू सहजा' में उसकी मनोदशा व्यक्त हुई है। दूसरे गीत 'पैरों के नीचे जलधर हो, बिजली से उनका खेल चले' में उत्साह और स्वालम्ब की भावना रही है। 'यौवन! तेरी चंचल छाया' वाले गीत में कोमा के प्रणय की पिपासा और आकुलता की अभिव्यंजना है। नर्तकियों के गान 'अस्ताचल पर युवती संध्या की खुली अलक घुंघराली है' में प्रकृति का सुन्दर चित्र अंकित हुआ है।

नाटक की भाषा संस्कृत-गर्भित है। उसमें सरलता, मधुरता और सजीवता गुण अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं।

कहानी

कहानी के क्षेत्र में ऐतिहासिक दृष्टि से प्रसादजी का प्रमुख स्थान है। इन्होंने

१. डा० जगन्नाथ शर्मा; प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २०२।

पुरानी परिपाटी को समाप्त कर चरित्र-प्रधान एवं भावात्मक कहानियों का सृजन किया। प्रथम दो पौराणिक कथाएँ—ब्रह्मर्षि तथा पंचायत—सं० १९६७ में 'इन्दु' में प्रकाशित हुई[1]। बाद में इनका संकलन 'चित्राधार' में कर दिया गया। शेष ७० कहानियाँ पाँच संग्रहों—छाया (सं० १९६९), 'प्रतिध्वनि' (सं० १९८३), 'आकाशदीप' (सं० १९८६), 'आंधी' (सं० १९८६) तथा 'इन्द्रजाल' (सं० १९९३) में संगृहीत हुई। प्रसाद जी की प्रथम कहानी 'ग्राम' तथा अन्तिम 'सालवती' है।

'छाया' में ग्यारह, 'प्रतिध्वनि' में पन्द्रह, 'आकाशदीप' में उन्नीस, 'आंधी' में ग्यारह, 'इन्द्रजाल' में चौदह तथा 'चित्राधार' में दो कहानियां संगृहीत हैं। इस प्रकार उन्होंने कुल मिलाकर ७२ कहानियां हिन्दी-साहित्य को भेंट की, जो ऐतिहासिक, यथार्थवादी, आदर्शवादी, रहस्यवादी, प्रतीकात्मक, प्रेममूलक, सामाजिक, ग्राम-जीवन एवं प्राकृतिक वातावरण से सम्बन्धित हैं। उनमें से कुछ गद्य काव्य के निकट हैं। कुछ लघु-कथाएँ तो प्रेम से छलकती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। ये कहानियाँ सत्य-प्राधान्य की दृष्टि से वंश-प्रधान, चरित्र-प्रधान, और वातावरण-प्रधान हैं। रचना में वर्णनात्मक एवं संलाप-प्रणाली का प्रयोग ही अधिक किया गया है।

छाया

'छाया' की कहानियाँ प्रारम्भिक होने की दृष्टि से साधारण कोटि की हैं। इनमें अधिकांश कहानियां कथा-प्रधान हैं। कथानक सूक्ष्म और संकेतपूर्ण हैं। कहानियाँ छोटे-छोटे अनुच्छेदोंमें विभक्त हैं। प्रसाद के इस कहानी-संग्रह में—'तानसेन', 'शरणागत' 'सिकन्दर की शपथ' 'चितौर-उद्धार', 'अशोक' 'जहांनारा' तथा 'गुलाम' ऐतिहासिक; 'चन्दा', 'रसिया बालम' तथा 'मदन-मृणालिनी' प्रेम-प्रधान, तथा 'ग्राम' यथार्थवादी कहानी हैं। ऐतिहासिक कहानियों में वातावरण की दृष्टि से नीरसता आ गई है। इन कहानियें में प्रसादजी का प्रारम्भिक प्रयत्न होने से प्रौढ़ता का अभाव रहा है। ऐतिहासिक कहानियों में चरित्र उभर आया है। कुछ स्थलों पर कथोपकथन बड़े प्रभावोत्पादक हो गये हैं। कहीं-कहीं भाषा अधिक मार्जित नहीं है, संस्कृति शब्दों का बाहुल्य है। प्रसादजी की कुछ कहानियां (गुलाम, जहांनारा) में नाटकीयता की बड़ी गहरी झलक है। 'ग्राम', ,चन्दा,' तानसेन' आदि कहानियों में ग्राम-गीत की झलक दिखाई देती है[2]।

---

१. किशोरीलाल गुप्ता, प्रताप का विचारात्मक अध्ययन, पृ० २५१

२. (क) अब की सावन साहयो घर रहुरे।'—छाया, ग्राम, पृ० ३३

(ख) 'दरद-दिल काहि सुनाऊँ प्यारे।'—वही, चन्दा, पृ० १९

(ग) 'कहो, री जो कहिये की होई।'—वही, तानसेन, पृ० १५

प्रतिध्वनि

'प्रतिध्वनि' प्रसादजी का द्वितीय कहानी-संग्रह है। इसमें कुल पन्द्रह कहानियाँ हैं। इनमें 'चक्रवर्ती का स्तम्भ' ऐतिहासिक; 'गुदड़ी का लाल', और 'कलावती की शिक्षा' यथार्थवादी; 'प्रलय' और 'पत्थर की पुकार' प्रतीकात्मक; 'प्रतिमा' 'गूदड़सांई', 'अघोरी का मोह' और 'पाप की पराजय' मनोवैज्ञानिक; 'प्रसाद', 'उस पार का योगी' और 'खण्डहर की लिपि' रहस्यवादी; 'सहयोग' प्रेम-प्रधान तथा 'करुणा की विजय' और 'दुखिया' करुणा-प्रधान कहानियां हैं। ये कहानियां वस्तु या चरित्र-प्रधान न होकर विशेष परिस्थिति, घटना या भाव को लेकर चली हैं। इन कहानियों में 'अघोरी का मोह', 'खण्डहर की लिपि', 'उस पार का योगी', 'पत्थर की पुकार', 'प्रतिभा', 'प्रलय' आदि प्रमुख हैं। इन कथाओं में प्रसाद का कवि रूप उभर आया है। गद्य-गीतों की अधिकता है। 'पत्थर की पुकार' नामक कहानी में एक गद्य-गीत का उदाहरण देखिये—

'मैं अपने सुखद शैल में संलग्न था। शिल्पी! तूने मुझे क्यों ला पटका, यहां तो मानव की हिंसा का गर्जन मेरे कठोर वक्षस्थल का भेदन कर रहा है। मैं तेरे प्रलोभन में पड़कर चला आया था, कुछ तेरे बाहुल्य से नहीं। क्योंकि मेरी प्रबल कामना थी कि मैं एक सुन्दर मूर्ति में परिणित हो जाऊँ। उसके लिए अपने वक्षस्थल को क्षत-विक्षत कराने को प्रस्तुत था। तेरी टांकी से हृदय चिराने में प्रसन्न था कि कभी मेरी इस सहनशीलता का पुरस्कार, सराहना के रूप में मिलेगा और मेरी मौन मूर्ति अनन्त-काल तक उस सराहना को चुपचाप गर्व से स्वीकार करती रहेगी। किन्तु निष्ठुर! तू ने अपने द्वार पर मुझे फूटे हुए ठीकरे की तरह ला पटका। अब मैं यहीं पर पड़ा-पड़ा कब तक अपने भविष्य की गणना करूँगा[1]?'

कुछ कहानियों में अतीत की स्मृतियां एवं दार्शनिकता के चित्र प्रस्तुत किये हैं। 'छाया' संग्रह की अपेक्षा इस संग्रह में कला का विकास दिखाई देता है। भाषा और शैली की दृष्टि से यह प्रौढ़तर संग्रह है। इसमें 'गूदड़ सांई' जैसी कुछ लघु कथाएँ भी संगृहीत हैं।

आकाशदीप

'आकाशदीप', कहानी-संग्रह में कुल उन्नीस कहानियां हैं। इनमें 'स्वर्ग के खण्डहर', 'सुनहला सांप', 'देवदासी', 'बन्जारा', 'चूड़ीवाली', 'अपराधी,' 'रूप की छाया' और 'विसाती' प्रेम-प्रधान; 'कला', 'समुद्र-संतरण,' 'वैरागी' और 'प्रतिध्वनि' भाव-प्रधान 'अपराधी और कमला' रहस्यवादी तथा 'हिमालय का पथिक' मनोवैज्ञानिक कहानियां हैं। इनमें 'आकाशदीप' और 'स्वर्ग के खण्डहर' तो ऐसी कहानियां हैं जिन्होंने प्रसाद

१. प्रतिध्वनि, पत्थर की पुकार, पृ० ४५.

की कला को उच्च श्रेणी पर पहुंचा दिया है। आकाशदीप के प्रकृति-चित्रण में प्रसाद ने कमाल कर दिया है—

'तारे ढक गये। तरगें उद्वेलित हुई, समुद्र गरजने लगा, भीषण आंधी, पिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर कन्दुक-क्रीड़ा और अट्टहास करने लगी[1]।'

इस संग्रह में गद्य-गीत और रेखाचित्र विकसित अवस्था में आये हैं। सूक्तियों का प्रयोग भी अनेक स्थलों पर हुआ है[2]।

आंधी

यह प्रसादजी का चौथा कहानी-संग्रह है। इसमें कुल मिला कर ग्यारह कहानियां संगृहीत हैं। इनमें 'दासी', 'व्रत-भंग' और 'पुरस्कार' ऐतिहासिक; 'आंधी' और 'मधुआ' मनोवैज्ञानिक; 'घीसू' यथार्थवादी; 'ग्रामगीत', 'विजया' और 'नीरा' प्रेम-प्रधान; 'वेड़ी' करुणा-प्रधान तथा 'अमिट-स्मृति' आदर्श-प्रधान कहानियाँ हैं। इनमें 'पुरस्कार' उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी है।

'पुरस्कार' में प्रेम और देश-भक्ति के लिए संघर्ष तथा अन्त में प्राणदण्ड की पुरस्कार-स्वरूप याचना करना प्रेम की चरमसीमा को प्रदर्शित करता है। कर्तव्य पर प्रेम का वलिदान देना ही इस कहानी का उद्देश्य है।

इस संग्रह में गद्य-गीत का भी प्रयोग प्रसादजी ने किया है। दासी कहानी में सूक्तियों से ओत-प्रोत गद्य गीत का उदाहरण देखिये—

'मैं जलती हुई दीप-शिखा हूं और तुम हृदय-रंजन प्रभात हो। जब तक देखती नहीं, जला करती हूं और तुम्हें जब देख लेती हूं, तभी मेरे अस्तित्व का अन्त हो जाता है, मेरे प्रियतम[3]।'

प्रसादजी की रचनाएँ सूक्ति-भण्डार हैं, किन्तु कहानियों में उनका उत्कर्ष दृष्टव्य है। कुछ उदाहरणों से प्रसाद की इन सूक्तियों का अनुमान लगाया जा सकता है—

---

१. जयशंकर प्रसाद, आकाशदीप, पृ० १०.

२. 'सब दुःख है, सब क्षणिक है, सब अनित्य है।'

—आकाशदीप, स्वर्ग के खण्डहर, पृ० ४१.

'मनुष्य की चिता जल जाती है, और बुझ भी जाती है, परन्तु उसकी छाती की जलन, द्वेष की ज्वाला, सम्भव है, उसके बाद भी धक्-धक् करती हुई जला करे।'

वही, प्रतिध्वनि, पृ० ७२.

३. आंधी, दासी, पृ० ६१.

(क) संसार में बहुत से ऐसे काम मनुष्य को करने पड़ते हैं, जिन्हें वह स्वप्न में भी नहीं सोचता[१] ।
(ख) 'मनुष्य दूसरों की दृष्टि में कभी पूर्ण नहीं हो सकता[२] ।'
(ग) 'ऐश्वर्य का मदिरा-विलास किसे स्थिर रखने देता है[३] ।'
(घ) 'अत्याचारी समाज पाप कहकर कानों पर हाथ रखकर चिल्लाता है वह पाप का शब्द दूसरों को सुनाई पड़ता है ; पर वह स्वयं नहीं सुनता[४] ।'
(ङ.) 'स्त्रियों का हृदय अभिलाषाओं का, संसार के सुखों का क्रीड़ा-स्थल है[५] ।

इन्द्रजाल

'इन्द्रजाल' में चौदह कहानियाँ संगुहीत हैं, जिनमें 'चित्र-मन्दिर', प्रागैतिहासिक; 'नूरी', 'गुण्डा', 'देवरथ' और 'सालवती' ऐतिहासिक; 'इन्द्रजाल', 'सलीम' और 'भीख' में यथार्थवादी; 'परिवर्तन' और 'संदेह' मनोवैज्ञानिक; 'चित्र वाले पत्थर' प्रेम-प्रधान; 'अनबोला' आदर्शवादी; 'छोटा जादूगर' करुणाजनक तथा 'विराम-चिह्न' सम-सामयिक कहानियाँ हैं ।

प्रसाद के कहानी-साहित्य पर दृष्टि डालने से विदित होता है कि 'छाया', 'प्रतिध्वनि' की कहानियाँ तरुण रोमांटिक कवि के भाव-चित्र हैं । 'आकाशदीप' की कहानियाँ विकसित होकर जीवन के प्रति एक जागरूक भावात्मक दृष्टिकोण उपस्थित करती हैं ।···लेकिन इस काल की कहानियों ('आंधी' और 'इन्द्रजाल' का रचनाकाल) में जीवन-दर्शन की पेठ और कलात्मक स्तर की ऊँचाई दोनों का संयोग अपूर्व है[६] ।

प्रसादजी की कहानियों के शीर्षक बड़े ही प्रभावोत्पादक और आकर्षक हैं। उनको पढ़ने से पाठक के हृदय में कहानी का एक चित्र उपस्थित हो जाता है। प्रसाद की कहानियों का आरम्भ प्रायः प्रकृति-चित्रण तथा वार्तालाप से होता है । उनमें उनका कवि-रूप उभर आता है । 'पुरस्कार' का आरम्भ कितना रोचक है—'आर्द्रा नक्षत्र; आकाश में काले-काले बादलों की घुमड़, जिसमें देव-दुन्दुभि का गम्भीर घोष । प्राची

१. आंधी, आंधी, पृ० २२
२. आंधी, दासी, पृ० ७०
३. वही, व्रत-भंग, पृ० ९६
४. वही, विजया, पृ० ११७
५. वही, नीरा, पृ० १३७
६. डा० लक्ष्मीनारायण लाल, हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास, (संस्करण १९६०), पृ० २१५-१६

के एक निरभ्र कोने से स्वर्ण-पुरुष झांकने लगा था[1] ।'

प्रसाद की कहानियों का आरम्भ वार्तालाप शैली में भी हुआ है । इससे पात्रों की परिस्थिति का परिचय प्रारम्भ में पाठक के सम्मुख आ जाता है[2] ।'

कहानियों का अन्त भी प्रसाद बड़ी कुशलता से करते हैं। इसका प्रभाव पाठक के हृदय में काफी देर तक रहता है । प्रसाद की कहानियों का अंत प्रभावोत्पादक, मनोवैज्ञानिक, ध्वन्यात्मक तथा कलात्मक होता है । ये कहानियाँ समाप्त हो जाती हैं, किन्तु श्रोता अथवा पाठक इनके किसी पात्र, घटना और भावना को अपने सामने कुछ समय तक के लिए और रखना चाहता है[3] ।

प्रेमचन्द प्रसाद के इन गुणों को व्यक्त करते हुए कहते हैं—'आपकी कहानी में चुस्ती रहती है—आकर्षक 'आरम्भ' तो होता ही है पर 'अन्त' भी अपने ढंग का निराला होता है—बड़ा ही भावपूर्ण, ध्वन्यात्मक और सहसा पढ़ने के बाद पाठक का मन झकझोर उठता है। वह एक समस्या को पुनः सुलझाने लगता है—सोचता है—'फिर क्या हुआ', 'आगे क्या हुआ'—इस प्रकार का 'अंत' कुछ आलोचक अच्छा नहीं मानते पर प्रसादजी की कहानियों का यही गुण है[4] ।'

प्रसादजी की कहानियों में कला का निखरा हुआ स्वरूप दिखाई देता है। प्रसादजी की कहानियों में एक निष्फल यौवन, एक करुण प्रणय, एक दर्दीली स्मृति के चित्र भिन्न-भिन्न प्रकार से चित्रित होते रहते हैं। और इन्हीं के साथ-साथ किसी सूक्ष्म मानवीय मनोवृत्तियों की एक पतली सी रहस्यपूर्ण रेखा भी खींच दी जाती है। उनकी सभी कहानियों के प्लाट प्रायः एक से ही हैं, केवल स्थान और पात्रों के नाम में एकता है।

'उनकी कहानियों को हम एक प्रकार का प्रेम-पूर्ण कथात्मक गद्य काव्य कह सकते हैं, जिसमें घटना और चरित्र, प्रधान न होकर, भाव ही प्रधान होते हैं । इस भावाभिव्यक्ति के लिए ये कथा की सृष्टि गद्य-काव्य के ढंग पर कर देते हैं । उसमें कहानी उतनी ही सूक्ष्म रहती है, जितनी पल्लवों में शिराएं, जो उनके भाव-विकसित हृदय के हरित-विस्तार में ढंकी रहती हैं···प्रसादजी की कहानियाँ एकांकी नाटकों

१. आंधी, पुरस्कार, पृ० १४३
२. आकाशदीप, पृ० ६
३. डा० ब्रह्मदत्त शर्मा, हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन, संस्करण सन् १९५८, पृ० १४९
४. सं० प्रेमचन्द, हिन्दी की आदर्श कहानियाँ, नवां संस्करण, प्रकाशक—सरस्वती प्रेस, बनारस, पृ० १९

की भाँति एकांगी हैं, जिनमें एक मनोवृत्ति, हृदय का एक चित्र अथवा घटना की एक रेखा है[1]।'

'प्रसाद विकासशील और उदार सामाजिक प्रवृत्तियों के निरूपक हैं। उनकी साहित्य-दृष्टि एक आशावादी और स्वातंत्र्य प्रेमी युग की प्रतिनिधि है[2]। उनकी कहानियाँ कोमल कल्पना, विशिष्ट किन्तु उत्थानमूलक भावनाओं से भरी पड़ी हैं[3]।'

उपन्यास

प्रसादजी ने साहित्य संसार में काव्य, नाटक तथा कहानी क्षेत्र में ही पदार्पण नहीं किया, बल्कि वे काव्यकार की मधुरिमा, नाट्यकार की कौशलता एवं व्यावहारिक अनुभव लेकर उपन्यास के क्षेत्र में भी प्रविष्ट हुए हैं। उन्होंने अपने साहित्य में अभी तक पूर्वकालीन संस्कृति का गुणगान अपनी कलामयी तूलिका के सहारे किया था; परन्तु उपन्यास के क्षेत्र में उन्होंने यह प्रकट कर दिया कि वे वर्तमान से विमुख नहीं थे। वे अपने उपन्यासों में वर्तमान-काल की समस्याओं में उलझे अवश्य हैं; परन्तु उन्होंने अपने को उस वातावरण में विलीन नहीं कर दिया है। वे भारतीय संस्कृति के पुजारी थे। अतः वे उसको भूल नहीं पाये। उन्होंने तीन उपन्यासों की रचना की, जिसमें 'कंकाल' और 'तितली' तो उनके पूर्ण उपन्यास हैं और 'इरावती' को अपूर्ण ही छोड़कर वे अपनी ऐहिकलीला समाप्त करके चले गये।

कंकाल

'कंकाल' चार खण्डों में विभाजित एक व्यंग्य-प्रधान सामाजिक उपन्यास है। इसमें रूढ़िवादी धार्मिकता के अन्दर कितना खोखलापन है, इसी का चित्रण करना उपन्यासकार का उद्देश्य रहा है।

'कंकाल' में दो कथाएं चलती हैं। प्रमुख कथा का सम्बन्ध किशोरी और निरंजन तथा मंगल और विजय से है तथा प्रासंगिक कथा का सम्बन्ध किशोरी-श्रीचन्द्र, वदन-माला तथा गोस्वामी, कृष्णशरण से है, जो प्रायः प्रयाग, हरिद्वार, मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, काशी आदि तीर्थ स्थलों पर घटित होती हैं। इन पवित्र स्थलों पर धर्म की ओट में किस प्रकार मानव की निम्न प्रवृत्तियाँ सक्रिय होकर अपना कार्य करती हैं, उसी को प्रदर्शित करना उपन्यासकार का कार्य रहा है।

कथा का आरम्भ किशोरी और निरंजन की बाल्यवस्था के प्रणय से होता है। कालान्तर में निरंजन महात्मा के आशीर्वाद से उत्पन्न होने के कारण उसे उसी के

---

१. शान्तिप्रिय द्विवेदी, हमारे साहित्य निर्माता, पृ० ११०-१११
२. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी, पृ० १३०
३. वही, पृ० १२६

चरणों में चढ़ा दिया जाता है । साधु निरंजन कुम्भ के मेले में अपनी वाल्य-सहेली किशोरी को, जो पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा से हरिद्वार आई है, देखकर आकर्षित होता है। वह साधु-समाज की आँखों में धूल झोंककर किशोरी के प्रेम-व्यापार में तल्लीन हो जाता है, जिसका परिणाम दोनों के अवैध सम्वन्ध से विजय का जन्म होता है। दूसरी ओर रामा के अवैध सम्वन्ध से तारा का जन्म होता है । आदर्शवादी मंगल मेले से भगाई हुई तारा का वेश्यालय से उद्धार करता है, परन्तु वह तारा को गर्भवती बनाकर ठीक विवाह के दिन उसे कलंकित करके भाग जाता है । मंगल भी अवैध सम्बन्ध से उत्पन्न व्यक्ति है। विजय तारा से यमुना बनी हुई नारी से प्रेम करता है । उससे निरास होकर बाल-विधवा घंटी की ओर बढ़ता है, परन्तु वह घंटी का आश्रित होने के कारण और सामाजिक-व्यवस्था के कारण, उससे विवाह करने में असफल रहता है। उधर मंगल जिसने पतिव्रता स्त्री तारा का परित्याग कर दिया था, अन्त में विवाह करता है वदन गूजर की मुसलमान स्त्री से उत्पन्न गाला से । दूसरी ओर ईसाई थामस भी अपनी वासनात्मक तृप्ति के लिए घंटी की ओर अनुरक्त होता है।

इस प्रकार एक ओर 'कंकाल' उपन्यास में साधु निरंजन का पर-स्त्री किशोरी से सम्बन्ध, स्वयंसेवक मंगल का तारा को गर्भवती बना कर छोड़ना और फिर गाला से विवाह करना, पादरी थामस का घंटी की ओर अनुरक्त होना, निरंजन के भण्डार और बाहर की भिखमंगों की स्थिति को देख कर यह कहा जा सकता है कि प्रसादजी ने समाज और धर्म का एक व्यंग चित्र प्रस्तुत किया है । इसमें बतलाया गया है कि धर्म की छाया में मनुष्य की वासना कैसा रूप धारण करती है और उससे मानव सामाजिक क्षेत्र में कितना पिस जाता है। दूसरी ओर नारी-जाति के प्रति संवेदना प्रकट की गई है। उसकी असहाय स्थिति को चित्रित किया गया है । वे पुरुषों के कपटाचरण से छली गई हैं। इनमें प्रमुख रूप से यमुना और घंटी को समाज से उत्पीड़ित बतलाया गया है ।

उपन्यास के अन्त में भारत-संघ की स्थापना एवं उपदेशात्मक मार्ग की ओर प्रदर्शन करने में उपन्यासकार का उद्देश्य सुधारवादी रहा है।

'कंकाल' में कुल मिला कर उन्नीस पात्र आये हैं । इनमें दस स्त्री-पात्र तथा नौ पुरुष-पात्र हैं, जिनमें तारा, विजय और मोहन जारज संतान, यमुना अविवाहिता माता, गुलनार बाल-वैश्या, लतिका, धर्मच्युत नारी, घंटी अज्ञात कुल-शील लड़की, निरंजन व्यभिचार फैलाने वाले मठाधीश, रामदेव लड़की से लड़का बनाने वाले ढोंगी, श्रीचन्द्र अबला और सतीत्व पर हावी होने वाले, मंगल समाज-सुधारवादी-सेवक, तारा का पिता अपनी पुत्री के सतीत्व पर संदेह करने वाले के रूप में आये हैं। उपन्यासकार ने

इन पात्रों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है ।

प्रसादजी ने उपन्यास में धर्म की रूढ़िवादिता से उत्पीड़ित समाज का यथार्थ व्यंग्य चित्र प्रस्तुत करने के साथ-साथ पांडित्यपूर्ण ढंग से दार्शनिक, नियतिवादी एवं धार्मिक विचारों का विवेचन व्याख्यानों के रूप में किया है ।

अन्त में आचार्य वाजपेयी के शब्दों में यह कहना किसी सीमा तक ठीक ही होगा कि 'कंकाल एक व्यंग्यपूर्ण उपन्यास भी है । यह प्रचलित समाज के दृढ़ आवरण, उसकी शिष्टता और सभ्यता के कवच को भेद कर प्रहार करता है और बलपूर्वक हमारी चेतना को जमा देता है[१] ।'

तितली

'तितली' प्रसादजी का दूसरा उपन्यास है । इसकी कथा चार खण्डों में विभाजित है । 'तितली' में तितली-मधुवन और इन्द्रदेव-शैला से सम्बन्धित प्रमुख कथा तथा अनवरी-श्यामलाल, रामदीन-मलिया, मुकुन्दलाल-नन्दरानी की गौण कथाएँ दी गई हैं । इस उपन्यास से सम्बन्धित घटनाओं के प्रमुख केन्द्र शेरकोट, वजरिया और धामपुर हैं ।

इन्द्रदेव धामपुर के जमींदार हैं जो विलायत से बैरिस्टरी पास करके आये हैं, साथ में एक शैला नामक अंग्रेज युवती को, जो वाटैली साहब की बहिन जेन की पुत्री है, लाये हैं । पाश्चात्य रंग में रंगी हुई शैला भारतीय संस्कृति को अच्छा समझती है । उसे ग्राम्य-जीवन से मोह है । लेडी डाक्टर अनवरी को इन्द्रदेव से लगाव होने के कारण वह शैला को अपने मार्ग से हटाने के लिए इन्द्रदेव की पति-उपेक्षिता वहिन माधुरी को इन्द्रदेव की मां श्याम दुलारी की सम्पति का वारिश होने का प्रलोभन देकर अपने वश में कर लेती है । इन्द्रदेव शैला को घर में अपमानित देखकर घरेलू वातावरण को त्याग कर बैरिस्टरी करने काशी चले जाते हैं । इस विरक्ति की भावना से अपने जमींदारी सम्बन्धी सम्पूर्ण अधिकार अपनी मां को दे देते हैं । अन्त में धामपुर में मृत्यु-शैया पर पड़ी श्याम दुलारी शैला को अपनी बहू के रूप में स्वीकार करती हैं और अपने सारे अधिकार उसे सौंप देती है ।

दूसरी ओर मधुवन शेरकोट में अपने वंशजों की बची हुई दो-तीन बीघा जमीन पर अपनी विधवा बहिन राजकुमारी के साथ रहता है । शेरकोट में पास ही रामनाथ अपनी पोषित पुत्री तितली के साथ रहता है । बाबा के इस आश्रम में तितली और मधुवन के बीच प्रेम का सूत्रपात होता है । बाबा रामनाथ दोनों को विवाह के सूत्र में बांध देता है । एक दिन मधुवन, सुखदेव, चौथे और महन्त द्वारा बहिन राजो

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, संशोधित संस्करण (संस्करण, २०१५), पृ० ३६

के साथ अनुचित व्यवहार को देख कर उनकी बुरी तरह मरम्मत करता है, यहां तक कि महन्त का गला घोंट कर भाग जाता है। इस अपराध में उसे कारावास होता है। इधर तितली अकेली रह जाती है। शेरकोट बेदखल हो जाता है, तथा बंजरिया पर डिग्री हो जाती है, परन्तु वह बड़े ही धैर्य से आभूषण वेच कर लगान चुकाती है, साथ ही अपने स्वाभिमान का ध्यान रखती है। अन्त में मधुवन दस वर्ष की सजा की अवधि समाप्त कर अपनी तितली के पास आता है, जो विरह के लम्बे समय को अपने पुत्र मोहन और ननद राजो के साथ स्वावलम्बी भावना एवं कर्मपथ पर पार कर रही है।

'तितली' उपन्यास की कथा को देखने से ज्ञात होता है कि सारा उपन्यास आदर्शवाद की भित्ति पर खड़ा हुआ है। इसमें चारित्रिक दृढ़ता और आदर्श प्रेम का चित्रण किया गया है। इसमें आये हुये पात्रों को तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम वर्ग में तितली और शैला आती हैं। तितली एक पतिव्रता नारी है, उसे पति के प्रति अगाध विश्वास है, वह कह उठती है—'संसार भर उनको चोर, हत्यारा और डाकू कहे; किन्तु मैं जानती हूं कि वह ऐसे नहीं हो सकते। इसलिये मैं कभी उनसे घृणा नहीं कर सकती। मेरे जीवन का एक-एक कोना उसके लिए, उस स्नेह के लिए, सन्तुष्ट है।' दूसरी ओर अंग्रेज महिला शैला भारतीय रंग में रंग चुकी है। वह त्याग एवं सेवामयी मूर्ति है। वह एक आदर्श नारी है।

दूसरे वर्ग में समाज से शोषित प्राणी हैं, उनमें मधुवन, तितली, इन्द्रदेव, शैला बाल-विधवा राजकुमारी, बेटे और बेटी से चिंतित मां श्यामदुलारी, पति-उपेक्षिता पत्नी माधुरी, कानून से पीड़ित देवनन्दन, माधो, रामजस आदि हैं।

तृतीय वर्ग में वे पात्र आते हैं जो दूसरों की कमजोरियों से फायदा उठा कर एक-दूसरे को भड़काते हैं और अपना कार्य सिद्ध करते हैं। इसमें तहसीलदार, सुखदेव, पाखण्डी महन्त, दूसरों के पति पर अधिकार जमाने वाली लेडी डाक्टर अनवरी, मैना वैश्या, आदि हैं।

'तितली' उपन्यास में आदर्शवाद दृष्टिकोण के अतिरिक्त सरकारी कर्मचारियों की निरंकुशता, विधवा-विवाह, वैश्यावृत्ति तथा अवध-प्रेम सम्बन्धी समस्याओं का सफल चित्रण हुआ है।

उपन्यास की भाषा प्रौढ़ होते हुए भी उसमें प्रौढ़ता का अभाव दिखाई देता है।

इरावती

'इरावती' प्रसादजी का तीसरा अपूर्ण उपन्यास है। इसका कथानक शुंग-वंश के इतिहास से सम्बन्धित है। कथा का आरम्भ उज्जयनी के महाकाल मन्दिर में प्रदोप-

पूजन समारोह में देवदासी इरावती के नृत्य से होता है । इसी समय मगध के महा-दण्डनायक पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र उज्ज्यनी में इरावती को देख कर मुग्ध हो जाता है। कुमारामात्य वृहस्पतिमित्र की आज्ञा से नृत्य बंद होता है और इरावती को बौद्ध-विहार में भिक्षुणी बना कर भेज दिया जाता है। तत्काल कुमारामात्य को सम्राट् शतधनुष के निधन का समाचार मिलता है । उस समय उपस्थित उपासक इसे महा-काल का कोप समझते हैं। वृहस्पतिमित्र कुसुमपुर चला जाता है । उधर अग्निमित्र भी रात्रि के तृतीय प्रहर में नाव खेता हुआ जाता है। इरावती उसे नदी में देख कर उसके साथ जाने के लिए नाव रुकवाना चाहती है । सैनिक उसे घेरना चाहते हैं; वह उनसे बचने के लिए नदी में कूद पड़ती है। अग्निमित्र और इरावती दोनों सम्राट् के सैनिकों द्वारा बन्दी बनाये जाते हैं।

इन्हीं दिनों मगध पर कलिंग के सम्राट् खारवेल तथा गांधार के आक्रमण की आशंका है। पुष्यमित्र, अग्निमित्र को मुक्त करा कर उसे सेना का महानायक बनाता है। अग्निमित्र का परिचय नन्द-वंश की कन्या कालिन्दी से गंगाधर-मन्दिर में होता है। कालिन्दी मौर्य राजकन्या है, जिसे महाराज शतधनुष ने अपने पास मंगवा रखा था। वह महाराज की मृत्यु के उपरान्त साम्राज्य को नाश करने के लिए स्वस्तिक-दल में अग्निमित्र को चाहती है, परन्तु अग्निमित्र इरावती को चाहता है । इरावती बौद्धों के पाखण्डमयी जीवन को त्यागकर कालिन्दि के आश्रम में रहती है, परन्तु वहां न रुक सकी। रक्तपात के भय से स्वयं को सम्राट् के हवाले कर दिया। सम्राट् उससे प्रणय-याचना करता है, उसे कलंकित भी करना चाहता है, परन्तु कालिन्दी के सहयोग से बच जाती है।

एक प्रासंगिक कथा धनदत्त व्यापारी की है । वह विदेश यात्रा से लौटा है। उसके यहां रत्नों का भण्डार है, वहाँ से साम्राज्य विरोधी सत्ताएँ एकत्र होती हैं । कालिन्दी, इरावती और अग्निमित्र वहीं आते हैं । खारवेल भी मगध पर आक्रमण करना चाहता है । वह भी रत्न खरीदने उसी स्थान पर आता है। वह कालिन्दी के षड्यन्त्र में फंस जाता है। सब शक्तियाँ एकत्र होकर मगध साम्राज्य का विरोध करने का प्रयत्न करती हैं। मगध की इस आतँकित अवस्था में ही इरावती उपन्यास अपूर्ण रह जाता है।

'इरावती' में वृहस्पतिमित्र, पुष्यमित्र, अग्निमित्र, खारवेल आदि ऐतिहासिक पात्र हैं। कालिन्दी, इरावती, मणिमाला, धनदत्त और आनन्द काल्पनिक हैं। 'इरावती' कथावस्तु और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अपूर्ण रह जाता है, परन्तु इसमें शुंग-कालीन राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण हुआ है।

चम्पू

प्रसाद ने अपने जीवन-काल में अन्य विधाओं के साथ चम्पू के क्षेत्र में भी तीन चम्पुओं—'उर्वशी-चम्पू', 'बभ्रूवाहन' तथा 'उर्वशी' की रचना की। इनमें 'उर्वशी-चम्पू' अब अप्राप्य है।[1]

बभ्रूवाहन

'बभ्रूवाहन' प्रसाद का दूसरा चम्पू है। इसका पहला नाम सम्भवतः 'चित्रांगदा चम्पू' था। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन 'इन्दु' में सन् १९११ को हुआ। फिर सन् १९२८ में 'चित्राधार' में संकलित कर दिया गया[2]। इसकी कथा मणिपुर नगर के एक उद्यान से प्रारम्भ होती है। यहाँ एक युवा पथिक अकस्मात् आ जाता है। वहाँ एक कामिनी और एक प्रौढ़ा आपस में वार्तालाप कर रही थीं। इस युवा को देखकर वे आक्रोश में आयीं परन्तु यह जानकर कि वह पौरवंश का क्षत्रिय कुमार है, उसे राजकुमारी की इच्छा से राज-प्रासाद में अतिथि के रूप में ले जाती हैं। चित्रांगदा के जन्म के समय महर्षि ने यह भविष्यवाणी की थी कि वह स्वयं किसी राजवंश के पुत्र को वरण करेगी। राजा ने वंश को उज्ज्वल करने वाले पौरवंश के क्षत्रिय-कुमार का विवाह चित्रांगदा से कर दिया। एक दिन चित्रांगदा अपनी पूर्व स्मृतियों को याद कर रही थी कि उसका बेटा बभ्रूवाहन आया और पाण्डवों के अश्वमेध का घोड़ा जो राज्य के समीप आ रहा है, कल सुबह पकड़ने के लिए कहा। मां ने पिता से आशीर्वाद लेने को कहा। कुमार मंत्री के साथ आरती का सामान लेकर चला। मंत्री ने अर्जुन से उस कुमार का परिचय कराया। अर्जुन पहले तो उससे गले मिला, परन्तु उसने मंत्री से कहा कि पाण्डवों का मंत्री होने के नाते कुमार को इस प्रकार की शिक्षा नहीं देनी चाहिए। अंत में कुमार और उसके पिता में द्वन्द्व-युद्ध हुआ। दोनों घायल हुए। चित्रांगदा अर्जुन को रथ में बिठाकर राज्य-प्रासाद में ले गई।

इस कथा का आधार महाभारत की एक घटना है, जिसका विस्तृत वर्णन 'जैमिनी अश्वमेघ' में मिलता है। प्राकृतिक दृश्यों एवं युद्ध का वर्णन प्राचीन परिपाटी के अनुसार पूर्व में हुआ है। भाषा शुद्ध होते हुए भी कृत्रिम है।

उर्वशी

'उर्वशी' चम्पू का प्रकाशन-काल सन् १९१८ है। यह प्रसाद की 'पूर्णरूपेण एक अभिनय रचना है और फिर से लिखी गई है। दोनों (उर्वशी-चम्पू' और 'उर्वशी') की कथावस्तु अपने आमूल परिवर्तित रूप में 'उर्वशी' १९१८ के लगभग, जब 'चित्रा-

१. श्री किशोरीलाल गुप्त, 'प्रसाद' का विकासात्मक अध्ययन, पृ० ११९
२. वही, प्रथम संस्करण, पृ० १३१

धार' प्रकाशित हुआ, आई[1] ।' इसका कथानक छः विभागों में वर्णित है । कथा इस प्रकार है—

पुरूखा को मृगया खेलते हुए एक कानन में संध्या समय अचानक एक रमणी का क्रन्दन स्वर सुनाई पड़ा । पास जाने पर देखा कि रमणी एक झरने के किनारे बैठी हुई है। वह किसी छाया को पुरुष के भ्रम में देखकर उससे आक्रांत होकर चीख पड़ी थी । युवती इस प्रकार की बातें कहकर पुरूखा की ओर देखकर मुस्करा दी । पुरवरूा वहाँ से चला गया । दूसरे दिन उसी स्थान पर पुरूखा और उस युवती का मिलन हुआ । युवती के हाथ में वीणा और दो मेष-शावक थे । युवती ने पुरूखा के हृदय पर अधिकार करते हुए स्वयं को आत्म-समर्पण कर दिया । एक दिन उर्वशी पहाड़ी-गुफा पर वीणा-वादन पर रही थी कि उसने अचानक यंधर्व युवक को आते देखा। वह भयभीत हो गई। उस युवक ने उर्वशी के पास आकर एक फूलमाला उसे पहना दी। पुरूखा यह न देख सका । पुरूखा के आघात से वह युवक गिर पड़ा। उर्वशी ने उस गन्धर्व युवक केयूरक को उठा लिया और उमकी सुश्रुषा करने लगी । पुरूखा चला गया। अब केयुरक के घाव ठीक हो गये थे । यह केयुरक उर्वशी का वाल-सहचर था। पुरूखा ने वहाँ आकर इनकी लीलाओं को देखा। केयूरक उर्वशी के कहने पर चला गया । उर्वशी भी पुरुरवा को वहीं छोड़कर अपने घर चली गई। पुरूखा गहन अंधकार में एकाकीपन का अनुभव करने लगा । इसी समय उर्वशी ने आकर पुरूखा से अपने शायकों को गन्धर्व केयुरक द्वारा ले जाने तथा उन्हें तलाश करने की बात कही । पुरूखा उनकी खोज में निकल पड़ा, परन्तु दूसरे दिन निराश होकर लौटा । उर्वशी तुरन्त उन शावकों की तलाश में पुरूरवा को छोड़कर चली गई।

'उर्वशी' चम्पू में प्रसाद ने व्रजभाषा का प्रयोग किया है । उनके वाक्यों में लाक्षणिकता है। उपमाओं का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। प्रकृति हँसती हुई-सी प्रतीत होती है। प्रसाद ने उर्वशी के रूप का चित्रण बड़े ही लुभावने ढंग से किया है—

'नैन भरे मद के लगे प्याले मधु परिपूर।
गन्ध विधुर अलि पूतकी, मनहुं नशे में चूर ॥
सरद चन्द की चांदनी, सौरभ और सुहाग।
मेलि बनायो अंग को, नव अरविन्द पराग[2] ॥'

'उर्वशी' 'प्रसाद के चम्पुओं में ही श्रेष्ठ नहीं है, बल्कि उनकी श्रेष्ठ कृतियों में से एक हैं । इसमें प्रसाद-साहित्य की सारी विशेषताएँ एकत्र देखी जा सकती हैं ।

१. श्री किशोरीलाल गुप्त, 'प्रसाद' का विकासात्मक अध्ययन, पृ० १३७

२. चित्राधार, पृ० १०

इसे देखकर भावी प्रसाद की रूप-रेखा भली प्रकार आंकी जा सकती है[1] ।'

निबन्ध

प्रसाद एक युग-प्रवर्तक कवि एवं साहित्य-सृष्टा थे। उन्होंने साहित्य का कोई कोना अछूता नहीं छोड़ा । अन्य विधाओं के समान निबन्ध के क्षेत्र में उनका स्थान शुक्लयुगीन निबन्धकारों में सर्वाधिक प्रतिष्ठित रहा है । इनके निबन्धों को विषय प्रतिपादन की दृष्टि से तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—प्रारम्भिक निबन्ध, ऐतिहासिक निबन्ध तथा साहित्यिक निवन्ध ।

प्रारम्भक निबन्ध

ये निबन्ध सामान्य रूप से 'इन्दु' मासिक पत्रिका में समय-समय पर प्रकाशित किये गये थे। इनके प्रारम्भिक निवन्ध—'प्रकृति-सौन्दर्य', 'भवित', 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन', 'चम्पू', 'कवि और कविता', 'कविता रसास्वाद', 'मौर्यों का राज्य-परिवर्तन', 'सरोज' और 'हिन्दी कविता का विकास' हैं । इनमें 'प्रकृति-सौन्दर्य' 'भक्ति' और 'सरोज' 'चित्राधार' में संगृहीत हैं । 'चम्पू' उर्वशी की भूमिका के रूप में प्रकाशित हुआ । शेष निबन्ध किसी पुस्तक के रूप में संकलित नहीं हैं ।

इन निबन्धों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि यह निबन्धकार का प्रथम प्रयास है। इनमें से अधिकांश लेख साहित्य के विभिन्न पक्षों पर आधारित हैं । भावुकता प्रधान होने से इनमें चिन्तन की गहनता नहीं आने पाई है । भाषा में शब्दाडम्बर अधिक दिखाई देता है । 'प्रकृति-सौन्दर्य' नामक लेख में भाषा का स्वरूप देखा जा सकता है—'हिम-पूरित तराइयों में, तथा हिमावृत चोटियों पर अद्भुत रंग के नील, पीत, ललित कुसुम-सहित लतओं का, शीतल वायु के झोंके से डौलायमान होना, पुनः प्रातः सूर्य की किरणों का छायाभास पड़ने से हिमावृत चोटियों का इन्द्र-धनुष-सा रंग जाना, कैसा सुन्दर जनाई पड़ता है[2] ।'

ऐतिहासिक निबंध

इस श्रेणी में हम उन निवन्धों को रख सकते हैं जो ऐतिहासिक आधार को लेकर लिखे गये हैं । इनमें 'राज्यश्री', 'विशाख', 'अजातशत्रु', जनमेजय का नागयज्ञ', 'स्कन्दगुप्त', चन्द्रगुप्त', ध्रुवस्वामिनी' तथा 'कामायनी' की भूमिकाओं को प्रस्तुत करने वाले ऐतिहासिक लेख हैं । इनके अतिरिक्त दो लेख 'चन्द्रगुप्त मौर्य' और 'आर्यावर्त का प्रथम सम्राट्' स्वतंत्र रूप में प्रकाशित हुए । इनमें से प्रथम लेख 'चित्राधार' के प्रथम संस्करण में संकलित है जो अब 'चन्द्रगुप्त' नाटक की भूमिका में उपलब्ध है तथा दूसरा लेख कोशोत्सव स्मारक संग्रह में संगृहीत है ।

---

१. श्री किशोरीलाल गुप्त, 'प्रसाद' का विकासात्मक अध्ययन, पृ० १४८

२. चित्राधार, पृ० १२८

इन निबन्धों में प्रसाद की प्रौढ़ता का ग्राभास मिलता है । इनमें प्राचीन शास्त्रों का ग्रनुशीलन किया गया है । इनकी लेखनशैली इतिवृत्तात्मक एवं गवेषणात्मक है ।

साहित्यिक निबंध

'काव्य ग्रौर कला तथा ग्रन्य निबन्ध' नामक पुस्तिका में 'काव्य ग्रौर कला', 'रहस्यवाद', 'रस,' 'नाटकों में रस का प्रयोग', 'नाटकों का ग्रारम्भ' 'रंगमंच', 'ग्रारम्भिक पाठ्य-क्रम' तथा 'यथार्थवाद ग्रौर छायावाद' नामक निबन्ध संकलित हैं ।

इनमें दार्शनिक एवं चिन्तनशील विचारधाराओं का प्रस्तुतीकरण है । ये निबन्ध लेखक की भारतीय-दर्शन, इतिहास, साहित्य ग्रौर काव्य- शास्त्र सम्बन्धी निजि मान्यताग्रों पर ग्राधारित हैं । इन निबन्धों में संस्कृत-साहित्य का ग्रनुशीलन भी किया गया है ।

इन निबन्धों में आचार्य शुक्ल की गुम्फित परम्परा का प्रणय मिला है ।

प्रसाद-साहित्य की सामान्य विशेषतायें

प्रसाद-साहित्य का सामान्य परिचय देने के साथ-साथ उसकी कुछ सामान्य विशेषताओं का ग्रवलोकन भी किया जा सकता है । उनका सम्बन्ध हम—ऐतिहासिकता, सामाजिकता, मनोवैज्ञानिकता, दार्शनिकता, शिल्पात्मकता ग्रौर सौन्दर्य-भावना से जोड़ सकते हैं ।

ऐतिहासिकता

प्रसाद भारतीय संस्कृति के प्रगाढ़ प्रेमी थे । उन्होंने ग्रपने साहित्य में भारतीय संस्कृति को अपनाने का भरसक प्रयत्न किया । प्रसादजी प्राचीन भारतीय संस्कृति के सौन्दर्य पर मुग्ध थे । स्वभाव से चिन्तनशील ग्रौर कल्पना-प्रिय होने के कारण वे उसी युग में रहते थे । कोलाहल की ग्रवनी तज कर जब वे भुलाने का ग्रावाहन करते हुए विराम-स्थल की खोज करते होंगे, उस समय यह रंगीन ग्रतीत उन्हें सचमुच बड़े वेग से ग्राकर्षित करता होगा । इसलिए उनके नाटकों में पुनरुत्थान की प्रवृत्ति बड़ी सजग रहती है । 'कामना' का रूपक इसका मुखर साक्षी है । वे विदेशी छाया से ग्राच्छादित भारतीय जीवन को फिर उसी स्वर्ग की ग्रोर प्रेरित करने की बात सोचा करते थे । उन्होंने देखा कि हमारा वर्तमान ही नहीं, भूत इतिहास भी विदेशी प्रभाव की छाया में कठिन हो गया है ग्रतः फिर से उसका सच्चा स्वरूप प्रदर्शित करने के लिए उन्होंने भारतीय ग्रन्थों के आधार पर ही ऐतिहासिक ग्रन्वेषण किये[१] ।' उन्हें इतिहास-प्रेम होने के कारण ही इस विषय में ग्रपनी इच्छा 'विशाल' नाटक में व्यक्त की है । उनका

१. डा० नगेन्द्र, ग्राधुनिक हिन्दी नाटक, पृ० ९

कहना है—'क्योंकि हमारी गिरी दशा को उठाने के लिए हमारे जलवायु के अनुकूल जो हमारी अतीत सभ्यता है उनसे बढ़ कर उपयुक्त और कोई भी आदर्श हमारे अनुकूल होगा कि नहीं इसमें हमें पूर्ण सन्देह है ।···मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है[1] । इसीलिए उन्होंने अपने सम्पूर्ण साहित्य में इतिहास को माध्यम बनाया । उन्होंने प्राचीनकाल से अंग्रेजी काल तक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को अपने काव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास तथा चम्पू साहित्य में ग्रहण किया । इसके लिए डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने ठीक ही कहा है कि 'असुनिश्चित और असुलिखित भारतीय इतिहास में यत्र-तत्र बिखरी सामग्रियों को एक सूत्र में पिरोने की तर्क-संगत चेष्टा 'प्रसाद' की उन विशेषताओं में है जो वर्तमान हिन्दी के अतिरिक्त अन्य साहित्यों में भी कम दिखाई देती है । इतिसास का गम्भीर अध्ययन प्रसंग-परिकलन की बुद्धि और उपलब्ध इतिवृत्तों की संगत एकात्मकता स्थापित करने की अद्- भूत क्षमता 'प्रसाद' में दिखाई पड़ती है[2] ।

सामाजिकता

प्रसाद मूलत: मानवतावादी साहित्यकार हैं । उन्होंने मानव को अध्यात्म का एक अंग माना है । उनकी मानवीयता प्राकृतिक होते हुए भी कल्पना प्रधान रही है । वह रहस्यवाद से अनुरंजित है । काव्य के क्षेत्र में 'कामायनी' में स्वयं कवि की मानवीयता प्रतिपादित है । 'कामायनी' में तीन प्राणियों की कहानी के साथ-साथ तीन मनों की कथा है, जिसमें मानव के सुख-दुःख का समन्वय, आंतरिक संघर्ष तथा प्रकृति का चित्रण हुआ है ।

प्रसाद का साहित्य मानवीय भाव-भूमि पर अवलम्बित है । उनका मानव रूढ़ियों से परे होकर अमरता सीखता है । उनके नाटकों में ही नहीं कथा-साहित्य में भी मानवीय भावनाओं की लहरें उठती दिखाई पड़ती हैं । उपन्यासों में' 'कंकाल' रूढ़िप्रद जाति की प्रतिष्ठा के विरुद्ध तथा 'तितली' उच्चवर्गीयता के विरुद्ध आन्दोलन करता है ।

प्रसादजी ने अपने साहित्य में नारी को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है । उन्होंने एक ओर तो ऐसी नारियों का चित्रण किया है जो मनुष्य को देवता की कोटि में प्रस्तुत करती है तथा दूसरी ओर ऐसी नारियाँ हैं जो मनुष्य को इन्सान की कोटि से हैवान बना देती हैं । प्रसाद के साहित्य में नारियां मनुष्य की कठपुतली मात्र नहीं हैं; उनका अपना भी कुछ अस्तित्व है । वे बुद्धिमती हैं, ये मनुष्य की दासी न हो कर पथ-प्रदर्शिका हैं । प्रसाद के नाटकों में नारी-भावना का उत्कर्ष स्पष्ट है । 'अजातशत्रु' में

---

१. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २३९-४०
२. 'विशाल' की भूमिका (प्रथम संस्करण)

मल्लिका, 'ध्रुवस्वामिनी' में ध्रुवस्वामिनी तथा 'स्कन्दगुप्त' में देवसेना आदि नारी-पात्रों के प्रभाव से पुरुष-पात्रों को शिक्षा मिलती है, नारी पथ-प्रदर्शिका ही नहीं है, वह प्रेम और करुणा की मूर्ति भी है। 'नारी का हृदय कोमलता का पालना है, दया का उद्गम है, शीतलता की छाया है और अनन्य भक्ति का आदर्श है'[1]।

मनोवैज्ञानिकता

प्रसाद एक मनोवैज्ञानिक साहित्यकार हैं, जिन्होंने काव्य, नाटक तथा कथा-साहित्य में विभिन्न पात्रों के चरित्रों को बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित किया है। इन पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण करने में प्राचीन भारतीय तथा पाश्चात्य मनोविज्ञान सहायक सिद्ध हुए हैं।

प्रसाद-साहित्य में प्रमुख रूप से 'कामायनी' और 'कामना' नाटक में मानवीय मनोवृत्तियों का चित्रण किया गया है। 'कामायनी' के आमुख में उन्होंने लिखा है कि "श्रद्धा, इड़ा और मनु अपना ऐतिहासिक महत्व रखते हुए यदि साँकेतिक अर्थों की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।"[2] प्रसाद ने मन की किसी वस्तु के सम्बन्ध में प्रतिक्रिया, उस प्रतिक्रिया का बदलना, उसके द्वारा नवीन मनोविकारों का उदय सम्बन्धी मन की मनोवृत्तियों का सुन्दर चित्रण किया है।

'कामायनी' में मानसिक वृत्तियों का चित्रण बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है, यहां तक कि सर्गों का नामकरण भी उन्हीं वृत्तियों के आधार पर किया गया है, जो विभिन्न पात्रों से सम्बन्धित हैं। पात्रों में मनु का मन से, श्रद्धा का हृदय से तथा इड़ा का बुद्धि नामक मनोवृत्ति से सम्बन्ध स्थापित किया गया है। 'अजातशत्रु' में हृदय और बुद्धि पक्ष नामक मनोवृत्ति की प्रधानता बतलाई गई है, समय-समय पर उसका अस्तित्व विभिन्न रूप धारण कर लेता है।[3]

स्त्रियों में मन की स्थिति दया, करुणा तथा प्रेम के रूप में दिखाई देती है। प्रसाद जी ने नारी की इसी प्रकार की मनःस्थिति का चित्रण किया है—

'समर्पण लो सेवा का सार
सबल संस्कृति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पदतल में विगत विकार।

---

१. अजातशत्रु, पृ० १११-१२।

२. कामायनी, आमुख पृ० ७।

३. 'मनुष्य-हृदय भी एक रहस्य है, एक पहेली है। जिस पर क्रोध से भैरव हुंकार करता है, उसी पर स्नेह का अभिषेक करने के लिए भी प्रस्तुत रहता है' अजतशत्रु, —पृ० १४२

दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास;
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास[1]।

प्रसाद-साहित्य में मनु, उदयन कुमारगुप्त, पुरगुप्त आदि पात्रों में वासना से कलुषित मनोवृति को दिखाया है जो मनुष्य की वृद्धावस्था तक साथ रहती है। मनु श्रद्धा के संयोग और सहवास के उपरान्त इड़ा की ओर आकर्षित होते हैं, परन्तु नारी मनुष्य की पथ-प्रदर्शिका का कार्य करती है। श्रद्धा मनु को पथ-प्रदर्शन कराती हुई एकाकी प्रेम की भिक्षा माँगती है।

'कामना' नाटक की कामना, विलास, विनोद और लीला नामक स्त्री और पुरुष पात्र अपने मूल रूप के अतिरिक्त मनोवृत्तियों के रूप में आये हैं। एक वृत्ति दूसरी वृत्ति को जन्म देती है। विलास के प्रभाव से लालसा उत्पन्न होती है। इसके परिणामस्वरूप शक्ति और संतोष का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, परन्तु अन्त में विजय संतोष और विवेक की ही होती है। इस प्रकार प्रसाद-साहित्य मनोवैज्ञानिकता से प्लावित है। यह प्रसाद-साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है।

दार्शनिकता

हम यह पहले कह चुके हैं कि प्रसाद पहले कवि फिर नाटककार हैं। उनके कवि होने से उनकी चिन्तनधारा स्वतंत्र एवं मौलिक है। उनके साहित्य में दार्शनिक विचारों का आना इसी का परिणाम है। उनकी दार्शनिकता का स्वरूप प्रमुख रूप से शैवदर्शन की समन्वय भावना तथा बौद्धदर्शन के करुणावाद, क्षणिकवाद तथा दुःखवाद का प्रभाव दिखाई देता है। इन दर्शनों के अतिरिक्त गीता के कर्मवाद और न्यावेशेषिक के परमाणुवाद से अछूते नहीं रह सके हैं।

प्रसाद के नाटकों में नियति और प्रकृति का उल्लेख अधिक मात्रा में हुआ है। उनके साहित्य में नियति नियन्त्रणकारिका शक्ति के रूप में आई है। नाटकों के प्रायः सभी पात्र नियति सुन्दरी के दास हैं। अजातशत्रु में नियति और कर्म की प्रधानता बतलाते हुये जीवक कहता है—'अदृष्ट तो मेरा सहारा है। नियति की डोरी पकड़कर मैं निर्भय कर्म-कूप में कूद सकता हूं; क्योंकि मुझे विश्वास है कि जो होना है वह तो होगा ही फिर कायर क्यों बनूँ—कर्म से विरक्त क्यों रहूं[2]?

इस कर्मयोग के कारण विषमताओं से छुटकारा पाना असम्भव-सा प्रतीत होता है। कर्म के साथ-साथ सुख-दुःख का समन्वय होना भी वांछनीय है। इस समस्या का

१. कामायनी, श्रद्धासर्ग, पृ० ५७
२. अजातशत्रु, पृ० ३८

निर्वाह प्रसाद के सभी नाटकों एवं 'कामायनी' में हुआ है । अधिक सुख और अधिक दुःख मानव जीवन के लिये दुखमयी होते हैं, अतः प्रसाद 'आँसू' में कहते हैं—

'मानव जीवन वेदी पर
परिणय हो विरह-मिलन का
सुख-दुःख दोनों नाचेंगे
है खेल आंख का मन का[१] ।'

विरह और मिलन का परिणय होना आवश्यक है । यह उसी अवस्था में संभव है जब मनुष्य के हृदय में आनन्द की सृष्टि होती है; उस आनन्द में इच्छा, क्रिया और ज्ञान का समन्वय होता है । 'कामायनी' में इसी आनन्दवाद का चित्रण किया गया है—

'शापित न यहाँ है कोई
तापित पापी न यहाँ है,
जीवन वसुधा समतल है
समरस है जो कि जहाँ है[२] ।'

इस प्रकार प्रसाद-साहित्य की प्रत्येक विधा में दार्शनिकता का निर्वाह हुआ है ।

शिल्पात्मकता

प्रसाद स्वच्छन्दतावादी साहित्यकार हैं । वे अपने साहित्यिक जीवन के प्रथम चरण में ही स्वच्छन्दतावाद की ओर प्रभावित हुए । इसलिये उन्होंने प्राचीन साहित्यिक नियमों का प्रबन्ध, भाषा और बोली के आधार पर खण्डन किया । वे पाश्चात्य-साहित्य से प्रभावित थे । उनकी 'कामायनी' में काव्य-शैली की नवीनता, भाषा प्रयोग में पर्याप्त व्यंजकता और काव्यानुरूपता, काव्यायुक्त पदावली का प्रयोग तथा वस्तु कल्पना का प्रयोग किया है[३] । यह प्रयोगात्मक प्रगति स्वच्छन्दतावाद की पोषक है । 'कामायनी' की कथावस्तु का विन्यास पाश्चात्य दुखान्त रचनाओं से प्रभावित है[४] । नाटकों में अंक एवं दृश्य-विधान, अन्तर्द्वन्द्व, आत्महत्या तथा युद्ध सम्बन्धी दृश्यों का प्रयोग किया गया है । इस नवीनता में पाश्चात्य-साहित्य का प्रभाव परिलक्षित होता है । छन्द-विधान में प्रसाद ने मात्रिक छन्दों को अतुकान्त रूप में प्रस्तुत किया है । 'महाराणा का महत्व' और 'करुणालय' में २१ मात्राओं के अभिन्नाक्षर अरिल्लछन्द का प्रयोग हुआ है । 'प्रेम-पथिक' में छन्द-योजना अतुकान्त है । यह प्रयोग शैक्सपीयर

---

१. आंसू, पृ० ४६
२. कामायनी, पृ० २८८
३. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, पृ० ११३
४. वही, पृ० १००

के 'ब्लेंकवस' से मिलता -जुलता है । शैली की दृष्टि से प्रसाद ने नाटकों के गीतों में पारसी-शैली का प्रयोग किया है । 'सज्जन' में वार्तालाप-शैली, 'राज्यश्री' में कोरस और शायरी-शैली का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। प्रसाद-साहित्य में जो यथार्थवादी चित्रण' विशेषरूप से 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक तथा 'बेड़ी' कहानी में, हुआ है, वह स्टर्न, जार्ज इलियट, एच० जी० वेल्स, थामस, हार्डी एवं चार्ल्सडिकन्स के साहित्य में मिलता है। 'ध्रुवस्वामिनी', 'एक घूंट' तथा 'कंकाल' नामक रचनाओं पर फ्रान्सीसी साहित्यकार इब्सन और शा के बुद्धिवाद का प्रभाव परिलक्षित है । नाटकों के ऐतिहासिक वातावरण में राजसी वैभव के चित्रों में शैक्सपीयर का प्रभाव दिखाई देता है। इस प्रकार प्रसाद भारतीय संस्कृति का ध्यान रखते हुए भी पाश्चात्य प्रभाव से अछूते नहीं रहे हैं।

सौन्दर्य-भावना

प्रसाद पूर्णतया भारतीय थे । अतः उनका सौन्दर्य-बोध भारतीयता में ही पुष्पित और पल्लवित हुआ । इसलिए उनके साहित्य में जिस शारीरिक, मानसिक, प्राकृतिक और कलात्मक सौन्दर्य का चित्रण हुआ है, उस पर भारतीय संस्कृति का गहरा प्रभाव है । सौन्दर्य का प्रमुख गुण आकर्षण होने से इसकी उत्पति प्रेम से होती है। प्रसाद की सौन्दर्य-भावना सबसे उच्च है । वह सदा अत्यन्त रमणीय और रहस्यमयी है[१] । इसकी अनुभूति किसी भी परिस्थिति और वातावरण में अनायास ही हो जाया करती है[२] । प्रसाद बाह्य-सौन्दर्य को उच्च मानते हैं। उन्होंने श्रद्धा के शारीरिक सौन्दर्य की बड़े ही आकर्षक ढंग से सृजना की है—

'मसृण गांधार देश के, नील रोम वाले मेघों के चर्म ।
ढक रहे थे उसका वपु कांत, बन रहा था वह कोमल वर्म ।
नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अब खुला अंग;
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ-वन बीच गुलाबी रंग[३] ।'

प्रसाद शारीरिक सौन्दर्य की उच्चता प्रदर्शित करने के साथ-साथ एक आकर्षक और चमत्कार युक्त चित्र के साथ अपनी सौन्दर्य-सम्बन्धी धारणा को भी प्रस्तुत

---

१. 'हे अनन्त रमणीय ! कौन तुम ? यह मैं कैसे कह सकता ।
कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो भार विचार न सह सकता ।'
—कामायनी, आशासर्ग, पृ० २६

२. 'उस दिन तो हम जान सके थे सुन्दर किसको हैं कहते ।
तब पहचान सके, किसके हित प्राणी यह दुख-सुख सहते ।
—कामायनी, निर्वेदसर्ग, पृ० २२२

३. कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० ४६

करते हैं। वे शारीरिक सौन्दर्य में प्रेम की प्रतिष्ठा चाहते हैं । वह प्रेम सुधा प्राणों को जीवन दान देने वाली है[१] । बिना प्रेम के शौन्दर्य स्थूल और निस्सार है। प्रसाद ने इसीलिये क्षण-भंगुर प्रेम की निन्दा की है—

'क्षणभंगुर सौन्दर्य देखकर रीझो मत, देखो ! देखो !!
उस सुन्दरतम की सुन्दरता विश्वमात्र में छाई है—
... ...
छोटे-छोटे कुसुम श्यामला धरणी में किसका सौन्दर्य
इतना लेकर खिलते हैं, जिन पर सुन्दरता का गर्वी—
मानव की मधुलुब्ध मधुप-सा सुख अनुभव करता-फिरता[२] ।'

इस निन्दा के साथ-साथ उन्होंने रूपगर्विता कमला, विलासिनी विजया, मागधी तथा इड़ा के शारीरिक-सौन्दर्य में प्रेम की निस्सारता को व्यक्त किया है । मानसिक-सौन्दर्य का सम्बन्ध आत्मा से है । यह हृदय की अनुकृति है[३] । जब इस सौन्दर्य का शारीरिक सौन्दर्य से सामंजस्य स्थापित हो जाता है, तो वह सौन्दर्य द्विगुणित हो जाता है। प्रसाद की 'कला' और 'सालवती' कहानी में दोनों का सामंजस्य दिखाया गया है। 'प्रलय की छाया' नामक आख्यानक में कमला के रूप सौन्दर्य की पराकाष्ठा बतलाते हुये उसे सौन्दर्यमयी वासना की आंधी में बड़ा हेय बतलाया है—

'नारी यह रूप तेरा जीवित अभिषाप है—
जिसमें पवित्रता की छाया भी पड़ी नहीं।
जितने उत्पीड़न थे धूर हो दबे हुए,
अपना अस्तित्व हैं पुकारते[४],'

प्रसाद प्रकृति के कवि हैं । छायावादी कवियों के साथ प्रसाद की सर्वप्रथम

---

१. 'सौन्दर्य सुधा बलिहारी
चुगता चकोर अंगारे।'
—आंसू, पृ० ४३

२. प्रेम-पथिक, पृ० ३०-३१

३. हृदय की अनुकृति बाह्य उदार
एक लम्बी काया, उन्मुक्त ;
मधु पवन क्रीड़ित ज्यों शिशु बाल
सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।'
—कामायनी, श्रद्धा सर्ग,' पृ० ४६

४. लहर, पृ० ७९

निगाह प्रकृति की ओर ही गई है। इसीलिये प्रकृति-प्रेम की दृढ़ता के विषय में प्रसाद ने अपने रहस्यवाद नामक लेख में संकेत करते हुए कहा—'साहित्य में विश्व-सुन्दरी प्रकृति में चेतनता का आरोप संस्कृत वांगमय में प्रचुरता से उपलब्ध होता है, यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद सौन्दर्य-लहरी के 'शरीरंत्वं शम्भो' का अनुकरण-मात्र है[1]।'

प्रसाद प्रकृति से अधिक प्रभावित हैं। उनके शब्दों में 'प्रकृति-सौन्दर्य' ईश्वरीय रचना का एक अद्भुत समूह है, अथवा उस बड़े शिल्पकार के शिल्प का एक छोटा-सा नमूना है, या इसी को अद्भुत रस की जन्मदातृ कहना चाहिए[2]।' कलात्मक सौन्दर्य के उदाहरण प्रमुख रूप में 'कामायनी' के मनु, श्रद्धा; 'ध्रुवस्वामिनी' की ध्रुव-स्वामिनी और कोमा; 'चन्द्रगुप्त' की अलका, मालविका; 'स्कन्दगुप्त' की देवसेना; 'ग्रामगीत' कहानी की रोहिणी; 'इन्द्रजाल' की बेला; 'कंकाल' की माला; 'तितली' के मधुवन, तितली और रामजस आदि पात्रों में मिलता है।

निष्कर्ष

प्रसाद की कृतियों का परिचयात्मक विश्लेषण कर लेने के पश्चात् यह कहना अत्युक्तिपर्ण न होगा कि उनकी प्रतिभा सर्वतोन्मुखी थी। काव्य का सृजन सिंचन करते हुए उनकी लेखनी गद्य-साहित्य की विस्तृत वनस्थली में भी विचरण करने लगी थी और इस विचरण ने उनसे नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध और चम्पू भी लिखवा लिए, पर पद्य-साहित्य ही उनकी प्रशंसा का कारण अधिक रहा है। इस काव्यात्मक भावुकता और सौन्दर्यानुभूति को उनके नाटकों और कहानियों में विशेष रूप से देखा जा सकता है, यद्यपि उनका इतर साहित्य भी इन विशेषताओं से शून्य नहीं रहा है।

काव्य की भूमि में अपने भावुक व्यक्तित्व का उन्मेष करते हुए भी प्रसाद का व्यक्तित्व संस्कृति का उपासक रहा है। कवि की भावुकता ने जहाँ नयी अनुभूतियों को निखार दिया है वहीं संस्कृति का रूप संवारते हुए उन्होंने इतिहास की ओर भी दृष्टि डाली है।

---

१. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, रहस्यवाद, पृ० ६९

२. चित्राधार, प्रकृति-सौन्दर्य, पृ० १२८

अध्याय ३

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्रसाद के समय विज्ञान की विभीषिकाओं और परतन्त्रता की बेड़ियों से जकड़े हुये भारतीयों के सम्मुख संस्कृति की भावना म्लान दिखाई देने लगी थी। प्रसाद ने इस ओर ध्यान देकर विश्व के सम्मुख भारतीय संस्कृति की पुनीत झांकी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। उन्होंने भारतीय संस्कृति के बिखरे हुए अवयवों द्वारा वस्तु की दीवार खड़ी करने के लिए प्राचीन एवं ऐतिहासिक घटनाओं का सहारा लिया। उन्होंने ऐतिहासिक मान्यताओं के आधार पर अन्वेषण किये। इन ऐतिहासिक अन्वेषणों के माध्यम से प्रसाद ने भारतीय संस्कृति के सांध्य-युग में प्रकाश की किरणें विकीर्ण कीं, उसके मुख्यतः दो परिणाम हुए—एक तो पाश्चात्य संस्कृति के प्रभंजन से प्रताड़ित भारतीय-जन-मानस में पुरातन संस्कृति के प्रति मोह उत्पन्न हुआ और दूसरे उक्त दोनों संस्कृतियों के संगम से एक ऐसी संस्कृति का उद्भव हुआ जो आधुनिक मानवता के विकास की दिशा को गति दे सकी। उनके सम्पूर्ण साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से यह तथ्य स्वयं प्रमाणित हो जाता है कि प्रसाद जिस अनुष्ठान को लेकर आगे बढ़े थे, उसमें वे सफल तो हुए ही साथ ही साथ उन्होंने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में सांस्कृतिक प्रतिष्ठा एवं स्वस्थ परम्परा की नींव भी डाली।

प्रसाद ने साहित्य के सभी क्षेत्रों में इतिहास को ग्रहण किया। इसके लिये उन्होंने तत्सम्वन्धी साहित्यिक ग्रन्थों का सांगोपाँग अनुशीलन किया। उन्होंने प्रागैतिहासिक काल से लेकर अंग्रेजी काल तक की ऐतिहासिक सामग्री को अपने साहित्य का केन्द्र बनाया। ऐतिहासिक संकलन एवं संतुलन में प्रसाद की रुचि थी। उनका कहना है—'मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकांड घटनाओं का दिग्दर्शन करने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को वनाने का बहुत कुछ प्रयत्न

किया है[1]। उसका अवलोकन करने के लिए उनके साहित्य को प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

प्रागैतिहासिक आधार

प्रागैतिहासिक काल सभ्यता और संस्कृति के विकास का आदिकाल है। प्रत्येक काल परिवर्तनशील रहा है। इस परिवर्तन में प्राचीन संस्कृति का ध्वंस एवं नवीन संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ है। प्रसाद ने सृष्टि के विकास को ध्यान में रख कर इस काल से सम्बन्धित 'चित्र-मन्दिर' कहानी की रचना की है।

चित्र-मन्दिर

'चित्र-मन्दिर' नामक कहानी केवल वातावरण की दृष्टि से ही ऐतिहासिक है। इसका वातावरण पूर्व पाषाण काल पर आधारित है; जबकि मनुष्य नितान्त जंगली और अंधकार में डूबे हुये थे, गुफाओं में रहना तथा आखेट द्वारा अपना पोषण करना ही उनका कार्य था। उस समय उनकी आवश्यकतायें कम थीं तथा उचित और अनुचित का ज्ञान भी नहीं था[2]। इस कहानी में आदि मानव की पाशविक वृत्ति का चित्रण किया गया है। मनुष्य जंगली अवस्था में रहता था। उसके पशु और नारी दो अहेर थे, फिर धीरे-धीरे उसके हृदय में भावनाओं का विकास हुआ। यही भावनाओं का विकास मानव सभ्यता की विकसित अवस्था थी।

प्रसाद ने काम के अतिरिक्त नर-नारी के बीच में प्रतिहिंसा, संवेदना, ईर्ष्या, द्वेष, भय, स्नेह, अनुराग, घृणा, हर्ष, विषाद आदि भावों का संबंध सूत्र भी प्रतिष्ठित किया है। इनके सहारे प्रसाद ने एक ओर तो साहित्य की मनोवैज्ञानिक पीठिका प्रस्तुत की है और दूसरी ओर सभ्यता के विकास की विवरणिका दी है।

ऐतिहासिक आधार

सामान्यतया भारतीयों ने रामायण, महाभारत तथा पुराणों को इतिहास की श्रेणी में रखा है। रामायण और महाभारत के लिए काव्य मीमांसाकार ने 'परिक्रिया' और 'पुराकल्प' नाम का प्रयोग किया है। यह दोनों शब्द इतिहास के दो भेद हैं। 'परिक्रिया' का संबंध उस इतिहास से है, जिसमें एक नायक हो और पुराकल्प का सम्बन्ध उस इतिहास से है, जिसमें एक से अधिक नायक हों[3]। अतः इनको भावात्मक

---

१. 'विशाख' (प्रथम संस्करण) भूमिका।

२. भगवतशरण उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १३

३. राजशेखर, काव्यमीमांसा, २।३

'परिक्रिया पुराकल्प इतिहासगतिर्द्विधा।
स्यादेकनायका पूर्वा द्वितीया बहुनायका ॥

इतिहास की संज्ञा दे देना अनुचित न होगा। पुराण शब्द का अर्थ पुराने से है। परन्तु पुराने को नया बना कर प्रस्तुत किया जाता है। इतिहास में पुराणों का संस्कृति और सभ्यता की दृष्टि से विशेष महत्व रहा है। यह पुराण इतिहास की अमूल्य निधि हैं। महाभारत[१] और छान्दोग्य उपनिषद्[२] में इतिहास और पुराण शब्द एक साथ प्रयुक्त हुये हैं।

रामायण कालीन आधार

रामायण कालीन आधार को लेकर प्रसाद ने 'चित्रकूट' और 'अयोध्या का उद्धार' नामक दो कविताएँ लिखी हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने रामायण और भागवत दोनों का मिश्रित आधार लेकर 'ब्रह्मर्षि' नामक गद्य-कथा भी लिखी है।

चित्रकूट

प्रसाद का 'चित्रकूट' काव्य रामायण काल से संबंधित है। इसका आधार वाल्मीकि रामायण एवं रामचरित मानस का अयोध्याकाण्ड है। 'चित्रकूट' में पुरुष पात्रों में राम, लक्ष्मण और भरत तथा नारी पात्रों में सीता आती है। राम, लक्ष्मण और भरत अयोध्यापति दशरथ के पुत्र हैं तथा सीता राम की पत्नी[३]। ऐतिहासिक घटनाओं में राम का सीता और लक्ष्मण सहित १४ वर्षीय निर्वासित अवस्था में चित्रकूट पहुंचना, राम द्वारा सीता को चित्रकूट पर्वत और नदी दिखाना, भरत का चतुरंगिणी सेना सहित चित्रकूट जाना, लक्ष्मण का सालू के पेड़ पर चढ़ कर भरत आगमन की सूचना राम को देना, भरत का विलाप करते हुए राम के चरणों में गिरना, राम का भरत के गले लगना सम्बन्धी घटनाएँ वाल्मीकि रामायण और रामचरित मानस के अयोध्या काण्ड पर आधारित हैं। 'चित्रकूट' आख्यानक का वातावरण तत्कालीन है। प्रसाद ने सामाजिक वातावरण में पिता की आज्ञा का पालन, पत्नी का पतिव्रत-धर्म का पालन तथा भाई-भाई के आपसी प्रेम की भावना को व्यक्त किया है। 'चित्रकूट' काव्य में राम से मिलने भरत के साथ सेना का जाना राजा और प्रजा के आपसी बर्ताव को प्रदर्शित करता है। ऐतिहासिक स्थलों में चित्रकूट और मन्दाकिनी नदी का उल्लेख रामचरित मानस में मिलता है[४]।

---

१. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय ५

'इतिहास पुराणाभ्यां वैदं समुपवृंहयेत्।'

२. छान्दोग्य उपनिषद्, ७।१।१

'इतिहास पुराणं पंचम वेदानां वेदम्'

३. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, ६४।२७, २००।३७-४१

४. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, २।१३१

वाल्मीकि रामायण और रामचरित मानस में वर्णित इस कथानक को देखने से विदित होता है कि प्रसादजी ने अनेक स्थलों पर अपनी मौलिक उद्भावनाओं के सहारे कथा की रचना की है । सीता के स्नान-सम्बन्धी घटना को उन्होंने बाद में चित्रित किया है । सीता और राम के आपसी वार्तालाप में लक्ष्मण की प्रशंसा करना, वैदेही का मधुर-मधुर आलाप करते हुए प्रिय की गोद में सोना, कच-भार के सौन्दर्य का वर्णन, लक्ष्मण का आज्ञा पाकर पर्ण-कुटीर में प्रविष्ट होना, निषादराज द्वारा चतुरंगिणी सेना सहित भरत के आने की सूचना देना, प्रातःकाल के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण, जानकी का स्नान करने जाना, राम को जगाना, राम का नित्य कर्म से निवृत्त होना, लक्ष्मण का फल लाने के बहाने पेड़ पर चढ़ना, राम को टहलते हुए कोलाहल सुनाई देना, राम से लक्ष्मण का धनुष मांगना सम्बन्धी घटनाएँ काल्पनिक हैं । प्रसाद ने इन घटनाओं को 'चित्रकूट' में क्रमबद्धता लाने के लिए, कथा को विस्तृत रूप देने के लिए, चित्रकूट की शोभा का वर्णन करने के लिए तथा राम, लक्ष्मण और सीता का आपसी प्रेम-भाव प्रदर्शित करने के लिए किया है ।

अयोध्या का उद्धार

'अयोध्या का उद्धार' शीर्षक आख्यान प्रधान कविता का ऐतिहासिक आधार कालिदास कृत रघुवंश है । यह काव्य पात्रों, घटनाओं और स्थानों की दृष्टि से ऐतिहासिक है । इसमें आये हुए कुश[१], कुमुद[२], और कुमुदिनी[३] (कुमुदती) ऐतिहासिक पात्र हैं । इस आख्यान में वर्णित ऐतिहासिक घटनाएँ इस प्रकार हैं—अर्द्ध रात्रि को अयोध्या नगरी की अधिष्ठात्री देवी कुश के शयनागार में आती है । उससे कुश अर्द्ध रात्रि के समय आने का कारण पूछता है[४] । वह अयोध्या नगरी की दीनावस्था की ओर संकेत करती हुई कुश से कुशावती त्याग कर अयोध्यानगरी प्राप्त करने की प्रार्थना करती है । कुश उसकी याचना स्वीकार कर दूसरे दिन अपना सारा राज्य वैदिकों के अधीन करके अयोध्या नगरी पहुंचता है । वहाँ उजड़ी हुई नगरी को पुनः नवीन रूप में परिवर्तित कर देता है[५] । एक दिन जल-क्रीड़ा के समय कुश के हाथ से अगस्त्य मुनि द्वारा दी गई मणि पानी में गिर कर डूब जाती है[६] । कुमुदनाग उसे

१. रघुवंश, १६।४, १६।२३-२५
२. वही, १६।७६
३. वही, १६।७६
४. वही, १६।४, १६।६-६
५. वही, १६।२३-२५, १६।३८
६. वही, १६।७१-७२

पाताल लोक में ले जाता है[1]। कुश के क्रोध-वश गरुड़ास्त्र खींचने पर कुमुद डर से तत्काल अपनी कन्या कुमुदिनी के साथ ऊपर आता है और अनुनय विनय से उस मणि सहित अपनी कन्या मुकुदिनी का विवाह कुश से कर देता है[2]। कुश सर्प भय से रहित होकर नागरिकों को प्रिय बना कर शासन करता है[3]। अयोध्या का उद्धार आख्यानक काव्य में अयोध्या और कुशावती स्थान ऐतिहासिक आये हैं[4]।'

प्रसाद ने 'अयोध्या का उद्धार' आख्यानक काव्य में ऐतिहासिकता का निर्वाह करते हुए कुछ कल्पित घटनाओं का समावेश भी किया है। अर्धरात्रि की निसर्ग-सुषमा का वर्णन, कुश के अधरों पर मृदुल हंसी, युवती द्वारा वीणा बजाना तथा कुश वंश की प्रशंसा करना, कुश को जगाना, स्वयं को अयोध्यानगरी की राज्यश्री बतलाना, कुश के अवध पहुंचते ही राजा कुमुद का सेना लेकर आना तथा युद्ध का वर्णन सम्बन्धी घटनाएं कल्पनामयी तूलिका से चित्रित हैं। प्रसाद का इन कल्पित घटनाओं को ग्रहण करने का प्रमुख उद्देश्य कुशवंश के शौर्य और पराक्रम की प्रशंसा करता रहा है। ऐसा करने की भूमिका में प्रसाद का उद्देश्य सम-सामयिक समाज के समक्ष राजवंशों की स्थापना करना था।

ब्रह्मर्षि

'ब्रह्मर्षि' कथा का आधार वाल्मीकि रामायण और भागवत पुराण है। इस कथा में पात्र, घटना ओर वातावरण ऐतिहासिक हैं। पात्रों की दृष्टि से वशिष्ठ[5], विश्वामित्र[6], त्रिशंकु[7], महाराज हरिश्चन्द्र[8], शुनःशेक[9], मधुच्छन्दा,[10] इन्द्र[11] आदि ऐतिहासिक पात्र हैं। 'ब्रह्मर्षि' में आई हुई ऐतिहासिक घटनाएं इस प्रकार हैं—एक रोज विश्वामित्र के पृथ्वी परिक्रमा के समय कई अक्षोहिणी सेना सहित वसिष्ठाश्रम पहुंचने पर महर्षि ने कामधेनु की सहायता से उनका आतिथ्य-सत्कार किया[12]। विश्वामित्र ने मुनि वसिष्ठ से कामधेनु प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की, परन्तु उन्होंने किसी

१. रघुवंश, १६।७६
२. वही, १६।७७-८५
३. वही, १६।८८
४. वही, १६।२३-२५
५. भागवत पुराण, नवम स्कन्द, ७।५
६. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, ५१।१८-१९
७. भागवत पुराण, नवम स्कंद, ७।५
८. वही, ९।७।७
९. वही, ८।१६।३०
१०. वही, ९।१६।२९
११. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, ६५।५
१२. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, ५१।२१-२५ तथा सर्ग ५२

भी परिस्थिति में उसे देने से इन्कार कर दिया[१]। शवला कामधेनु को विश्वामित्र के सैनिकों द्वारा बलात् पकड़े जाने पर उसके प्रभाव से सैनिक उत्पन्न हो गये, जिनसे विश्वामित्र का युद्ध हुआ[२]। युद्ध में विश्वामित्र हार कर तप करने के उद्देश्य से वन की ओर प्रस्थान कर गये[३]। धनुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करके[४] वसिष्ठाश्रम में विश्वामित्र ने पुनः अनेक अस्त्रों का प्रयोग किया और अन्त में वसिष्ठ के ब्रह्मबल से पराजित होकर ब्रह्मबल प्राप्त करने के लिये कठिन तपस्या करने चल दिये[५]। एक हजार वर्ष तक तप करने पर ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उन्हें राजर्षि की उपाधि प्रदान की[६]। इधर त्रिशंकु संदेह स्वर्ग जाने के उद्देश्य से वसिष्ठ के पास यज्ञ कराने हेतु पहुंचा, परन्तु वसिष्ठ द्वारा यज्ञ करने की स्वीकृति न देने पर वह गुरु-पुत्रों के पास गया। गुरु-पुत्रों ने त्रिशंकु को गुरू के प्रति अविश्वास करने पर चाण्डाल होने का शाप दिया[७]। राजा ने चाण्डाल वेश में विश्वामित्र को गुरु और गुरु-पुत्रों द्वारा अपमानित होने का वृत्तान्त सुनाया[८]। विश्वामित्र ने राजा त्रिशंकु को इस चाण्डाल रूप में स्वर्ग भिजवाने के लिये पुष्पकर्मा यज्ञ में ऋषियों को बुलवाया, परन्तु इसमें वसिष्ठ-पुत्र नहीं आये। विश्वामित्र ने उन वसिष्ठ-पुत्रों को शाप से भस्मीभूत कर दिया[९] और त्रिशंकु विश्वामित्र के तपोबल से स्वर्गलोक में एक नक्षत्र के रूप में लटक गया[१०]। शुनःशेक को महाराज हरिश्चन्द्र ने यज्ञ में पुरुष पशु-रूप में खरीदा। विश्वामित्र ने उसे देवताओं और प्रजापति की स्तुति करने पर बन्धन से मुक्त कराया[११]। इसके उपरान्त विश्वामित्र ने अपने को क्रोध से बचाने के लिये एक हजार वर्ष तक तप किया फिर भोजन के लिये अन्न परोसा तो इन्द्र ने ब्राह्मण के रूप में आकर सिद्ध अन्न मांगा। विश्वामित्र ने वह अन्न ब्राह्मण को दे दिया और स्वयं बिना अन्न खाये रहे। विश्वामित्र ने पुनः तप करना प्रारम्भ किया। ब्रह्मा और देवतागण विश्वामित्र के इस तप से प्रभावित हुये। विश्वामित्र के कहने पर सभी देवताओं ने वसिष्ठ को मनाया तथा वसिष्ठ ने विश्वामित्र के पास जाकर मित्रता की और उन्हें ब्रह्मर्षि होने की बात कही[१२]। 'ब्रह्मर्षि' कथा में तत्कालीन समाज-व्यवस्था में ब्राह्मणों को जो शीर्ष स्थान प्राप्त था, उसी का संकेत मिलता है।

---

१. वाल्मीमि रामायण, बालकाण्ड, ५३।७-२५
२. वही, सर्ग ५४
३. वही, सर्ग ५६
४. वही, सर्ग ५५।१५-१६
५. वही, सर्ग ५६
६. वही, सर्ग ५७।१-७
७. वही, सर्ग ५७।८ से ५८ सर्ग
८. वही, सर्ग ५५।१०-१८
९. वही, सर्ग ६०
१०. श्रीमद्भागवत पुराण, ९।७।५-६
११. वही, ९।१६।३०-३२
१२. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग ६५

कथाकार ने इस रचना में जहां ऐतिहासिकता का निर्वाह करने का सफल प्रयत्न किया है, वहाँ नारद प्रसंग, पल्लवदेशीय लोगों का विश्वामित्र से युद्ध, तदनन्तर विश्वामित्र का पलायन आदि काल्पनिक घटनाओं के आक्कलन से कथा की एकसूत्रता को संवारने का भी सुन्दर संयोजन किया है।

महाभारतकालीन आधार

महाभारत पर आधारित प्रसाद-साहित्य को गद्य और पद्य दो भेदों में वर्गीकृत किया जा सकता है। गद्य के अन्तर्गत 'सज्जन' और 'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक और 'बभ्रूवाहन' चम्पू तथा पद्य के क्षेत्र में 'कुरुक्षेत्र', 'भरत', 'वन', 'मिलन' नामक आख्यानक का आधार श्रीमद्‌भगवत गीता और भगवत पुराण होने से मिश्रित—काव्य की कोटि में रखा जा सकता है।

सज्जन

'सज्जन' नाटिका महाभारत की एक घटना पर आधारित है। इसमें आये हुए पात्रों में युधिष्ठिर[१], अर्जुन[२], नकुल[३], सहदेव[४], भीम[५], कर्ण[६], दुर्योधन[७], दुःशासन[८], शकुनि[९], चित्रसेन[१०], तथा द्रौपदी[११] ऐतिहासिक पात्र हैं। इनका उल्लेख महाभारत में मिलता है। घटनाओं की दृष्टि से यह नाटिका ऐतिहासिक है। दुर्योधन की कुटिल राजनीतिक चालों के परिणामस्वरूप पाण्डव द्वैतसरोवर के निकट शान्तिपूर्वक अपना समय व्यतीत करने के लिए चले जाते हैं[१२]। तदुपरान्त दुर्योधन दुःशासन, शकुनि तथा अन्य भाइयों एवं सहस्र स्त्रियों सहित द्वैत-वन में जाकर मृगया खेलता है[१३]। द्वैत-सरोवर पर पहुंचने पर गंधर्व दुर्योधन को रोकते हैं तथा गन्धर्वराज के आने की सूचना देते हैं[१४]। साथ ही वे दुर्योधन की सेना को वन में प्रविष्ट होने से रोकते हैं[१५]। कौरवों के कुछ सैनिक गन्धर्वों को तिरस्कृत करते हुए वन में प्रविष्ट होते हैं[१६]। चित्रसेन और दुर्योधन में युद्ध होता है[१७]। दुर्योधन पकड़ा जाता है[१८]। गन्धर्वो द्वारा खदेड़े हुये सैनिक और मन्त्री-गण भागकर पाण्डवों के पास जाकर शरण लेते हैं तथा उन्हें राजा दुर्योधन

१. महाभारत, वन पर्व, २३९।१५
२. वही,
३. वही, २४१।२२
४. वही,
५. वही,
६. वही, २३९।३
७. वही, २४५।२५, २३९।२५
८. वही, २३८।२४
९. महाभारत, वन पर्व, २३८।२४, २३९।३
१०. वही, २४०।७-८
११. वही, २३२।३, २३५।१३
१२. वही, २३९।१३, १५
१३. वही, २३८।२४, २३८।२६, २३९।७, १०
१४. वही, २३९।२०, ३१
१५. वही, २४०।२
१६. वही, २४०।७-८
१७. वही, २४०।९, २४१।५
१८. वही, २४१।६

की गन्धर्वों द्वारा पकड़ने एवं उनके छुड़वाने का आग्रह करते हैं[1] । युधिष्ठिर अर्जुन, नकुल, सहदेव और भीम को दुर्योधन के छुड़वाने के लिये कहता है[2] । चारों पाण्डव जाकर युद्ध करते हैं[3] । चित्रसेन और अर्जुन में युद्ध होने पर चित्रसेन अपना रूप प्रकट करते हुये स्वयं को अर्जुन का मित्र बतलाता है[4] । अर्जुन चित्रसेन को युधिष्ठिर का संदेश कहता है[5] । चित्रसेन कौरवों सहित युधिष्ठिर के पास पहुंच कर सारा वृत्तान्त सुनाता है[6] । अन्त में युधिष्ठिर के कहने पर कौरव मुक्त कर दिये जाते हैं। युधिष्ठिर गन्धर्वों की प्रशंसा करता है[7] । चित्रसेन और दुर्योधन धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर चले जाते हैं[8] । इस नाटिका में राज्य-लिप्सा के लिये कौरवों का अपने ही गान्धर्वों से वैमनस्य रखने पर भी धर्मराज युद्धिष्ठिर द्वारा सौजन्यपूर्ण व्यवहार रखना, तत्कालीन सामाजिक श्रेष्टता को प्रमाणित करता है। इस रूपक में आये हुये द्वैतवन[9], द्वैत-सरोवर[10], हस्तिनापुर[11], आदि स्थानों का उल्लेख महाभारत में मिलता है।

प्रसाद ने इस रूपक में ऐतिहासिकता के निर्वाह के साथ-साथ नाटकीयता का ध्यान रखा है । इससे घटनाओं में कुछ परिवर्तन हो गया है । इस कथा में युधिष्ठिर ने दुर्योधन को चित्रसेन से बचाने के लिए अर्जुन को भेजा है । ऐसे ही भीम द्वारा जल लाने की कल्पित घटना को चित्रित करते हुए युधिष्ठिर को दुर्योधन के पकड़े जाने की घटना की ओर पूर्व संकेत कर दिया है । इस परिवर्तन और कल्पित घटना की अवतारणा करने का एकमात्र ध्येय ऐतिहासिक घटना को नाटकीय रूप देना ही रहा है ।

जनमेजय का नागयज्ञ

'जनमेजय का नागयज्ञ' में जनमेजय[12], तक्षक[13], वासुकि[14], काश्यप[15], वेद[16], उत्तंक[17], आस्तीक[18], सौमश्रवा[19], च्यवन[20], वेदव्यास[21], जरत्कारु[22],

---

१. महाभारत, वनपर्व, २४१।६-१३
२. वही, २४२।७
३. वही, अध्याय २४४
४. वही, २४४-२७
५. वही, २४५।६
६. वही, २४५।१२
७. वही, २४५।१३
८. वही, ठ४५।१७ तथा २४
९. वही, २३८।२६, १३६।१३
१०. वही,
११. वही, २४५।२४
१२. वही, आदि पर्व, ४४।६
१३. वही, ४२।३४
१४. वही, १४।३
१५. वही, ४१।३३
१६. वही, ३।८४
१७. वही, ३।८४
१८. वही, १५।३
१९. वही, ३।१३-१६
२०. वही, ६।१-२
२१. वही, ५३।७
२२. वही, १३।११

चण्डभार्गव[१], तुरकावर्षय[२], अश्वसेन[३], शौनक[४], वपुष्टमा[५], सरमा[६], आदि पात्र ऐतिहासिक हैं। इनका उल्लेख महाभारत में मिलता है। इस नाटक में ऐतिहासिकता का निर्वाह पूर्ण रूप से हुआ है। प्रसाद ने नाटक के प्राक्कथन में कहा है—'जहाँ तक हो सका है इसके आख्यान-भाग में भारतकाल की ऐतिहासिकता की रक्षा की गई है—तात्पर्य यह है कि नाटक में ऐसी कोई घटना समाविष्ट नहीं है जिसका मूल भारत और हरिवंश में न हो। घटनाओं की परम्परा ठीक करने में नाटकीय स्वतन्त्रता से अवश्य कुछ काम लेना पड़ा है, परन्तु उतनी से अधिक नहीं, जितनी किसी ऐतिहासिक नाटक लिखने में ली जा सकती है[७]। महाभारत के पश्चात् कुरुदेश का शासक परीक्षित था। उस समय नागजाति ने हस्तिनापुर पर आक्रमण किया। इसमें वहां का शासक परीक्षित नाग सरदार तक्षक द्वारा मारा गया। परीक्षित के मारने में मुनि श्रेष्ठ कश्यप ने भी धन-लोलुपता में पड़कर नाग-सरदार तक्षक का सहयोग दिया[८]। परीक्षित के उपरान्त उसका जेष्ठपुत्र जनमेजय वहां का शासक बना[९]। जनमेजय से भूलवश एक ब्रह्महत्या हो गई।[१०]। इसके प्रायश्चित स्वरूप उसने शोनप के आचार्यत्व में एक अश्वमेधयज्ञ कराया, जिसमें राजा और ब्राह्मणों में परस्पर वैमनस्य उत्पन्न हो गया[११]। इसके फलस्वरूप जनमेजय ने नागकन्या से उत्पन्न सोभश्रवा को अपना पुरोहित बनाया[१२]। और तक्षशिला पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में ले लिया[१३]। इन घटनाओं के अतिरिक्त उत्तंक का वेद के यहां विद्याध्ययन[१४], गुरुआनी को दक्षिणा-स्वरूप मणिकुण्डल लाकर देना[१५], वपुष्टभा द्वारा उत्तंक को तक्षक से बचाव की घोषणा[१६], मार्ग में तक्षक द्वारा मणिकुण्डल छीनना[१७], जरत्कारु का नागजाति की कन्या से विवाह करना[१८], सरमा द्वारा अपने पुत्र को जनमेजय के भाइयों द्वारा पीटने की बात कहना[१९],

१. महाभारत, वनपर्व, ५३।५
२. भागवत पुराण, ६।२२-२५, २६
३. हिन्दी विश्वकोष, द्वितीय भाग, कलकत्ता (संस्क० १६१७), पृ० ३७८
४. महाभारत, आदि पर्व, ४।१०
५. महाभारत, आदि पर्व, ४४।८
६. वही, ३।१
७. जनमेजय का नागयज्ञ, प्राक्कथन, पृ० ६
८. महाभारत, आदि सर्व, ४३वां अध्याय
९. वही, ४४।६
१०. महाभारत, शान्तिपर्व, १५०वां अध्याय
११. ऐतरैय ब्राह्मण, ७-२७
१२. महाभारत, आदि पर्व, १।१४-१६
१३. वही, ३।२०
१४. महाभारत, आदि पर्व, ३।६४-६५
१५. महाभारत, आदि पर्व, ३।११२,८४,८६
१६. वही, ३।११२
१७. वही, १।१५२-५३
१८. वही, १५।३
१९. वही, ३।१-२

सम्वन्धी घटनाएँ भी ऐतिहासिक हैं। 'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक में तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक वातावरण चित्रित हुआ है। सामाजिक क्षेत्र में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोपरि था। राजा तक उसका सम्मान करते थे। समाज में स्त्रियों का स्थान सम्माननीय था। वे राजसभा में बैठा करती थीं। गुरुकुल शिक्षा का केन्द्र था, जहां गुरु और शिष्य में घनिष्ट प्रेम रहता था। राजनीतिक दृष्टि से एक शक्तिशाली जाति कमजोर जाति पर आक्रमण कर दिया करती थी। नाटक में कुरुक्षेत्र[1], तक्षशिला[2], हस्तिनापुर[3] आदि स्थान ऐतिहासिक हैं।

प्रसाद ने उक्त ऐतिहासिक आधार पर इस नाटक की रचना की है। इस आधार को एकसूत्रता में पिरोने, उसमें नाटकीयता लाने तथा व्यापकता भरने के लिए कुछ कल्पित घटनाओं को भी लिया गया है। माणवक का गुप्त रूप से जनमेजय की हत्या का प्रयत्न, पुरोहितों पर किया गया व्यंग्य, तक्षक-पुत्री मणिमाला का जनमेजय से पूर्वानुराग, दामिनी का जनमेजय से पूर्वानुराग, दामिनि का उत्तांक के प्रति प्रतिशोध की भावना से इधर-उधर भटकना तथा अन्त में जनमेजय के समक्ष अपनी भूल स्वीकार करना, कश्यप का आर्य साम्राज्य छीनने की ब्राह्मणों के समक्ष योजना बनाना तथा नाग-कन्या मणिमाला और आस्तीक के चरित्र पर प्रकाश डालना आदि कुछ ऐसी ही घटनाएँ हैं।

बभ्रूवाहन

'बभ्रूवाहन' चम्पू में अर्जुन[4], चित्रांगदा[5] और बभ्रुवाहन[6] ऐतिहासिक पात्र हैं। अर्जुन कुन्ती तथा पांडु का पुत्र है। चित्रांगदा मणिपुर के राजा चित्रवाहन की कन्या तथा बभ्रूवाहन अर्जुन का पुत्र एवं मणिपुर का शासक है। ऐतिहासिक घटनाएँ इस प्रकार हैं—अर्जुन मणिपुर नगर में तीर्थ-पर्यटन के लिये गया। रास्ते में उसका साक्षात्कार कुमारी चित्रांगदा से हुआ। अर्जुन उस पर मोहित हो कर उसे वरण करने के उद्देश्य से राजा के पास गया। राजा ने उसका परिचय ज्ञात करने की इच्छा व्यक्त की। साथ ही उसने अपने वंश में एक संतान होने की बात कही। उसने चित्राँगदा से उत्पन्न पुत्र को दत्तक करके रोकने को कहा। अर्जुन ने राजा की यह बात स्वीकार करते हुए, उसकी पुत्री चित्रांगदा से विवाह कर लिया और तीन वर्ष तक वहां रहा। चित्रांगदा के पुत्रोत्पन्न होने पर अर्जुन चल दिया[7]। एक दिन पाण्डवों के अश्वमेध

---

१. श्रीमद्भगवत गीता, १।१४-३।१६
२. महाभारत, आदिपर्व, ३।२०
३. महाभारत, वनपर्व, २४५।२४
४. महाभारत, आदिपर्व, २१५।१८
५. वही, २१५।१५-१६
६. वही, अश्वमैधिक पर्व, ७९।१
७. महाभारत, आदिपर्व, २१५।३-२७

का घोड़ा जिसके पीछे अर्जुन चल रहा था, अपनी इच्छानुसार अनेक देशों में अर्जुन के पराक्रम को बढ़ाता हुआ मणिपुर के राजा के यहां पहुंचा[1]। बभ्रूवाहन ब्राह्मणों के धन के साथ आगे करता हुआ अर्जुन के पास आया। अर्जुन ने उसकी निन्दा की तथा क्षात्र-धर्म का उपदेश देते हुये उसे युद्ध करने के लिए आवाहन करने को कहा। बभ्रूवाहन ने युद्धवेश में सज्जित हो युद्ध में आवाहन किया। दोनों में आपस में घमासान युद्ध हुआ। अन्त में चित्रांगदा अपने पति को मूर्च्छित अवस्था में मरा हुआ समझ कर तथा अपने पुत्र को घायल देख कर रणभूमि में प्रविष्ट हो गई[2]। बभ्रूवाहन के होश में आने पर उसने उलूपी द्वारा दी गई दिव्य मणि को अर्जुन के शरीर पर मला। वह जीवित हो गया। अर्जुन ने बभ्रूवाहन का आलिंगन किया और मस्तक चूमा। उसने रणभूमि में चित्रांगदा के आने का कारण पूछा[3]। वातावरण की दृष्टि से इस चम्पू में राजनीतिक वातावरण प्रस्तुत हुआ है। अश्वमेघ का घोड़ा छोड़ना तत्कालीन साम्राज्य की विस्तृत अवस्था की ओर संकेत करता है। उक्त रचना में मणिपुर ऐतिहासिक स्थान आया है।

'बभ्रूवाहन' चम्पू में अर्जुन का एक गायक के वेश में शिवालय में प्रविष्ट होना, शिवालय में राजा का मन्त्री के साथ प्रवेश, राजा द्वारा उस गायक वेशधारी अर्जुन को राजमन्दिर में ले जाना, चित्रांगदा की विरह-दशा का वर्णन, चित्रांगदा का अर्जुन को मूर्च्छित अवस्था में रथ पर आरोहण कर राज प्रासाद में ले जाना और चित्रांगदा द्वारा अर्जुन के मुख पर सुगन्धित सलिल सिंचन करते हुए उसकी मूर्च्छा मिटाना सम्बन्धी घटनाएँ कल्पित हैं। प्रसाद ने ऐतिहासिक घटनाओं में किंचित परिवर्तन करते हुए कल्पित घटनाओं के सहारे नारी की विरह-वेदना और पति के प्रति नारी के प्रगाढ़ प्रेम को व्यक्त किया है।

कुरुक्षेत्र

'कुरुक्षेत्र' आख्यानक काव्य का ऐतिहासिक आधार महाभारत, भागवत् पुराण तथा भगवतगीता हैं। इस आख्यानक में आये हुए पात्रों में कृष्ण[4], बलराम[5], कंस[6],

---

१. महाभारत, अश्वमैधिक पर्व, ७८।४६-४

२. महाभारत, अश्वमैधिक पर्व, १९वां अध्याय

३. वही, अस्सीवां अध्याय

४. श्री मद्भागवत पुराण (पूर्वार्व), १०।८।२४

५. वही, १०।८।२७

६. वही, १०।४४।३३-३८

जयद्रथ[1], शिशुपाल[2], युधिष्ठिर[3], अर्जुन[4], शकुनी[5], भीम[6], दुर्योधन[7], दुःशासन[8], और सुभद्रा[9] ऐतिहासिक पात्र हैं। 'कुरुक्षेत्र' काव्य में आई हुई ऐतिहासिक घटनाएँ इस प्रकार हैं—कृष्ण का गोकुल में बाल्यावस्था में रह कर क्रीड़ाएँ करना[10], उसके उपरान्त पापी कंस के अत्याचारों से पीड़ित जनता के बचाव के लिये उसे मारना[11], मगध-सम्राट जरासंध को सत्तरह बार पराजित करना[12], मलेच्छ दल को मारना तथा अनेक विपत्तियों का सामना करते हुए द्वारका पहुंचना[13], श्रीकृष्ण के कहने पर अर्जुन का द्वारका आना और उसके साथ सुभद्रा का विवाह करना[14], युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भगवान श्रीकृष्ण का सहायक होना और अजेय जरासंध को भीमसेन के साथ द्वन्द्व-युद्ध में मरवाना,[15] दमघोष के पुत्र शिशुपाल को कृष्ण के ऊपर आक्रमण करने पर उन्हीं के द्वारा सुदर्शन चक्र से उसका सिर काटना,[16] संबंधी घटनाएँ ऐतिहासिक हैं। इनके अतिरिक्त कौरवों द्वारा पाण्डवों के जुए में हारने पर १४ वर्षीय वनवास देना[17], श्रीकृष्ण का अर्जुन के साथ कुरुक्षेत्र युद्ध में सारथी के रूप में आना[18], अर्जुन द्वारा अपने स्वजनों को युद्धभूमि में व्याकुल देख कर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उसे आसक्ति से रहित हो कर कर्म करने का उपदेश देना सम्बन्धी घटनाएँ भी ऐतिहासिक हैं। 'कुरुक्षेत्र' में वर्णित राजनीति क्षेत्र में शासन प्राप्त करने का षड्यन्त्र, शासन प्राप्ति के लिए युद्ध, राजसूय यज्ञ का विधान तथा अत्याचारी शासकों को मारना, सामाजिक क्षेत्र में एक ओर भाई-भाइयों में आपसी प्रेम और दूसरी ओर द्वेषता की भावना, विवाह के स्थान पर हरने की प्रथा, तथा धार्मिक क्षेत्र में ब्राह्मणों और योग्य व्यक्तियों

---

१. श्रीमद्भागवत पुराण, उत्तरार्ध, १०।५०।४२-४३
२. वही, १०।७४।३०   ३. वही, १०।७४।१६
४. वही (पूर्वार्ध), १।१४-३०   ५. महाभारत, सभापर्व, ५६।१
६. श्रीमद्भागवत पुराण (उत्तरार्ध) ७२।१६-४६
७. महाभारत, सभापर्व, ५५।२१   ८. वही, आदिपर्व, १९८।५१-५२
९. वही, २२१।९-१२
१०. श्रीमद्भागवत पुराण (पूर्वार्ध), १०।८।२४,२७, १५।१
११. वही, १०।४४।३३-३८   १२. वही, १०।५०।४२-४३
१३. वही, १०५२।५-१३
१४. महाभारत, आदिपर्व, २२१।९-१२
१५. श्रीमद्भागवत पुराण (उत्तरार्ध) १०।७२।२-४६
१६. श्रीमद्भागवत पुराण, (उत्तरार्ध) १०।७४।२६-४३
१७. महाभारत, सभापर्व, ५६।१, ७५।२-२४
१८. श्रीमद्भागवत गीता, १।१४-३।१९

की इच्छा का सम्मान करना तत्कालीन वातावरण को प्रस्तुत करती हैं । इस रचन में कुरुक्षेत्र और व्रज दो ऐतिहासिक स्थान आये हैं ।

प्रसाद ने इस काव्य में ऐतिहासिक आधार को पूर्ण रूप से ग्रहण करने का प्रयास किया है । फिर भी कवि-कल्पना को अवसर मिला है । घटनाओं के चयन में उन्हें आगे-पीछे कर दिया है । परन्तु इससे ऐतिहासिकता में कोई बाधा नहीं आने पाई है । इस आख्यान में कवि का प्रमुख उद्देश्य श्रीकृष्ण के चरित्र को व्यापक रूप देना रहा है ।

भरत

'भरत' नामक कविता का आधार महाकवि कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल का सप्तम अंक है[1] । वैसे उसकी कथा महाभारत में मिलती है[2] । प्रसाद ने प्रमुख रूप से इस कविता का आधार अभिज्ञान शाकुन्तल को ही बनाया है । 'भरत' कविता में भरत, भरत की माता, कश्यप और दुष्यन्त पात्र आये हैं, जो ऐतिहासिक है । घटनाओं ऐतिहासिकता है । हिमगिरि के उत्तंगशृंग पर कश्यप ऋषि के आश्रम में भरत की माता निर्भीक हो कर रह रही है । वह अपने पति द्वारा दुर्दैववश बिछुड़ी हुई है । उसका बालक भरत जंगल में निर्भीक हो कर शिशु सिंहों के साथ खेल रहा है । वही इसके सहचर हैं ।

प्रसाद ने 'भरत' कविता में भरत के चरित्र में वीरत्व और ऐश्वर्य की महानता को तथा देश-प्रेम की भावना को व्यक्त करने में कवि-कल्पना का सहारा लिया है ।

वन-मिलन

'वन-मिलन' आख्यान प्रधान कविता का आधार कालिदास कृत अभिज्ञान शाकुन्तल का सप्तम अंक है । 'वन-मिलन' में कश्यप, मारीच, दुष्यन्त, शकुन्तला, भरत तथा गालव ऐतिहासिक पात्र हैं । प्रसंग में महर्षि कण्व और मेनका का नाम भी आया है । अदति कश्यप ने कन्या का मनोरथ अर्थात् दुष्यन्त से मिलन होने की बात कण्व ऋषि तक पहुंचाने के लिए कहा । गालव इस संदेश को पहुंचाने के लिए गुरु से आज्ञा पाकर चला जाता है । मारीच की आज्ञा से दुष्यन्त भी अपने पुत्र तथा पत्नी सहित इन्द्र रथ पर आसीन हो कर अपनी राजधानी को प्रस्थान करता है । प्रसाद ने इस कविता में ऋषियों की महत्ता प्रदर्शित करते हुये सामाजिक वातावरण प्रस्तुत किया है ।

प्रसाद ने 'वन-मिलन' कविता में कल्पना का सहारा लिया है । कण्व ऋषि के आश्रम में शकुन्तला की सखी अनसूया और प्रियंवदा को शकुन्तला के वियोग में चिंतित

१. अभिज्ञान शाकुन्तलम, अभिनवराजलक्ष्मी (भाषा टीका), संस्क० तृतीय (सं०२००८) पृ० ४७७-५२५
२. महाभारत,आदिपर्व, चौदहवां अध्याय

होना, दुष्यन्त का अपने पुत्र तथा पत्नी सहित मारीच आश्रम से कण्व ऋषि के आश्रम में आना, शकुन्तला द्वारा महर्षि कण्व से अपनी दोनों सखियों को मांगना तथा शकुन्तला की माता मेनका का चीनांशुक उड़ाती उतरना सम्बन्धी घटनाएँ कल्पित हैं। प्रसाद ने इन कल्पित घटनाओं के माध्यम से राजा दुष्यन्त तथा उसके पुत्र और पत्नी को महर्षि कण्व तथा शकुन्तला की सखियों से मिलाना चाहते थे। इसी के साथ-साथ वे इस छोटे से ऐतिहासिक आधार के माध्यम से इस घटना को आख्यानक काव्य का रूप देना चाहते थे।

पौराणिक आधार

प्रसाद के पुराणों पर आधारित साहित्य को गद्य, पद्य और चम्पू में विभक्त कर सकते हैं। गद्य के अन्तर्गत 'पंचायत' कथा, पद्य में 'कामायनी' और 'करुणालय' तथा चम्पू में 'उर्वशी' को रखा जा सकता है। इनमें 'कामायनी' और 'करुणालय' मिश्रित काव्य हैं।

पंचायत

'पंचायत' कथा का आधार रुद्रसंहिता का कुमार खण्ड है[1]। कथा में पात्र, घटना एवं वातावरण ऐतिहासिक हैं। इस कथा में गणेश, स्कंद, शंकर, भवानी, नारद और ब्रह्मा आये हैं, जो पौराणिक पात्र हैं। रुद्रसंहिता के कुमार खण्ड में बतलाया गया है कि शिव-पार्वती के दोनों पुत्रों—गणेश और स्कन्द में पहिले विवाह करने के विषय में विवाद छिड़ गया। माता-पिता ने दोनों के विवाह के विषय में ऐसी शर्त रखी जो उनके लिए कल्याणकारी थी। शर्त थी जो सारी पृथ्वी की परिक्रमा करके पहिले लौट आयेगा, उसी का शुभ विवाह पहिले होगा। स्कन्द इस प्रतिज्ञा को सुनते ही पृथ्वी की परिक्रमा करने चल दिये। गणेश बुद्धि सम्पन्न होने के कारण वहीं खड़े होकर विचारमग्न हुए, अन्त में सात बार माता-पिता की परिक्रमा करके अपने विवाह की बात कही। गणेश का विवाह हुआ। स्कंद को परिक्रमा से लौटने पर जब समाचार ज्ञात हुआ तो वे अत्यन्त लज्जित हुये और क्रौंच पर्वत की ओर चले गये। पंचायत में पारिवारिक वातावरण को प्रस्तुत किया गया है। जहाँ माता-पिता का आदेश माननीय बतलाया है।

प्रसादजी ने इसी कथा को आधार मानकर स्कंद और गणेश में आपस में बड़े होने के विवाद पर एक पंचायत का आयोजन कराया है जिसमें देवताओं सहित शंकर विराजमान हैं। ब्रह्मा ने परीक्षा के लिये समग्र विश्व की परिक्रमा लगाने वाले को बड़े होने का भागी बतलाया है। इसमें गणेश ही सफल हुये हैं।

---

१. शिव पुराण, रुद्रसंहिता कुमार खण्ड, द्वितीय खण्ड, मुरादाबाद, प्रथम संस्करण, अठारवाँ अध्याय व १९।२४ अध्याय।

इस प्रकार सम्पूर्ण कथा में केवल विश्व की परिक्रमा लगाने की घटना ही ऐतिहासिक है। इसी घटना को आधार मानकर ऐतिहासिक पात्रों द्वारा कथा की रचना हुई है।

कामायनी

'कामायनी' महाकाव्य का मूलाधार ग्रन्थ शतपथ ब्राह्मण और ऋग्वेद पुराणादि हैं। इसमें आये हुये मनु, श्रद्धा, इड़ा और किलात-आकुलि पात्रों का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण[१] और ऋग्वेद[२] में अनेक स्थलों पर मिलता है। कामायनी के आमुख में प्रसाद ने लिखा है—'कामायनी की कथा-शृंखला मिलानेके लिये कहीं थोड़ी-बहुत कल्पना को भी काम में ले आने का अधिकार मैं नहीं छोड़ सका हूं[३]।' जल-प्लावन की घटना प्राचीन है, जिसका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में मिलता है[४]। नौका का हिमगिरि प्रदेश में पहुंचना[५], मनु का श्रद्धा से मिलन[६], किलात-आकुलि पुरोहित को हिंसा-यज्ञ करने की प्रेरणा देने[७] सम्बन्धी उल्लेख पौराणिक काल पर आधारित हैं। यज्ञ करने के उपरान्त सोमरस पान करने का वृत्तान्त ऋग्वेद में मिलता है[८]। मनु सारस्वत प्रदेश में नियमन कार्य करते हैं[९]। वहाँ प्रजापति अपनी दुहिता का आलिंगन करते हैं[१०]। देवताओं द्वारा रुद्र से इस अत्याचार की प्रार्थना करना तथा उसके उपरान्त संहार-सम्बन्धी घटनाएं शतपथ ब्राह्मण में मिलती हैं[११]। कामायनी में देव-संस्कृति के ध्वंस के उपरान्त मानवी सृष्टि के आरम्भ का वर्णन हुआ है, जो तत्कालीन है। इसमें आदि-कालीन मनुष्य तथा स्त्री के सहयोग से मानव के विकास की कहानी है। कामायनी में आये हुये कैलास[१२], हिमालय[१३], गान्धार, सारस्वत प्रदेश और सप्त-सिन्धु[१४] ऐतिहासिक स्थान हैं।

प्रसाद ने उक्त ऐतिहासिक आधार में ऐतिहासिक घटनाओं को ज्यों का त्यों

---

१. शतपथ ब्राह्मण, ११।१४।१५
२. ऋग्वेद, १०।१५१।१-४, ६।१।६, १०।५७
३. कामायनी का आमुख (प्रथम संस्करण)
४. शतपथ ब्राह्मण, आठवां अध्याय
५. शतपथ ब्राह्मण, ८।१।३
६. श्रीमद्भागवते पुराणे, ६।१।१४, ६।१।११ तथा ऋगवेद १०।११।१५१
७. शतपथ ब्राह्मण, ३।७।३।२-४
८. ऋग्वेद, ८।४८।८
९. वही, १।१३।११—'इडाम कृरावन्मनुष्यस्य शासनीय'
१०. शतपथ ब्राह्मण, ७।४
११. वही, १।७।४
१२. वही, १।थ।४
१३. अथर्ववेद, १६।३६।७-८
१४. डा० द्वादिकाप्रसाद, कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० ७१-७२

प्रदर्शित करने के साथ-साथ घटनाओं में कुछ परिवर्तन कर दिया है। इससे मौलिकता आ गई है। पाकयज्ञ के अवशिष्ट अंश को देखकर मनु के पास श्रद्धा का पहुंचना, उसका मातृत्व, अहिंसोपदेश, तकली कातना, ऊन की पट्टी बनाना, पशुपालन, पुत्र-प्रेम का आकर्षण तथा मनु की ईर्ष्या, उनका सारस्वत प्रदेश में चला जाना, मनु पर प्रजा का आक्रमण, स्वप्न देखकर युद्ध भूमि में पड़े हुये मूर्छित मनु के पास श्रद्धा का पहुंचाना, ग्लानिवश मनु का चला जाना, श्रद्धा द्वारा मनु की पुनः खोज एवं मिलन, मनु-श्रद्धा की कैलाश यात्रा, इड़ा-मानव मिलन, इड़ा-मानव का सारस्वत प्रदेश के निवासियों सहित कैलास दर्शन के लिये प्रस्थान संबंधी घटनाएं कवि-कल्पित हैं।

इस ऐतिहासिक कथानक में परिवर्तन प्रसाद ने इसलिये किया कि वे श्रद्धा में नारीत्व और मनु में श्रद्धा की प्रतिष्ठा करना चाहते थे। इसी कारण श्रद्धा अपने सम्पूर्ण नारीत्व स्वरूप को मनु के आगे समर्पित करती है। श्रद्धा का अहिंसो-पदेश, तकली कातना, ऊन की पट्टी बनना तथा पशु-पालन की भावना गांधीवादी प्रवृत्ति को प्रदर्शित करती है। इतिहास को एक विस्तृत रूप न देकर मनु के एक पुत्र मानव का ही वर्णन किया है। सारस्वत प्रदेश में हुये अत्याचार को प्रदर्शित करने में प्रसाद का लक्ष्य आधुनिक शासन और शासित के बीच हुये संघर्ष को प्रदर्शित करना था। इन परिवर्तनों से कल्पना ने इतिहास के विकीर्ण सूत्रों को संकलित करने में बड़ा योग दिया है।

उक्त परिवर्तन में भूत से भविष्यत् तक के सम्बन्ध सूत्रों को मिलाने की प्रवृत्ति ही नहीं, प्रत्युत लोक-मानस को छूने की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती हैं। श्रद्धा को इड़ा की बराबरी में प्रस्तुत करके प्रसाद ने हृदय और बुद्धि भाव तथा वस्तु की तुलना के लिये अवसर प्रस्तुत किया है।

करुणालय

'करुणालय' गीतिनाट्य का आधार श्रीमद्भागवत पुराण है। इसमें आये हुये पात्रों में हरिश्चन्द्र त्रिशंकु के पुत्र तथा अयोध्या के महाराज हैं[१]। रोहित महाराज हरिश्चन्द्र का पुत्र है[२]। वसिष्ठ विश्वामित्र, शुनःशेप और मधुच्छन्द भी पौराणिक पात्र हैं। जिनकी ऐतिहासिकता का उल्लेख ब्रह्मर्षि कथा की ऐतिहासिकता में किया गया है[३]। शक्ति को जैमनीय ब्राह्मण में वसिष्ठ का पुत्र बतलाया है[४]। इस गीतिनाट्य

---

१. भागवत पुराण, ९।७।७
२. वही, ९।७।९
३. देखिये ब्रह्मर्षि की ऐतिहासिकता
४. जैमनीय ब्राह्मण, २।३९०

में आई हुई ऐतिहासिक घटनाएं इस प्रकार हैं—महाराज हरिश्चन्द्र को वरुण की प्रार्थना करने पर पुत्र प्राप्ति हुई, परन्तु पुत्र-प्राप्ति उसे वरुण का यज्ञ करने की शर्त पर हुई थी। महाराज स्नेह वश उसका यज्ञ न कर सके। रोहित को पिता के संकल्पित कर्म की बात ज्ञात होते ही वह प्राण बचाने के निमित बन में चला गया। वहां उसने अजीगर्त से शुनःशेप नाम का मंझला पुत्र खरीद लिया और उसे यज्ञ पशु रूप में अपने पिता को दे दिया। महाराजा हरिश्चन्द्र ने नरमेघ-यज्ञ में देवताओं की स्तुति की। इस यज्ञ में वसिष्ठ और विश्वामित्र भी उपस्थित थे। इन्द्र राजा हरिश्चन्द्र से प्रसन्न हुये। विश्वामित्र ने भी तत्वज्ञान का उपदेश दिया[1]। इस रचना में तत्कालीन वातावरण की झलक दिखाई पड़ती है। उस समय धार्मिक भावना एवं प्रतिज्ञा-पालन की भावना प्रबल थी। देवताओं को प्रसन्न करने के लिये नर-बलि का आयोजन होता था। 'करुणालय' गीतिनाट्य में अयोध्या ऐतिहासिक स्थान आया है।

प्रसाद ने इस गीतिनाट्य से सम्बन्धित पौराणिक घटनाओं में अनेक स्थलों पर परिवर्तन किया है। परिवर्तन के साथ कल्पना का सहारा भी लिया है। राजा हरिश्चन्द्र का ज्योतिष्मान सेनापति से साथ नौका-बिहार, नौका का जल में स्तब्ध होना, आकाशवाणी द्वारा राजा को बलि चढ़ाने की प्रतिज्ञा की स्मृति दिलाना, वसिष्ठ द्वारा पिता-पुत्र के विवाद को शान्त करना, शुनःशेप के बलि आयोजन में वसिष्ठ का होना, शक्ति द्वारा उसका वध करने को बढ़ना, विश्वामित्र का उसी समय अपने पुत्रों सहित यज्ञ-मण्डप में प्रविष्ट होना, उसी समय दासी सुव्रता का यज्ञ-मण्डप में आना और अपने पति विश्वामित्र को पहचानना सम्बन्धी घटनाएं काल्पनिक हैं। इन घटनाओं को ग्रहण करने में प्रसाद का उद्देश्य करुणा का प्रतिपादन करना तथा पौराणिक पात्रों का मानवीकरण करना रहा है।

उर्वशी

'उर्वशी' चम्पू का पौराणिक आधार श्रीमद्भागवत पुराण है[2]। इसमें आये हुये पात्रों में पुरूरवा, बुध और इला से उत्पन्न चन्द्रवंशीय शासक है। उर्वशी इन्द्रलोक की देवांगना है। ऐतिहासिक घटना इस प्रकार है। एक समय इन्द्र-भवन में नारद द्वारा पुरूरवा के रूप एवं गुणों की महिमा सुनकर उर्वशी मृत्युलोक में आई। पुरूरवा ने उससे विवाह करने की बात सोची। उर्वशी ने उसके साथ एक शर्त रखी। वह थी दो भेड़ के वच्चों को धरोहर के रूप में अपने पास रखकर रक्षा करना तथा मैथुन के अतिरिक्त कभी उसे नग्न अवस्था में न देखना। इसके उपरान्त उर्वशी और पुरूरवा

---

१. भागवत पुराण, ९।७।६-२४

२. भागवत पुराण, ९।१५-३१

देवताओं के क्रीडा स्थल चैत्ररथ में बिहार करने लगे । एक दिन इन्द्र ने उर्वशी को बुलाने के लिये गन्धर्वों को भेजा । गन्धर्वों ने अर्ध रात्रि को उर्वशी के दोनों मेषों, जो राजा के पास धरोहर के रूप में थे, ले भागे । पुरूरवा उर्वशी के प्रोत्साहित करने पर अपनी तलवार लेकर नंगा गन्धर्वों के पीछे भागा । गन्धर्वों ने मेषों को छोड़ दिया और स्वयं तेजस्वी होकर प्रज्वलित हुये । उर्वशी ने पुरूरवा को नग्नावस्था में देख लिया और वह उसी समय उसे त्याग कर चली गई । 'उर्वशी' 'चम्पू' में पारिवारिक वातावरण दिखाते हुये नारी की महत्ता को प्रदर्शित किया है ।

'उर्वशी' चम्पू में आया हुआ प्रकृति-चित्रण, पुरूरवा का क्रन्दन-स्वर सुनकर उर्वशी के पास पहुंचना, उर्वशी का वीणा-वादन, एक गन्धर्व युवक द्वारा उर्वशी को फूलों की माला अर्पण करना, उर्वशी और गन्धर्व युवक का पूर्वानुराग, पुरूरवा का उस गन्धर्व युवक पर प्रहार, उर्वशी का पुरूरवा से केयूरक द्वारा दोनों मेष शावकों को ले जाने की बात कहना, पुरूरवा का मेष शावकों को तलाश करना सम्बन्धी घटनाएं काल्पनिक हैं । प्रसाद ने इस छोटे से ऐतिहासिक आधार को विस्तृत रूप देने के लिये इन कल्पित घटनाओं का आकलन किया है ।

बौद्धकालीन आधार

बौद्धकाल पर आधारित प्रसाद-साहित्य के अन्तर्गत 'अजातशत्रु' नाटक तथा 'पुरस्कार' और 'सालवती' कहानियाँ समाविष्ट की जाती हैं ।

अजातशत्रु

'अजातशत्रु' नाटक के पुरुष पात्रों में मगध सम्राट् बिम्बसार[१], मगध का राजकुमार अजातशत्रु[२], कौशाम्बी नरेश उदयन[३], कौशल नरेश पसेनदी (प्रसेनजित्)[४], कौशल का राजकुमार बिडुडाम (विरुद्धक)[५], कपिलवस्तु के शाक्यकुल से उत्पन्न गौतम बुद्ध[६], गौतम बुद्ध का प्रतिद्वन्दी देवदत्त[७], शालवती नामक वेश्या से उत्पन्न मगध का प्रसिद्ध राजवैद्य जीवक[८], कुशीनारा का मल्ल सामन्त तथा पसेनदी का सेनापति

१. डा० त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ७३
२. डा० भगवतशरण उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १०४-५
३. वही, पृ० १००
४. वही, पृ० १०२
५. डा० त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ७२
६. डा० उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ८८-८९
७. (क) अजातशत्रु, कथा-प्रसंग, पृ० १८
(ख) डा० त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ७४-७५
८. सत्यकेतु विद्यालंकार पाटलीपुत्र की कथा, पृ० ४३

बन्धुल[1], सेनापति बन्धुल का भतीजा दीर्घकारायण (प्रसाद के अनुसार भान्जा)[2], शुद्धोदन के भाई अमितोदन का पुत्र तथा बुद्ध का शिष्य आनन्द[3], बुद्ध का शिष्य सारिपुत थे[4] तथा नारी पात्रों में मगध-सम्राट् की बड़ी रानी तथा पसेनदी की बहन वासवी या कौशला[5], मगध सम्राट् की छोटी रानी तथा वैशाली के लिच्छवी राजा चेटक की पुत्री चल्लना (छलना)[6], मगध की राजकुमारी (कौशला के गर्भ से उत्पन्न) तथा उदयन की पत्नी पद्मावती[7], अवन्ती के शासक चंडमहासेन की कन्या तथा उदयन की बड़ी रानी वासवदत्ता[8], उदयन की तीसरी रानी मागन्धी,[9] शाक्य-कुमारी तथा पसेनदी की रानी वासम-खतिया (शक्तिमती)[10], कौशल के सेनापति बन्धुल की पत्नी मल्लिका[11], पसेनदी की पुत्री तथा अजातशत्रु की पत्नी वाजिरा[12], ऐतिहासिक हैं।

'अजातशत्रु' का कथानक मगध, कौशल और कौशाम्बी की ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है। मगध में कथा का आरम्भ आपसी गृह-कलह से होता है जो प्रामाणिक इतिहास पर आधारित न होकर ऐतिहासिक अनुमान और संभावना है[13]। गृह-कलह का कारण बिम्बसार का बौद्धधर्मावलम्बी होना तथा अजातशत्रु को युवराज बनाना था। एक दिन अजातशत्रु ने बौद्ध विरोधी चचेरे भाई देवदत्त के सिखाने पर अपने पिता का वध करना चाहा, परन्तु बिम्बसार ने उसे क्षमा कर उसे राज्य दे दिया[14]। कौशल नरेश पसेनदी ने बिम्बसार और वासवी की मृत्यु के उपरान्त वासवी के विवाह के समय दहेज-स्वरूप (नहानचुरणमूल) दिया हुआ काशी नगर मगध को

१. डा० जगदीश जोशी, प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृ० ६२
२. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० ४५
३. डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, वाल्यूम २, पृ० २४६
४. वही, पृ० १०८
५. रोकडिल, लाइफ आफ बुद्धा, पृ० ६३-६४
६. डा० उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १०३
७. अजातशत्रु, कथा-प्रसंग, पृ० १६-१७
८. वही, पृ० ११४ तथा डा० उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १३०
९. अजातशत्रु, कथा-प्रसंग, पृ० १४
१०. डा० त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ७२
११. अजातशत्रु, कथा प्रसंग, पृ० १६
१२. डा० त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ७२
१३. डा० जगदीश जोशी, प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृ० ८५
१४. डा० भगवत शरण उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १०४-५

देना अस्वीकार कर दिया[१]। इसके पश्चात् कौशल और मगध में आपसी युद्ध हुआ[२]। द्वितीय युद्ध में अजातशत्रु बन्दी हुआ। वहीं पसेनदी ने अपनी पुत्री वाजिरा का विवाह अजातशत्रु से कर दिया और साथ ही काशी नगर भी उपहार स्वरूप दे दिया[३]। कौशल नरेश पसेनदी ने अपनी पत्नी वासमाखतिया के नीच कुल का पता लगने पर उसके गर्भ से उत्पन्न विडुडाभ (विरुद्धक) को अपदस्थ कर दिया[४]। विडुडाभ (विरुद्धक) को इस घटना के ज्ञात होने पर उसने शाक्यों के विरुद्ध युद्ध किया[५]। पसेनदी ने अपने तक्षशिला के सहयोगी कुशीनारा के मल्ल सामन्त वन्धुल को अपना सेनापति बनाया[६]। परन्तु वह उसकी वीरता से भयभीत था, इसीलिए उसने अपने पुत्रों के साथ उसे सीमा प्रान्त के युद्ध को दबाने के लिए भेजा। इसमें उसके मारने का षड्यन्त्र था। उसके बाद उसका भतीजा दीर्घकारायण सेनापति के पद पर नियुक्त हुआ[७]। पसेनदी के वृद्धावस्था में मेत्सुरुदी नामक शाक्य नगर में बुद्ध से मिलने के लिए जाने पर उसका पुत्र विडुडाभ (विरुद्धक) दीर्घकारायण के सहयोग से सिंहासनारुढ़ हुआ[८]। पसेनदी को दीर्घकारायण के विश्वासघात की घटना मालूम होने पर वह श्रावस्ती न जाकर सीधा मगध की राजधानी राजगृह पहुंचा, लेकिन वहां पहुंचते ही उसकी मृत्यु हो गई[९]। वत्स के शासक उदयन को उसकी तीन रानियों में से पद्मावती पर अगाध विश्वास था। पद्मावती मगध-कुमारी होने से बुद्ध की उपासिका थी, लेकिन उदयन की रानी मागधी बुद्ध को तिरस्कृत रूप में देखती थी। अतः मागधी पद्मावती के बौद्ध उपासिका होने के कारण उससे भी अपना विरोध समझती थी। वह बुद्ध से तिरस्कृत हो चुकी थी। अतः अब अपने उर में प्रज्ज्वलित प्रतिकार की ज्वाला को वह पद्मावती से ही प्रतिशोध लेकर आंशिक रूप से शांत कर लेना चाहती थी। वह हमेशा पद्मावती को अपमानित करने में प्रयत्नशील रहती थी, परन्तु एक दिन उसके षड्यन्त्रों का भंडा-फोड़ हो गया[१०]। इस घटना ने उदयन के पद्मावती के प्रति अगाध विश्वास को और भी अधिक गाढ़ा रंग प्रदान किया। 'अजातशत्रु' नाटक में प्रसादजी ने तत्कालीन वाता-

---

१. डा० त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ७५
२. टी० डब्लू० रायस डेविड्स, बुद्धिस्ट, इण्डिया, पृ० २
३. वही, पृ० ३
४. धम्मपद, अठ्ठ कथा, १।३५६
५. वही, १।३५६
६. डा० जगदीश जोशी, प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृ० ९२
७. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० ४६
८. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारत का प्राचीन इतिहास, पृ० २४२
९. वही, पृ० २४३
१०. डिक्सनरी आव पाली प्रापर नेम्स, वाल्यूम २, पृ० ५९६

वरण को ध्यान में रखा है जो पूर्णतः ऐतिहासिक है । नाटक में जिस युग-समाज का चित्रण हुआ है यह हमारे सम्मुख चित्र रूप में प्रस्तुत हो जाता है । इसमें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, एवं धार्मिक वातावरण का पूर्ण परिचय ज्ञात हो जाता है।' 'अजातशत्रु' में उस युगीन वातावरण का चित्र प्रस्तुत किया है जब भारत खण्ड राज्यों में विभक्त था । सारा देश बौद्धधर्म से प्रभावित था । खण्ड राज्यों में वैवाहिक संबंध एवं धार्मिक भावना से ही आपसी सम्बन्ध स्थापित होते थे तथा कभी-कभी आपस में द्वेष की भावना आने पर वे एक दूसरे से लड़ भी बैठते थे । राजनीतिक स्थिति अत्यन्त क्षीण थी । पिता और पुत्र में विद्रोह की भावना प्रायः सभी खण्ड राज्यों में दिखाई देती है । शासक विलासिता के मद में रहा करते थे । पारिवारिक कलह एवं बहुविवाह की भावना प्रबल थी ।

'अजातशत्रु' में कौशल, वत्स, अवन्ती, मगध और काशी पांच बड़े महा जनपदों का उल्लेख हुआ है । बौद्ध-साहित्य के सोलह जनपदों में इनका स्थान आता है । कौशल (आधुनिक अवध प्रान्त) की राजधानी अचिरावती (राप्ती) नदी के तट पर स्थित श्रावेस्ती थी तथा दूसरी राजधानी साकेत (अयोध्या) थी । वत्स की राजधानी कौशाम्बी थी । इस नगरी के अवशेष इलाहाबाद जिले में यमुना के किनारे कोसम गांव में उपलब्ध हुए हैं । अवन्ती आधुनिक मालवा प्रदेश है । इसकी राजधानी उज्जैन थी। मगध की राजधानी गिरिब्रज या राजगृह थी । काशी की राजधानी वाराणसी थी। यह स्थान बौद्धकालीन भारत में सबसे बड़ा था । इनके अतिरिक्त शाक्य जनपद की राजधानी कपिलवस्तु थी[1] ।

प्रसाद ने 'अजातशत्रु' नाटक में ऐतिहासिकता का विशेष रूप से ध्यान रखा है, फिर भी इसमें अनेक घटनाएँ काल्पनिक आ गई हैं । बिम्बसार और वासवी को नाटक के अन्त तक जीवित रखना तथा अजातशत्रु के पुत्र उत्पन्न होने पर पितृ-स्नेह का मूल्य ज्ञात होने पर पिता को बन्दीगृह से छुड़ाने जाने सम्बन्धी घटनाएँ सर्वथा काल्पनिक हैं । प्रसेनजित् द्वारा विरुद्धक को अजातशत्रु और बिम्बसार सम्बन्धी प्रसंग पर अपदस्थ करना भी अनैतिहासिक है । इसके अतिरिक्त उदयन द्वारा अजातशत्रु के विरुद्ध प्रसेनजित की सहायता, विरुद्धक और मल्लिका का प्रेम-प्रसंग, श्यामा और मल्लिका के सम्मिलन सम्बन्धी घटनाएँ भी अनैतिहासिक हैं । 'प्रसाद ने अम्बपाली के गणिका होने एवं उसके द्वारा बुद्ध को आराम समर्पित किये जाने को अपनी घटना का आधार बनाया है । किन्तु प्रसाद की आम्रपाली का सम्बन्ध एक ओर तो मागन्धी से है और दूसरी ओर श्यामा वेश्या से । यह कल्पना ही है, किन्तु

१. सत्यकेतु विद्यालंकार, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० २१८-२१६

आम्रपाली का जो चित्रण नाटक में हुआ है वह सर्वथा बौद्ध ग्रन्थों की आम्रपाली से विपरीत है[1]। प्रसाद इन कल्पित घटनाओं के आधार पर सांसारिक जीवन के उतार-चढ़ाव को प्रस्तुत करते हुए एक सुखी और समृद्धियुक्त परिवार की स्थापना करना चाहते थे। इसीलिये उन्होंने मगध, कौशल और कौशाम्बी के राज-परिवार की घटनाओं को लेकर पारिवारिक समाज का चित्रण किया।

पुरस्कार

'पुरस्कार' कहानी वातावरण और स्थानों की दृष्टि से ही ऐतिहासिक जान पड़ती है। कहानी में राजा द्वारा खेत जोतने की प्रथा को बतलाया गया है, परन्तु इतिहास इस विषय में मौन है। प्रसाद ने इस परम्परा को मधूलिका की कथा से जोड़ा है। इस कहानी में आये हुए पात्र और घटनाएँ काल्पनिक हैं। कहानी में कौशल, मगध, वाराणसी और श्रावस्ती स्थान तत्कालीन है। इनका उल्लेख 'अजातशत्रु' की ऐतिहासिकता में किया गया है। सिन्धु दक्षिण में स्थित जनपद था[2]।

सालवती

'सालवती' कहानी वातावरण और स्थान की दृष्टि से ऐतिहासिक है। कहानी में बज्जिसंघ का उल्लेख हुआ है। बज्जिसंघ का उल्लेख बौद्ध-साहित्य के सोलह जनपदों में आता है। यह एक संघ था, जिसमें आठ गण राज्य सम्मिलित थे। बज्जिसंघ की राजधानी वैशाली थी। बज्जिसंध के अन्तर्गत आठ गण अलग-अलग जनपद थे। बौद्धकाल में यह संघ अत्यन्त समृद्धिशाली था[3]।

प्रसाद ने इस बज्जिसंघ को आधार मान कर कहानी की रचना की है। सदानीरा वैशाली की एक नदी थी। वर्तमान काल में यह विहार में बड़ी गंडक के नाम से प्रसिद्ध है[4]। काशी भी १६ जनपदों में से एक है।

मौर्यकालीन आधार

इस काल पर आधारित साहित्य में गद्य के अन्तर्गत 'चन्द्रगुप्त' नाटक, 'सिकन्दर की शपथ, 'अशोक, खंडहर की लिपि, 'चक्रवर्ती का स्तम्भ' और 'आकाशदीप' कहानी तथा पद्य के अन्तर्गत 'अशोक की चिन्ता' नामक कविता को रख सकते हैं।

चन्द्रगुप्त

'चन्द्रगुप्त' नाटक में प्रसाद ने उन सभी पात्रों को ग्रहण करने की चेष्टा की है

---

१. डा० जगदीश जोशी, प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृ० १००
२. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारत का प्राचीन इतिहास, पृ० २१६
३. वही, पृ० २१८
४. प्रसाद साहित्य कोष, पृ० ४०६

जिनका उल्लेख इतिहास में मिलता है। डा० राधाकुमुद मुकर्जी ने अनेक प्रमाणों के आधार पर चन्द्रगुप्त का जन्म मोरिय नामक क्षत्रिय जाति से बतलाया है। चाणक्य तक्षशिला का स्नातक था[1]। मगध का तत्कालीन शासक धननन्द था। यह नौ नन्दों में सबसे छोटा था[2]। राक्षस, नन्द के अनेक मन्त्रियों में प्रधान था। वह ब्राह्मण था तथा नीति-शास्त्र का पंडित था[3]। शकटार नन्द का प्राचीन मन्त्री था। नन्द ने उसे बन्दी बना कर उसके स्थान पर वररुचि को अपना मन्त्री बनाया[4]। सिकन्दर तक्षशिला में अनेक महात्माओं से मिला था, उनमें से मंडनिस अथवा दंडमिस (दाण्डयायन) का नाम प्रमुख था[5]। आम्भी तक्षशिला का शासक था[6]। झेलम से पूर्व के साम्राज्य का शासक पुरु था[7]। सिकन्दर मक्दूनिया के महत्वाकांक्षी शासक फिलिप का पुत्र था[8]। सिल्यूकस सिकन्दर का सेनापति था, जो सिकन्दर की मृत्यु के उपरान्त सीरिया का शासक बना[9]। सिकन्दर ने सिंध और काबुल की निचली घाटी के बीच की भूमि का क्षत्रप फिलिप को नियुक्त किया था[10]। सिर्विटियस, अराकोसिया का क्षत्रप था[11]। मेगस्थिनीज सिल्यूकस के राजदरवार में राजदूत था[12]। सिल्यूकस की कन्या का नाम ऐथिना (कार्नेलिया) था[13]।

'चन्द्रगुप्त' नाटक में आई हुई ऐतिहासिक घटनाएँ इस प्रकार हैं—चन्द्रगुप्त ने विलासी शासक नन्द की सत्ता को समाप्त करने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न में असफल रहने पर उसे भागना पड़ा। वह भाग कर मगध के पश्चिमोत्तर सीमा की ओर गया[14] जहां उसकी मुलाकात चाणक्य से हुई। चन्द्रगुप्त ने चाणक्य का शिष्यत्व गहण

१. राधाकुमुद मुकर्जी, चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, पृ० ३६
२. वही, पृ० ४२
३. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारत का प्राचीन इतिहास, पृ० ३२६
४. चन्द्रगुप्त, प्राक्कथन, पृ० २३
५. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० १४०
६. उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ११७
७. वही
८. वही, पृ० ११३
९. डा० सप्यकेतु विद्यालंकार, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ३३०
१०. त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १०९
११. मुकर्जी, चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, पृ० ६३
१२. वही, पृ० ६३
१३. जनार्दन भट्ट, बौद्धकालीन भारत (संस्करण १९४३), पृ० १४४
१४. त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ११३

कर ज्ञानोपार्जन किया[1]। सिकन्दर के आक्रमण के समय चन्द्रगुप्त उससे मिला, परन्तु अपनी महत्वाकांक्षा के कारण उसे वहां से भागना पड़ा[2]। उधर पंजाब प्रान्त आपसी विद्रोह का घर था। पुरु के प्रति विद्रोह के लिए तक्षशिलाधीश आम्भी ने सिकन्दर से कारमेनिया पार करते समय संधि की[3]। पुरु और सिकन्दर में आपसी युद्ध हुआ। पुरु की इसमें हार हुई; परन्तु सिकन्दर को उसका लोहा मानना पड़ा[4]। सिकन्दर ने मैत्री स्वरूप पुरु को व्यास और झेलम के दोआब की भूमि दे दी[5]। आम्भी को सिन्धु-नद के दोआब का शासक बनाया[6]। फिलिप्स को सिन्ध और काबुल की निचली घाटी के बीच की भूमि का क्षत्रप बनाया[7]। मालव-क्षुद्रकों के युद्ध में सिकन्दर बुरी तरह घायल हुआ[8]। इस प्रकार सिकन्दर ने ३२५ ई० पूर्व के सितम्बर में देश छोड़ दिया[9]। सिकन्दर साधु महात्माओं का सम्मान करता था। भारत में वह दंडमिस से मिला[10]। इधर चन्द्रगुप्त ने कुशलता-पूर्वक पंचनद पर अधिकार कर लिया। उसने नन्द को मार कर मगध का शासनाधिकार स्वयं हाथ में लिया[11]। चन्द्रगुप्त सिंहासनारूढ़ होते ही दक्षिण-विजय को निकला और विजय प्राप्त की[12]। इधर सिकन्दर की मृत्यु के उपरान्त उसका सेनापति सिल्यूकस सर्वशक्तिमान हो गया। उसके हृदय में पुनः भारत विजय की आकांक्षा जागृत हुई। सैल्यूकस-चन्द्रगुप्त युद्ध में सैल्यूकस की पराजय हुई। उसने संधि-स्वरूप चन्द्रगुप्त को परोपनिसदी (काबुल की घाटी), आर्केसिया (कंदहार), आरिया (हेरात) और गद्रोसिया (बिलोचिस्तान) स्थान तथा अपनी कन्या दी[13]।

प्रसाद ने ऐतिहासिक घटनाओं के अनन्तर ऐतिहासिक वातावरण का निर्वाह करने का प्रयास किया है। उन्होंने तत्कालीन राजनीतिक तथा धार्मिक अवस्था को

---

१. मुकर्जी, चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, पृ० ३६-३७
२. त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ११३
३. त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ६४
४. वही, पृ० १२५
५. उपाध्याय, प्राचीन कारत का इतिहास, पृ० १२५
६. वही, पृ० १२५
७. त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १०६
८. वही, पृ० १०६ ९. वही, पृ० १०८
१०. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० १४०
११. सत्यकेतु विश्रालंकार, भारत का प्राचीन इतिहास, पृ० ३२४
१२. दि एज आफ इम्पीरियल यूनिट, पृ० ६१
१३. डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ३३६

चित्रित किया है । उस समय उत्तरापथ के गणराज्य आपसी द्वेष से जर्जरित थे । शासकों में वैमनस्य की भावना घर कर गई थी । अम्भीक जैसे शासक विदेशी आक्रमण में धन-लोलुप होकर सहायता कर रहे थे । उधर मगध शासक की विलासिता के परिणामस्वरूप जनता उसके अत्याचारों से पीड़ित थी । ऐसी अवस्था में चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने देश की अवस्था को देखते हुए उसे एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया । प्रसाद ने इस नाटक में राजनीतिक तथा धार्मिक वातावरण के अतिरिक्त सामाजिक अवस्था को भी चित्रित किया गया है । सामाजिक दृष्टि में नारी का स्थान ऊँचा बतलाया गया है । समाज में ब्राह्मण का स्थान सर्वोपरि था । उसकी सलाह सर्वमान्य होती थी ।

नाटक में आये हुए स्थानों में मगध[१], गांधार[२], पंचनद[३], बंग[४], तक्षशिला[५], पाटलीपुत्र[६], पिप्पलीकानन[७], उद्भाण्ड[८], वाल्हीक[९], कपिशा[१०], स्वर्णगिरि[११], हिरात[१२], परसियोलिस[१३], सीरिया[१४] आदि ऐतिहासिक स्थान आये हैं ।

प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में चन्द्रगुप्त को मगध सेनापति का पुत्र होना, आम्भीक को युवराज बनाना, व्याध वाली घटना से सिल्यूकस-चन्द्रगुप्त परिचय, दंडमिस के आश्रम में सिकन्दर का चन्द्रगुप्त से परिचय, सिकन्दर के मालव आक्रमण पर सिंहरण द्वारा मालवों का नेतृत्व करना, शकटार द्वारा नन्द की हत्या, चाणक्य द्वारा

---

१. स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ४५
२. सत्यकेतु विद्यालंकार, चाणक्य, पृ० १४
३. डा० चौधरी, पौलिटीकल हिस्ट्री आफ ऐंसिएंट इण्डिया, पृ० १२०-१२१
४. स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० १७१
५. (क) स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ६५
 (ख) चन्द्रगुप्त, मू० पृ० ४३
६. (क) त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ११९
 (ख) चन्द्रगुप्त, भूमिका, पृ० ४३
७. कर्निघम, पिप्पलीकानन
८. अग्रवाल, इण्डिया एज नोन टु माणिनि, पृ० २४५
९. उपाध्याय, इण्डिया इन कालिदास, पृ० २१
१०. अग्रवाल, इण्डिया एज नोन टु पाणिनि पृ०२४५
११. स्मिथ, अर्ली हिस्टी आफ इण्डिया पृ० १५६-१५७
१२. स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० १५८
१३. एंशिएंट इण्डिया, पृ० ३०
१४. डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ३३०

सिकन्दर को विदा करना, एथिना-चन्द्रगुप्त का पूर्व परिचय, सिल्यूकस-चन्द्रगुप्त की मित्रता आदि घटनाओं में ऐतिहासिकता का निर्वाह करते हुए कुछ परिवर्तन के साथ चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त कुछ घटनाएं ऐसी भी हैं, जो कल्पित हैं। ये सिंहरण, मौर्य सेनापति, देवदत्त, नागदत्त, गांधार नरेश, अलका, सुवासिनी, कल्याणी, नीला, लीला, मालविका, मौर्यपत्नी, एलिस आदि पात्रों द्वारा चित्रित हुई हैं। चन्द्रगुप्त-कल्याणी, चन्द्रगुप्त-कार्नेलिया, चन्द्रगुप्त-मालविका, चाणक्य-सुवासिनी, राक्षस-सुवासिनी, पर्वतेश्वर-कल्याणी, कल्याणी-पर्वतेश्वर सम्बन्धी प्रेम-प्रसंग सर्वथा कल्पित हैं। परन्तु कल्याणी द्वारा पर्वतेश्वर की हत्या, तथा स्वयं की आत्महत्या, मालविका की हत्या, राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त के वध का षड्यंत्र, शकटार द्वारा नन्द का वध, राक्षस-चाणक्य-संघर्ष, चाणक्य की विजय, राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त को सिंहासनारूढ़ करना, चाणक्य द्वारा राक्षस को चन्द्रगुप्त का आमात्य बनाना तथा मगध के विद्रोह में राक्षण-मुद्रा प्रसंग सम्बन्धी घटनाओं में मौलिकता अधिक है। प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' में ऐतिहासिक घटनाओं के साथ-साथ नाटकीयता लाने के लिए ऐतिहासिक घटनाओं को अनेक स्थलों पर परिवर्तित कर दिया है। अनेक प्रसंग ऐसे आए हैं, जो सर्वथा कल्पित हैं। प्रसाद इस नाटक के माध्यम से एक प्रेरणा देना चाहते हैं। उन्होंने नाटक में देश-प्रेम और राज्य के प्रति कर्त्तव्य की भावना को प्रदर्शित किया है। अलका और कल्याणी जैसे नारी- पात्रों को ला कर नारी के शौर्य और पराक्रम को चित्रित किया है। इस नाटक में सर्वत्र देश के प्रति एकता की भावना की अभिव्यक्ति हुई है। तक्षशिला के गुरुकुल में चाणक्य अपने शिष्यों को कहता है—'तुम मालव हो और यह मागध, यही तुम्हारे मान का अवसान है न? परन्तु आत्म-सम्मान इतने ही से सन्तुष्ट नहीं होगा। मालव और मागध को भूल कर जब तुम आर्यावर्त का नाम लोगे, तभी वह मिलेगा[1]। इसी प्रकार सिंहरण एकता की भावना को एक स्थल पर व्यक्त करते हुए कहता है—'परन्तु मेरा देश मालव ही नही, गाँधार भी है। यहीं क्या, समग्र आर्यावर्त है[2]। प्रसाद ने जिस समय इस नाटक की रचना की उस समय कांग्रेस अंग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध कड़ा मुकाबला कर रही थी। वह लोगों को परतन्त्रता की जंजीरों से जकड़े हुए भारत को पुनः स्वतंत्रता प्राप्त कराने में प्रयत्नशील थी। प्रसाद ने इस नाटक में चन्द्रगुप्त सिंहरण, अलका और कल्याणी जैसे पात्रों से देश-सेवी भावना को व्यक्त किया। जनता को प्रोत्साहित करने के लिए प्रसाद ने नाटक में तिरंगे झंडे को लिए हुए देश-सेविकाओं से राष्ट्रीय-गान भी गवाये हैं। प्रसाद को अपने देश से मोह था, इसी कारण विदेशी पात्रों से भारत महिमा का गुणगान कराया है। साथ ही सिकन्दर और सैल्यूकस

---

१. चन्द्रगुप्त, पृ० ५९ २. वही, पृ० ६०

जैसे अत्याचारी शासक को अपने अधिकार में आने पर भी जीवित छोड़ दिया है इसमें उन्होंने भारतीय कृतज्ञता को चित्रित किया है ।

सिकन्दर की शपथ

'सिकन्दर की शपथ[1]' कथा में सिकन्दर एक ऐतिहासिक पात्र है । जिसने भारत-विजय यात्रा में नीसा के बाद अस्सकनी (Assakani) पर आक्रमण किया है। मालकन्द के समीप ही मस्सग (मशकावती) एक अजेय दुर्ग था । यह दुर्ग प्राकृतिक चट्टानों से घिरा हुआ था; इसकी रक्षा ऊँची-चौड़ी प्राचीरें और एक गहरी खाई करती था[2] । सिकन्दर के एक वाण से उस दुर्ग का स्वामी अश्वकर्ण (Assakrnos) धराशायी हुआ[3] । इसके बाद सिकन्दर ने उस दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया । उस दुर्ग-स्वामी की पत्नी क्लियोफिस (Kleophis) ने स्वयं को सिकन्दर के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया । सिकन्दर से उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ[4] । सिकन्दर से मस्सग दुर्ग में, अश्वकों की ओर से, ७,००० आयुध-जीवी योद्धा लड़े थे । दुर्ग के जीत लेने पर सिकन्दर की उनसे संधि हुई जिसमें आयुध-जीवी अक्षत को अपने देश चले जाने को कहा गया । परन्तु वे अपने दुर्ग से कुछ ही दूर चले थे कि सिकन्दर ने उन पर अचानक आक्रमण कर दिया । उसने आक्रमण कर अपने संधि-नियम को तोड़ा । इस युद्ध में पुरुष और स्त्रियों ने बड़ी वीरता का परिचय दिया । जब तक उनका एक भी व्यक्ति जीवित रहा, तब तक वे बराबर युद्ध करते रहे[5] ।' इस कहानी में युद्धकालीन वातावरण का चित्र प्रस्तुत हुआ है । भारतीय सैनिकों के शौर्य और पराक्रम का परिचय मिलता है—इतिहास इस बात का साक्षी है कि उन्होंने प्राण-पण से युद्ध किया और जब तक कि उनमें एक भी बचा, बराबर लड़ता रहा । क्यों न हो, जब उनकी प्यारी स्त्रियां उन्हें अस्त्रहीन देख कर तलवार देती थीं और हंसती हुई अपने प्यारे पतियों की युद्ध-क्रिया देखती थीं । रण-चण्डियां भी अकर्मण्य न रहीं, उन्होंने जीवन देकर अपना धर्म रखा । ग्रीकों की तलवारों ने उनके बच्चों तक को भी न रोने दिया; क्योंकि पिशाच सैनिकों के हाथ सभी मारे गये[6] ।

'सिकन्दर की शपथ' नामक कहानी में प्रसाद ने इस ऐतिहासिक घटना को देकर प्राचीन भारत की गौरव गाथा को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है । इस

---

१. प्रसाद, छाया, पृ० ५७-६२
२. डा० उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ११५
३. मैक्क्रण्डल, इन्वेन्सन आफ अलेक्सजेन्डर, पृ० ६८
४. त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ९२-९३
५. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारत का प्राचीन इतिहास, पृ० २९७
६. प्रसाद, छाया, पृ० ६२

ऐतिहासिक घटना को कहानी के रूप में परिवर्तित करने के लिए उन्होंने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। सिकन्दर का दुर्ग सरदार को मार कर उसी के वेश में सरदार-पत्नी के पास जाना, मस्सग दुर्ग के स्थान पर दुर्ग का नाम मिंगलोर लिखना आदि घटनाएँ कल्पित हैं। इस कहानी में प्रसाद का प्रमुख उद्देश्य भारतीय सैनिकों के शौर्य और पराक्रम का परिचय देना है।

अशोक

'अशोक' कहानी मौर्यकाल से सम्बन्ध रखती है। इसमें आये हुए पात्रों में अशोक, तिष्यरक्षिता, कुनाल (कुणाल) धर्मरक्षिता आदि ऐतिहासिक हैं। अशोक बिन्दुसार का उत्तराधिकारी पुत्र था। बिन्दुसार के उपरान्त वह राजगद्दी पर बैठा[1]। उसकी पांचवीं पत्नी का नाम तिष्यरक्षिता था। कुणाल अशोक की चौथी पत्नी पद्मावती से उत्पन्न पुत्र था। वीताशोक अशोक का भाई था[2]। इस कहानी में दो घटनाएँ हमारे सम्मुख आती है। तिष्यरक्षिता और अशोक-पुत्र कुणाल की कथा तथा अशोक के भ्रातृ-वध की कथा। इसमें पहली कथा का आधार ऐतिहासिक है। अशोक ने वृद्धावस्था में उज्जयनी के श्रेष्ठी की कन्या तिष्यरक्षिता से विवाह किया था। वह युवक कुणाल पर मोहित हो गई। एक बार उसने एकान्त में अपने प्रेम का प्रदर्शन कुणाल के सामने किया। कुणाल उसे अपनी माता समझता था। अतः उसने तिष्यरक्षिता के प्रेम की परवाह नहीं की। तिष्यरक्षिता प्रेम-भावना द्वेष में परिवर्तित हो गई। एक दिन तिष्यरक्षिता के प्रतिशोध की भावना से अशोक की बीमारी के समय एक कपट-लेख तैयार किया जिस पर अशोक की राजमुद्रा लगा दी। यह लेख तक्षशिला के महाआमात्यों के नाम था। कुणाल को जब यह आज्ञा प्राप्त हुई तो उसने बधिकों को बुलवा कर अपनी आंखें बाहर निकलवा दीं तथा तक्षशिला के राज्य-पद को भी उस आदेश के अनुसार छोड़ कर पाटलिपुत्र चला गया। अशोक को जब यह घटना ज्ञात हुई तो वह तिष्यरक्षिता और उसके षड्यन्त्रकारियों से अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उन्हें कठोर दण्ड दिया[3]। अशोक बौद्ध धर्म ग्रहण करने से पहिले हिंसा में विश्वास रखता था; परन्तु धर्म परिवर्तन के बाद वह अत्यंत अहिंसावादी हो गया था। वह अन्य धर्मों के प्रति भी अत्यन्त सहिष्णु हो गया था। उसके हृदय में सभी धर्मों के प्रति समान आदर था[4]। 'अशोक' कहानी में आई हुई दूसरी घटना का आधार एक किंवदन्ती है। उसके अनुसार वीताशोक पहिले जैन था, बाद में अशोक के कहने पर बौद्ध हुआ। ब्राह्मणों ने

---

१. त्रिपाठी, प्राचीन प्रारत का इतिहास, पृ० १२४
२. उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १६१
३. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारत का प्राचीन इतिहास, पृ० ३५६-५७
४. वही, पृ० ३५६

पौण्ड्रवर्द्धन और पाटलिपुत्र की बौद्ध मूर्ति को नष्ट कर दिया। महाराज ने ब्रह्म-हत्या करने वालों को पुरस्कृत करने की घोषणा की। वीताशोक को भी कुछ लोगों ने ब्राह्मण समझ कर मार डाला[१]। इस प्रकार यह घटना एक अनुमान मात्र ही है। इस कथा में सामाजिक और धार्मिक वातावरण दिखाई देता है। एक ओर तो महारानी तिष्यरक्षिता की घृणित प्रेम वासना का परिचय मिलता है, दूसरी ओर कुणाल के आदर्श को चित्रित किया है। सारी कहानी में बौद्ध धर्म की महता को चित्रित किया गया है। पौण्ड्रवर्धन, पाटलिपुत्र और तक्षशिला स्थान ऐतिहासिक हैं।

प्रसाद ने इस कहानी में अशोक द्वारा जैनियों के प्रति विद्वेष की भावना तथा वीताशोक की कथा को जोड़ने में कल्पना का सहारा लिया है। इसके साथ-साथ 'अशोक' में कुणाल को नेत्रहीन नहीं किया जाता। प्रसाद का उद्देश्य एक ओर कुणाल के आदर्श चरित्र को प्रस्तुत करना था तथा दूसरी ओर तिष्यरक्षिता की हीन भावना का परिचय देते हुए मार्ग-दर्शन कराना रहा है।

'खण्डहर की लिपि[२],' 'चक्रवर्ती का स्त्रम्भ[३], 'आकाशदीप[४], आदि कहानियों का वातावरण मात्र मौर्यकाल से सम्बन्धित है। 'खण्डहर की लिपि' में प्राचीन इतिहास की मोहिकता को प्रदर्शित किया है। युवक को उस नग्न स्तूप से 'आओ' की आवाज आमन्त्रित कर रही थी।' युवक सचेत हो कर उठने को था कि वह कई सौ बरस की पुरानी छत धम से गिरी[५]।' 'खण्डहर की लिपि' और 'आकाशदीप' में उस भारतीय सभ्यता की विकसित अवस्था को बतलाया गया है जब भारतीय-सभ्यता सिंहल, जावा, सुमात्रा आदि देशों में फैली हुई थी। 'चक्रवर्ती का स्तम्भ' की पीठिका मौर्यकालीन है। परन्तु इसकी कथा मुसलमानों के आक्रमणों से सम्बन्धित है। इसमें चक्रवर्ती अशोक के एक स्तम्भ का वर्णन किया गया है जिसमें शील और धर्म की आभा खुदी हुई है।

अशोक की चिन्ता

अशोक ने अपने अभिषेक के नवें या तेरहवें वर्ष में कलिंग पर विजय प्राप्त

---

१. केदारनाथ शुक्ल, प्रसाद की कहानियाँ, पृ० २५-२६
२. प्रतिध्वनि, पृ० ५६-५८
३. वही, पृ० ६४-६६
४. आकाशदीप, पृ० ६-२१
५. प्रतिध्वनि, खण्डहर की लिपि, पृ० ५८

की। वह मौर्य शासन का एक अभिन्न अंग हो गया[1]। इस कलिंग विजय में डेढ़ लाख व्यक्ति कैद हुए, एक लाख व्यक्ति मारे गये तथा कई बार अनगिणत (अगणित) व्यक्ति अकाल में मारे गये[2]। इस प्रकार 'कलिंग-युद्ध' की नग्न पैशाचिक क्रूरता ने उनके (अशोक) हृदय को आर्त कर दिया। उनका हृदय कांच की नाईं तिड़क उठा। हाथों का खड्ग दूर जा गिरा, आंखों में आंसू छलक आये, हृदय में करुणा क्रन्दन करने लगी, सम्राट दुःख से व्याकुल हो उठे[3]। इस विजय के परिणाम स्वरूप अशोक की मानसिक वृत्ति बदल गई। उन्होंने शस्त्र विजय के स्थान पर धर्म विजय का प्रयत्न प्रारम्भ किया[4]।

अशोक ने कलिंग विजय के उपरान्त अपने शासन का रवैया बदल दिया। उसने जनता के हृदय पर शासन करना उचित समझा। 'कलिंग प्रज्ञायन' में उसके अन्तर्मानस की झांकी मिलती है। उसमें कहा गया है—'सब लोग मेरी सन्तान हैं और जैसे मैं अपनी सन्तानों के लिए यह चाहता हूं कि उन्हें इस लोक और परलोक में सब प्रकार से क्षेम और सुख मिले ठीक वैसे ही में सारी प्रजा के लिए चाहता हूं[5]।

अशोक ने साम्राज्य के विस्तार से लिए कलिंग युद्ध के वाद कभी शस्त्र ग्रहण

---

१. In the thirteenth year of his reigr, or in the ninth, as reckoned from the Coronation, Ashoka embarked upon the one aggressive war of hislife of which a record exists, and rounped off his dominiens by the Congwest of the kingdom of Kalinga, the strip of territory extending along the coast of the Bay of Bengal form the Mahanadi to the Godavari. The Campaign wes wholly Successful, and Kalinga became an intcgral Part of the Maurya dominions.'

—Smith, the Early Histry of India, 4th Ed. (1924, Page 164.)

२. वही, पृ० १६५

३. प्रो० भगवती प्रसाद पांथरी, अशोक, प्रका० साहित्य केन्द्र, ज्ञानवापी, वाराणसी, तृतीय संस्करण (१९६१), पृ० १०२

४. सत्यकेतु विद्यालंकार, डी० लिट्, भारत का प्राचीन इतिहास, द्वितीय संस्करण (१९६०), प्रका० सरस्वती सदन, मसूरी, पृ० ३३८

५. डी० आर० भंडारकर, अशोक (हिन्दी अनुबाद) संस्क० (१९६०), प्रका० एस० चन्द एण्ड कं०, लखनऊ, पृ० ५६ से उद्धरित।

न करने की प्रतिज्ञा की[1]। अशोक को कलिंग युद्ध से ही धर्म परिवर्तन की प्रेरणा मिली[2]।' उसने राज्याभिषेक के आठवें वर्ष में बौद्धमत ग्रहण किया। उसके कुछ ही समय बाद धर्म प्रचार की अधिकता के कारण उसे आश्चर्य होने लगा। धर्म प्रचार में उसे अटूट उत्साह और व्याकुलता थी[3]। 'जिस धर्म का रूप उसने संसार के सामने रखा वह प्रमाणतः सारे धर्मों का सार है। जीवन को अपेक्षाकृत सुखी और पावन बनाने के विचार से उसने कुछ आचरणों के विधान किये हैं। उसने माता-पिता, गुरु और वृद्धों की सुश्रूषा और आदर पर अत्यधिक जोर दिया है। ब्राह्मणों, श्रमणों, सम्बन्धियों, मित्रों, वृद्धों और औरतों के प्रति दान तथा उचित व्यवहार (साम्पत्तिपत्ति) की उसने सराहना की है[4]।' परन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उसने अपने शिलालेखों में बौद्धधर्म के तात्विक 'चार आर्य सत्यों' तथा 'अष्टांगिक मार्ग और निव्वान (निर्वाण) के लक्ष्य का उल्लेख नहीं किया[5]।' उसमें सदाचार और जीवन को ऊंचा करने के सामान्य नियमों[6] का उल्लेख हुआ है।

'अशोक की चिन्ता' में कथानक और ऐतिहासिक आधार देखने से विदित होता है कि कवि ने इस कविता में कलिंग-युद्ध के भीषण रक्तपात को देखकर अशोक के हृदय में जो परिवर्तन हुआ है, उसी का चित्र प्रस्तुत किया है। यह ऐतिहासिक सत्य है। अशोक कलिंग युद्ध के उपरान्त संसार की निस्सारता का अनुभव करने लगा था। वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था। उसके प्रसार के लिये उसने कार्य भी किया था, परन्तु उसने अपने उपदेशों में विभिन्न धर्मों का समन्वय किया। प्रसाद इस कविता में बौद्ध-दर्शन के क्षणिकवाद की और झुक गये हैं। यह उनकी मौलिकता का प्रतीक है। अशोक कलिंग-विजय से इतना नीरस नहीं हो गया था कि सारा संसार उसे नश्वर प्रतीत हो। इसके अतिरिक्त प्रसाद ने इस कविता में अशोक के शासन सम्बन्धी विचार तथा उसके कर्त्तव्य पर जो संकेत दिये हैं, वह ऐतिहासिक हैं। प्रसाद ने इस कविता में अनेक उपमाओं के साथ कल्पनामयी तूलिका से रंग भरे हैं जो उनकी मोलिकता के द्योतक हैं।

---

१. डा० रमाशंकर त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, प्रका० मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, तृतीय संस्करण (१९६२), पृ० १२६
२. भण्डारकर, अशोक (हिन्दी अनुवाद), प्रका० एच० चन्द एण्ड कं०, संस्करण १९६०, पृ० ६९
३. वही, पृ० ७५-७६ तथा दे० दि ऐज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ७४
४. डा० रमाशंकर त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १२७
५. वही, पृ० १२७
६. सत्यकेतु विद्यालंकार, डी० लिट्०, भारत का प्राचीन इतिहास, पृ० ३५५

शुंग वंश एवं कल्हण कालीन आधार

प्रसाद ने शुंग-वंश तथा कल्हण की राजतरंगिणी को आधार मानकर क्रमशः 'इरावती' उपन्यास तथा 'विशाख' नाटक की रचना की।

इरावती

इरावती उपन्यास का ऐतिहासिक अधार मौर्यवंश का पतन और शुंग-वंश का प्रादुर्भाव है। इसमें आये हुए पात्रों में वृहस्पतिमित्र (वहसतिमित्र), पुष्यमित्र, अग्निमित्र और खारवेल ऐतिहासिक पात्र हैं। वहसतिमित्र की ऐतिहासिकता का पता हाथी गुम्फा लेख में लगता है। इतिहास में इसी का दूसरा नाम शालिशूक भी मिलता है[१]। पुष्यमित्र भारद्वाज गोत्र से उत्पन्न मौर्यवंश के अंतिम शासक वृहद्रथ का सेनापति था[२]। अग्निमित्र पुष्यमित्र का पुत्र था[३]। खारवेल चेदि कुल से उत्पन्न कलिंग का शासक था[४]।

उपन्यास में आई हुई ऐतिहासिक घटनाओं में कलिंग राज खारवेल ने मगध पर दो बार आक्रमण किया। उस आक्रमण में वह जैन तीर्थंकर की मूर्ति जो मगध का राजा नन्द पूर्वकाल में मगध ले गया था, उठा लाता है[५]। परन्तु प्रसाद ने जिस मूर्ति का संकेत किया है उस मूर्ति के मगध लाने की बात अशोक द्वारा बतलाई है[६]। परन्तु उपन्यास इस घटना से पूर्व ही समाप्त (अधूरा) हो जाता है। अतः घटना में पूर्ण ऐतिहासिकता नहीं दिखाई देती।

उपन्यास का वातावरण ही ऐतिहासिक दिखाई देता है। इसमें मौर्यकालीन राजनीतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण हुआ है। 'इरावती' में मौर्यकालीन साम्राज्य की उस पतनोन्मुख शासन व्यवस्था को बतलाया गया है, जो मौर्यों की आन्तरिक दुर्बलता के कारण नष्ट हो गयी है। धार्मिक क्षेत्र में बौद्ध-धर्म और ब्राह्मण-धर्म का चित्र प्रस्तुत किया गया है। बौद्ध-धर्म अपने पतन की चरम अवस्था व्यतीत कर रहा था। ऐसी स्थिति में ब्राह्मणों और वौद्धों में आपसी संघर्ष चल पड़े। उपन्यासकार ने इसी मौर्य साम्राज्य के पतन और शुंग-वंश के प्रादुर्भाव को बतलाने का प्रयास किया है।

प्रसाद इस उपन्यास में पतनोन्मुख बौद्ध-धर्म और मौर्य-साम्राज्य को समाप्त

---

१. डा० भगवतशरण उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १७८

२. डा० त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १४०

३. वही, पृ० १४३

४. डा० उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १७७

५. वही, पृ० १७८

६. इरावती, पृ० २६

कर पुष्यमित्र के ब्राह्मण-धर्म और शुंग-वंश की प्रतिष्ठा के ऐतिहासिक आधार को ग्रहण करना चाहते थे। वह इस आधार को अपनी कल्पनामयी तूलिका से चित्रित कर रहे थे, परन्तु बीच ही में उन्हें काल के झकोरे ने समाप्त कर दिया। यह वृत्ति अधूरी रह गई। यदि यह उपन्यास पूर्ण ही जाता तो यह हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में श्रेष्ठ माना जाता।

विशाख

'विशाख' नाटक का ऐतिहासिक आधार कल्हण की राजतरंगिणी है। 'संस्कृत-साहित्य में इतिहास नाम से लब्धप्रतिष्ठ केवल राजतरंगिणी नामक ग्रंथ ही उपलब्ध होता है[1]।' प्रसादजी ने नाटक के परिचय में प्रेमानन्द और महापिंगल आदि पात्रों को कल्पित बतलाया है; परन्तु राजतरंगिणी में इस कथा को देखने पर ज्ञात होता है कि नर, बौद्ध-श्रमण (सत्यशील), सुश्रवा, ब्राह्मण (विशाख), इरावती, चन्द्रलेखा, रमण्या (रमणी) आदि ऐतिहासिक पात्र हैं। तरला और रानी का उल्लेख राज-तरंगिणी में उपलब्ध नहीं होता। नाटक का ऐतिहासिक कथानक विभीषण द्वितीय के पश्चात् उसके पुत्र नर के राज्याधिकार प्राप्त करने पर होता है[2]। राजा नर ने विलासिता के मद में जनता पर अत्याचार करना प्रारम्भ किया। एक बौद्ध भिक्षु ने उसकी स्त्री का अपहरण किया और इसके फलस्वरूप राजा ने क्रुध होकर सैकड़ों बौद्ध-बिहारों को जलवा दिया तथा उन विहारों से दान स्वरूप दिये गये गांवों को भी छीन लिया[3]। वितस्ता नदी के किनारे एक ब्राह्मण सूर्यातप से पीड़ित अवस्था में अपनी भूख और प्यास मिटाने के लिए बैठा। इसीं स्थान पर राजा नर द्वारा बनवाई गई एक नगरी थी, जहाँ सुश्रवा नाग निवास करता था। उस स्थान पर ब्राह्मण ने सुश्रवा की दो कन्याओं—इरावती और चन्द्रलेखा को सेम की फली खाते देखा[4]। ब्राह्मण ने उत्सुकतावश उनकी दरिद्रावस्था की कथा सुननी चाही; परन्तु उन नाग कन्याओं ने इसका कारण अपने पिता से ही पूछने को कहा जो तक्षक यात्रा में जेष्ठ कृष्ण पक्ष द्वादशी को यहाँ आयेंगे[5]। इस उत्सव में सुश्रवा ने ब्राह्मण को अपनी दरिद्रता का कारण हरे-भरे खेत की रखवाली करने वाले तपस्वी को बतलाया[6]। ब्राह्मण ने चतुरता से उस तपस्वी को नवीन अन्न खिला दिया। इससे नागों को अन्न मिलने लगा[7]। सुश्रवा ने अपनी पुत्री चन्द्रलेखा का विवाह उस ब्राह्मण से कर दिया[8]। राजा

१. विशाख, परिचय, पृ० ५
२. राजतरंगिणी, १।१९६।९७
३. वही, १।१९८-२००
४. वही, १।२००-२०४, २११ तथा २१८
५. वही, १।२१९-२२०
६. वही, १।२३४
७. वही, १।२३९
८. वही, १।२४२-४३

नूर को चन्द्रलेखा की सुन्दरता का पता लगा तो उसने चन्द्रलेखा को प्राप्त करने के अनेक उपक्रम किये[1]। जब ब्राह्मण को उसके षड्यंत्रों का पता लगा तो वह चन्द्रलेखा के साथ अपनी रक्षा के लिये नागराज के पास पहुंचा और उसे सारा वृतान्त सुनाया[2]। इसके प्रतिकार में सुश्रवा और उसकी बहन रमण्या ने नरपुर पर उत्पात मचाया[3]। इसमें राजा नर मारा गया और उसका पुत्र जो इस उत्पात में बच गया था, शासक बना[4]। नाटक में राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक वातावरण का दिग्दर्शन हुआ है। राज्य की राजतन्त्रीय प्रणाली में राजा के अधिकारों को बतलाया गया है, परन्तु राजा द्वारा प्रजा पर अत्याचार करने पर प्रजा को उसके प्रति विद्रोह करने एवं उसे हटाने का अधिकार भी दिग्दर्शित किया है। इसी अवस्था को राजा नर के शासन-काल में बतलाया गया है। बौद्ध धर्म की व्यवस्था में बौद्ध श्रमण का प्रभाव बतलाया है। इसी बौद्ध-युगीन वातावरण में नाग-जाति की दरिद्रावस्था को बतलाते हुए आर्थिक अवस्था की ओर संकेत किया है। कथा से सम्बन्धित कानीर बिहार तथा वितस्ता ऐतिहासिक स्थान हैं।

प्रसादजी ने इस ऐतिहासिक आधार को ग्रहण करने में मौलिकता के साथ ऐतिहासिक कथानक में कुछ परिवर्तन भी किये हैं। इस नाटक में प्रसाद ने राजा नर को अन्त में नहीं मारा है। इसके अतिरिक्त बौद्धों के अत्याचार और बौद्ध-बिहार को नष्ट करने के मध्य में चन्द्रलेखा को रखा गया है। डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने नर को बचाने का एकमात्र कारण नाटकीय भव्यता और समष्टि प्रभाव बतलाया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने चन्द्रलेखा और ब्राह्मण के साथ राजा के सम्बन्ध में घनिष्ठता (सुसम्बद्धता) को दिखाने के लिये घटनाओं को आगे पीछे कर दिया है[5]। प्रसाद ने इस नाटक में ऐतिहासिकता के निर्वाह के साथ-साथ नाटक के रचनाकाल की परिस्थितियों को प्रस्तुत करने में महात्मा गांधी को उन्होंने प्रेमानन्द के रूप में उपस्थित किया है[6]। प्रसाद का उद्देश्य इस ऐतिहासिक आधार के माध्यम से तत्कालीन शासक की विलासिता एवं ढोंगी साधुओं के बिहार को चित्रित करते हुए प्राचीन आदर्श को नीचा दिखाना है। इससे जनता में जागृति की भावना को प्रदर्शित करने का प्रयास हुआ है।

---

१. राजतरंगिणी, १।२५०-५४ २. वही, १।२५७-५८

३. वही, १।१६४

४. राजतरंगिणी, १।२७३-७६

५. प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २१५

६. विशाख, पृ० ८९-९२

गुप्तकालीन आधार

प्रसाद ने अपने साहित्य में इस काल को आधार मान कर 'ध्रुवस्वामिनी' तथा 'स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य' नाटक की रचना की।

ध्रुवस्वामिनी

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में ध्रुवस्वामिनी, रामगुप्त, चन्द्रगुप्त आदि ऐतिहासिक पात्र आये हैं। ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त की पत्नी थी। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त के अनेक पुत्रों में रामगुप्त और चन्द्रगुप्त का नाम आता है। समुद्रगुप्त के उपरान्त रामगुप्त सिंहासनारूढ़ हुआ[1]।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में आई हुई घटनाओं के अनेक प्रमाण देवीचन्द्रगुप्तम्, नाट्य-दर्पण, हर्षचरित, हर्षचरित पर शंकराचार्य की टीका, काव्य-मीमांसा, श्रृंगार-प्रकाश, दक्षिणा के राजा राष्ट्रकूट वंशज अमोघवर्ष प्रथम के सज्जन-पत्र-लेख और मुजमल्लउत्-तवारीख में मिलते हैं[2]। इन प्रमाणों के आधार पर रामगुप्त एक निर्बल, कामुक और नपुंसक शासक था। उसकी निर्बलता का फायदा उठाकर शकों ने गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण किया। एक पहाड़ी दुर्ग में गुप्त सेनाओं को शकराज ने घेर लिया। उसने संधि स्वरूप ध्रुवदेवी की याचना की[3]। रामगुप्त ने राज्य को सुरक्षित रखने के लिये संधि स्वरूप अपनी पत्नी ध्रुवदेवी को शकराज को सर्मपित कर दिया[4]। कुमार चन्द्रगुप्त अपनी कुल मर्यादा के लिये ऐसा न देख सका। उसने ध्रुवदेवी का वेष धारण कर शत्रुओं के शिविर में जाकर शकराज की हत्या की[5]। इसी प्रकार की

---

१. डा० रमाशंकर त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १८९

२. डा० उपाध्याय, गुप्त-साम्राज्य का इतिहास, प्रथम खण्ड, पृ० ६७-७१

३. 'शकनामाचार्य : शकाधिपति : चन्द्रगुप्त भ्रातृजायां ध्रुवदेवीं प्रार्थयमान:'
टीकाकार शंकरार्य, हर्षचरित की टीका, षष्ठ उच्छवास, सं० ए० ए० फूहरर, बम्बई, संस्क० १९०९, पृ० २७०

४. 'दत्वा रुद्धगतिः खसाघिपतये देवीं ध्रुवस्वामिनीं।
यस्मात्खण्डितसाहसो निववृते श्रीशर्मगुप्तो नृपः।
तस्मिन्नेव हिमालये गुरुगुहाकोणक्वणत्किन्नरे।
गीयस्ते तव कार्त्तिकेयनगरस्त्रीणां गणैः कीर्त्तयः॥'
काव्यमीमाँसा, अनु० पण्डित केदारनाथ शर्मा सारस्वत,
प्रका० विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, प्रथम संस्करण (१९५४), पृ० ११६

५. 'शकानामाचार्यः शकाधिपतिः चन्द्रगुप्तभ्रातृ जायां ध्रुवदेवीं प्रार्थयमानः
चन्द्रगुप्तेन ध्रुवदेवीवेषधारिणा स्त्रीवेशजन परिवृतेन व्यापादितः।'
—हर्ष चरित की टीका, टीकाकार शंकरार्य, षष्ठ उच्छवास, पृ० २७०

घटना का उल्लेख मुजमलउत् तवारीख में भी मिलता है। जिसका आधार देवीचन्द्र-गुप्तम् हो सकता है[1]।

प्रसाद ने इस नाटक में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक वातावरण का निर्वाह किया है। सामाजिक दृष्टि से प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी की रामगुप्त से मोक्ष तथा चन्द्रगुप्त के साथ विधवा-विवाह करा कर नारी आदर्श की स्थापना की है। मनुस्मृति में भी देवर से विवाह की चर्चा की गई है[2]। राजनीतिक दृष्टि से शासक की निर्बलता दिखाकर शक आक्रमण की चर्चा की है। धार्मिक दृष्टि से नारी समस्या के समाधान में पुरोहित की बात को सबने माना है। ऐतिहासिक स्थानों में मगध का नाम आया है। रामगुप्त मगध का शासक था। जिसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी।

प्रसाद ने इस ऐतिहासिक आधार को ग्रहण करके उसमें कुछ परिवर्तन किये हैं। इससे नाटक में कुछ मौलिकता आ गई है। नाटक में ध्रुवस्वामिनी का चन्द्रगुप्त के प्रति मोह, रामगुप्त द्वारा ध्रुवस्वामिनी की चन्द्रगुप्त के प्रति अनुरक्ति देख कर उसकी निगरानी के लिये खड्गधारिणी की नियुक्ति, चन्द्रगुप्त का राज-चक्र द्वारा विद्रोही होना, शकों का गिरिपथ को रोकना, रामगुप्त द्वारा चन्द्रगुप्त को ध्रुवस्वामिनी के साथ शक-शिविर में जाने की आज्ञा, शकराज और कोमा का प्रसंग, कोमा और महिरदेव का ध्रुवस्वामिनी के पास शकराज का शव लेने पहुंचना, पुरोहित के सम्मुख ध्रुवस्वामिनी की वार्ता, राम-गुप्त का उसके सैनिकों द्वारा वध करना आदि घटनाओं को प्रसाद ने नाटक में परिवर्तित रूप में रखकर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। इस प्रकार घटनाओं को परिवर्तित रूप में रखने तथा शकराज-कोमा के प्रसंग को बढ़ाने में प्रसाद का एकमात्र उद्देश्य ऐतिहासिक घटनाओं के सहारे कथा को आगे बढ़ाना रहा है। कथा में नाटकीयता लाने के लिये यह परिवर्तन किये गये हैं। प्रसाद ने इस नाटक के माध्यम से नारी के मोक्ष तथा विधवा-विवाह की समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है। उनका प्रमुख उद्देश्य नारी की महत्ता को प्रदर्शित करना रहा है। इसी कारण ध्रुवस्वामिनी में नारी को उच्चस्थान प्रदान किया है।

स्कन्दगुप्त

'स्कन्दगुप्त' नाटक में आये हुए पात्रों में स्कन्दगुप्त, पुरगुप्त, कुमारगुप्त, गोविन्दगुप्त, पर्णदत्त, चक्रपालित, बन्धुवर्मा, भीमवर्मा, मातृगुप्त, शर्वनाग, भट्टार्क, कुमारदास तथा अनन्तदेवी, ऐतिहासिक पात्र हैं। स्कन्दगुप्त और पुरगुप्त महाराज

---

१. इलियट, हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग १, पृ० ११०-११२

२. 'तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः।' मनुस्मृति, ९-१६९

कुमारगुप्त के पुत्र थे । पुरगुप्त की माता का नाम अनन्तदेवी था[1] । स्कन्दगुप्त की माता का नाम नहीं मिलता[2] । प्रसाद ने भीतरी के स्तम्भ लेख के अनुसार स्कन्दगुप्त के पराक्रम का वर्णन करते समय कृष्ण और देवकी के सम्बन्ध की याद दिलाते हुए देवकी को स्कन्दगुप्त की मां के रूप में माना है[3] । महाराज पुत्र गोविन्दगुप्त के अन्तःविद्रोह से अप्रसन्न होने पर मालवा जाने का वृत्तान्त मिलता है[4] । जूनागढ़ लेख के अनुसार पर्णदत्त को सौराष्ट्र का गवर्नर बतलाया है[5] । चन्द्रपालित पर्णदत्त का ही पुत्र था[6] । बन्धुवर्मा और भीमवर्मा की ऐतिहासिकता को प्रतिपादित करने के लिए प्रसाद ने मालव वंश की वंशावलि का उल्लेख किया है[7] । इन्दौर ताम्रपत्र से शर्वनाग को गंगा-यमुना के दोआव का विषयपति बतलाया है[8] । मातृगुप्त एक कवि था, जिसने काशमीर का शासन-सूत्र संभाला था[9] । कुमारदास

---

१. वासुदेव उपाध्याय, प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, द्वितीय कुमारगुप्त का भीतरी मुद्रा—लेख, पृ० ७४

'महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्तस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुव्यातो महादेव्यां अनन्तदेव्यां उत्पन्नो महाराजधिराज श्री पुरगुप्तस्य—'

२. 'परमभागवतो महाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्तस्य पुत्रः तत्पादानुध्यातः परमभागवतो महाराजाधिराज श्री स्कन्दगुप्तः ।'

प्लीट—कारपस इन्स क्र० इंडिकेरम कलकत्ता, (१८८८) वाल्यू० तीन, बिहार का लेख, पृ० ५०

३. 'पितरि दिवमुपेते विप्लुतां वंशलक्ष्मी
भुजबल विजितारिर्यः प्रतिष्ठाप्य मूयः ।
जितमिति परितोषान मातरं साश्रुनेत्रा
हतरिपुरिव कृष्णो देवेकीमम्युपेतः ।

प्लीट, कारपस इन्स० क्र० इन्डिकेरम, वाल्यू० तीन, पृ० ५३-५५

४. आर० डी० बनर्जी, दी एच आफ इम्पीरियल गुप्ताज, (१९३३) पृ० ५२

५. 'सवेषु मृत्येष्यपि संहितेषु ओ. मे प्रशिष्यान्निखिलान्सु राष्ट्रान् ।
आं ज्ञातमेकः खलुपर्णदत्तो भारस्य तस्योद्वहने समर्थः ।'

जूनागढ़ का लेख, सी० आई० आई० ३. पृ० ५९

६. सी० आई० आई०, जूनागढ़ का लेख, ३, पृ० ५९

७. स्कन्दगुप्त, प्रथम संस्करण, (परिशिष्ट)

८. 'विषयपतिसर्वनागस्य अन्तर्वेयां भोगामिवृद्धये वर्तमाने ।'

—इन्द्रौर ताम्रपत्र, सी० आई० आई० (फ्लीट), ३, पृ० ७०

९. राजतरंगिणी, तृतीय तरंग, १२४-१९०

सिंहल का शासक था। डा० जनन्नाथ प्रसाद ने महावंश के आधार पर उसे स्कन्दगुप्त का समकालीन ठहराया है[1]।

स्कन्दगुप्त ने युवराज्यकाल में अपनी वीरता का परिचय दिया था। उसने पुष्यमित्रों के विद्रोह को अपने बाहुवल से शान्त करने के लिये कई रातें जमीन पर सो कर बिताई थीं। इस प्रकार वह शत्रुवर्ग को परास्त कर सिंहासनारूढ़ हुआ[2]। स्कन्दगुप्त सिंहासनारूढ़ होने पर शान्त नहीं हुआ। उसने हूणों से जबर्दस्त मुठभेड़ ली जिससे सारी पृथ्वी कांप उठी[3]।

स्कन्दगुप्त नाटक में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थिति का चित्रण हुआ है। हूणों द्वारा उत्तरी-पश्चिमी भारत कुचला गया था। सौराष्ट्र पदाक्रान्त हो चुका था। गुप्तकालीन शासकों में से स्कन्दगुप्त ने समस्त विरोधी परिस्थितियों से सहायता प्राप्त की। सामाजिक दृष्टि से समाज में विलासिता का साम्राज्य छाया हुआ था। धार्मिक दृष्टि से ब्राह्मण और बौद्धों में आपसी विरोध था। धार्मिक भावना धन पर आधारित थी। धर्म के ठेकेदार अपने स्वार्थों पर टिके हुए थे। उधर बौद्ध गुप्त-शत्रु का कार्य कर रहे थे। स्कन्दगुप्त ने अपने पैतृक साम्राज्य को सुचारु रूप से चलाया। उसके साम्राज्य में उत्तरी भारत, मध्यदेश, मालवा, गुजरात आदि प्रदेश सम्मिलित थे[4]। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में पंचनद[5], गांधार[6], सौराष्ट्र[7], मालवा[8],

---

१. प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० ८३-८४

२. 'विचलितकुललक्ष्मीस्तम्भनायोपतेन,
क्षितितलशयनीये येन नीता त्रियामा।
समुदितवलकोशान् पुष्यमित्रांश्च जित्वा,
क्षितिपचरनपीठे स्थापितो वामपादः॥'

फ्लीट, सी० आई० आई०, भीतरी का लेख, ३, पृ० ५३-५४

३. वही, पृ० ५४ 'हूर्णर्यस्य समागतस्य समरे दोर्म्यां धरा कम्पिता।
रिपवोप्यामूलमग्नदर्पा निर्वचना म्लेच्छदेशेषु।'

४. ड० वासुदेवशरण उपाध्याय, (गुप्त सामाज्य का इतिहास),
(प्रथम खण्ड), पृ० १०६

५. स्मिथ. अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ३२८

६. वही, पृ० ३२८

७. सी० आई० आई० वाल्यूम ३, जूनागढ़ का लेख, पृ० ५९

८. उपाध्याय, गुप्त साम्राज्य का इतिहास, पृ० १०६

दूशपुर[1], वल्लभी[2], सिंहल[3], काश्मीर[4], कुसुमपुर[5], पाटलिपुत्र[6], नगहार[7], प्रतिष्ठान[8], गोपाद्रि[9] जालन्धर[10], नन्दीग्राम (नन्दी क्षेत्र)[11], श्रीनगर[12], मगध[13], पुष्करण[14], अयोध्या[15] तथा कपिशा[16] आदि ऐतिहासिक स्थान आये हैं।

प्रसाद ने नाटकीयता की रक्षा एवं कथानक में एक सूत्रता स्थापित करने के लिए ऐतिहासिक आधार के साथ-साथ कल्पित घटनाओं को भी विशेष स्थान दिया है। कल्पित पात्रों में प्रपंचबुद्धि, खिंगल, मुद्गल, प्रख्यातकीर्ति, जयमाला, देवसेना, विजया, कमला, रामा और मालिनी आये हैं। गुप्तकाल के उत्तराधिकार नियम सम्बन्धी वार्ता, मालवों द्वारा शक और हूणों के विरुद्ध स्कन्दगुप्त की सहायता मांगना तथा मालवों पर हूण-आक्रमण, महाराज कुमारगुप्त की सभा-योजना, अनन्तदेवी, भट्टार्क और प्रपंचबुद्धि के षड्यन्त्र, मालवेश द्वारा अवंति दुर्ग में स्कन्दगुप्त के समक्ष राज्य त्याग, कुमा के रणक्षेत्र में स्कन्दगुप्त की सेना का नष्ट होना आदि घटनाएँ कल्पित हैं। इसके अतिरिक्त देवसेना और विजया का स्कन्दगुप्त से तथा विजया का बाद में भट्टार्क से प्रणयानुभूति सम्बब्धी प्रसंग भी कल्पित हैं। प्रपंचबुद्धि और उसका षड्यन्त्र तथा विजया की हत्या सम्बन्धी घटनाएँ भी प्रसाद की मौलिक कल्पनायें हैं। इन घटनाओं को एवं प्रेम-प्रसंगों को लाने का प्रमुख कारण कथावस्तु में रोचकता प्रदान करना था। इसीलिये प्रसाद ने इस नीरस युद्ध-सम्बन्धी वातावरण में प्रेम-कथाओं का समावेश किया है। इन कल्पित घटनाओं के द्वारा कथावस्तु को सुसंगठित बनाने में संयोग मिला है।

मध्यकालीन आधार

मध्यकालीन इतिहास पर आधारित प्रसाद साहित्य के अन्तर्गत 'राज्यश्री' और 'प्रायश्चित' नाटक, दासी, 'चितौड़ उद्धार', और 'स्वर्ग के खण्डहर', कहानियां तथा 'प्रेमराज्य' और 'प्रलय की छाया' नामक आख्यान प्रधान कविताओं को रख सकते हैं।

---

१. कनिंघम, नोट्स, पृ० ७२६
२. स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ३४२
३. वही, पृ० ३०४
४. स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ३३७
५. चन्द्रगुप्त की भूमिका
६. वही,
७. राखलदास, करुणा की भूमिका तथा 'करुणा' उपन्यास, पृ० ३७८
८. वही, पृ० ३८३
९. वही, पृ० ३१८
१०. कनिंघम, पृ० १५६
११. कल्हण; राजतरंगिणी, १,३६,११३,१४८,२,१७०
१२. वही, १।१०४
१३. स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ३०७
१४. वही, पृ० ३१०
१५. वही, पृ० ३१०
१६. वही, पृ० ३३४

राज्यश्री

'राज्यश्री' नाटक में राज्यश्री, हर्ष, राज्यवर्धन, सुएनच्वांग, ग्रहवर्मा, नरेन्द्रगुप्त, दिवाकरमित्र, भण्डि तथा देवगुप्त ऐतिहासिक पात्र हैं। 'राज्यश्री' में आई हुई घटनाओं का वर्णन हर्षचरित तथा सुएनच्वांग (हवेनच्वांग) के वृत्तान्त में मिलता है[१]। स्थाण्वीश्वर के सम्राट प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र राज्यवर्धन राजसिंहासन पर बैठा। राज्यवर्धन की बहन राज्यश्री का विवाह कान्यकुब्ज के मोखरी राजा अवन्तिवर्मन के पुत्र ग्रहवर्मा के साथ हुआ था[२]। स्थाणीश्वर के सम्राट प्रभाकरवर्धन की मृत्यु की सूचना मालवपति देवगुप्त को मिलते ही उसने शशांक की सहायता से कान्यकुब्ज पर आक्रमण कर दिया और ग्रहवर्मा का वध कर उसकी पत्नी राज्यश्री को कारागृह में वंदिनी बना दिया[३]। उधर राज्यवर्धन हूणों के आक्रमण में विजयी होने पर स्थाणीश्वर लौट रहा था, मार्ग में प्रभाकरवर्धन की मृत्यु की तथा ग्रहवर्मा के वध किये जाने को सूचना मिलने पर उसने कान्यकुब्ज की ओर प्रस्थान किया[४]। राज्यवर्धन ने बड़ी चतुरता से मालव सेना का ध्वंस किया। इसी समय गोड़ाधिपति शशांक या नरेन्द्रगुप्त ने राज्यवर्धन की आधीनता और संधि को स्वीकार करने के लिए अपनी पुत्री के साथ विवाह का प्रलोभन देकर उसका वध कर दिया[५]। इस प्रकार देवगुप्त की पराजय का प्रतिशोध लेकर शशांक ने कन्नौज पर अधिकार किया। गौड़ाधिपति ने हर्ष को विशाल सेना सहित आते देख कर राज्यश्री को मुक्त कर दिया। अब हर्ष के सम्मुख दो प्रमुख कर्त्तव्य थे। अपनी बहन की रक्षा तथा शशांक से कन्नौज मुक्त कराना। हर्ष सर्वप्रथम भण्डि से मिला। उसके द्वारा उसे राज्यश्री की मुक्ति तथा उसके विंध्यपर्वत की ओर जाने की सूचना मिली। हर्ष राज्यश्री को बड़ी कठिनाइयों के उपरान्त प्राप्त कर सका। वह अपने जीवन से दुःखी हो कर अग्नि में प्रविष्ट होना ही चाहती थी कि हर्ष ने पहुंच कर उसे रोका और वापिस लौटते समय शशांक भी कन्नौज छोड़ कर भाग चुका था। हर्ष ने राज्यश्री को शासन की बागडोर सौंपनी चाही, परन्तु राज्यश्री विपत्तियों और बौद्ध उपदेशों के परिणाम स्वरूप शासनारूढ़ नहीं होना चाहती थी। अन्त में हर्ष ने ही शासन की बागडोर सम्भाली[६]। नाटक में सामाजिक एवं राजनीतिक अवस्था चित्रित हुई है। समाज में नारी का स्थान उच्च बतलाया है। साथ ही बौद्ध-धर्म की प्रधानता वतलाई है। तत्कालीन शासक एक दूसरे के प्रति कुचक्र रचने में ही

---

१. राज्यश्री, प्राक्कथन, पृ० ५
२. हर्षचरित, उच्छवास, ४
३. वही, अध्याय ६, पृ० २०४
४. वही, पृ० २५४
५. वही, पृ० ४३६
६. डा० त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० २२१-२२

अपना समय व्यतीत करते थे । इसी का चित्र प्रस्तुत किया है । कन्नौज, स्थाणीश्वर तथा प्रयाग स्थान ऐतिहासिक हैं ।

प्रसाद ने राज्यश्री नाटक में इतिहास का अधिक सहारा लिया है तथा उन्होंने कल्पना का सहारा कम लिया है । । सुरमा और शान्तिभिक्षु के माध्यम से कथा में कुछ कल्पना आ गई है तथा घटनाओं को परिवर्तित कर दिया है । यह इतिहास को नाटकीयता का रूप देने के लिये किया गया है । इसके अतिरिक्त प्रसाद ने इतिहास के ऐसे पृष्ठों को हमारे सामने प्रस्तुत किया है, जो आपसी झगड़ों और कुचक्रों से व्यथित था । प्रसाद ने हिंसात्मक प्रवृत्ति को दिखा कर यह अनुमान किया है, कि हिंसात्मक प्रवृत्ति और घृणित भावना द्वारा शान्ति स्थापित नहीं हो सकती । अतः शान्ति स्थापित करने के लिए दोनों का परित्याग करना आवश्यक है ।

प्रायश्चित

'प्रायश्चित' नामक नाटिका में जयचन्द और मुहम्मद गौरी दो ऐतिहासिक पात्र आये हैं । जयचन्द कन्नौज का शासक था[1] और मुहम्मद गौरी गज़नी का शासक था। इसी का नाम शहाबुद्दीन उर्फ मुईजुद्दीन मुहम्मद था[2] ।

मुहम्मद गौरी ने दिल्ली-आक्रमण पर पृथ्वीराज को कैद कर वहां का शासन अपने अधिकार में ले लिया[3] । पृथ्वीराज की मृत्यु के विषय में अनेक विवाद हैं । मिजहाज उल सिराज के अनुसार उसे तुरन्त पकड़वा कर वध कर दिया गया । हसन निजामी के अनुसार उसे अजमेर में ले जाकर विद्रोह के अपराध में उसका वध कर दिया गया । चन्दबरदायी का कथन है कि मुसलमान पृथ्वीराज को बन्दी बना कर ग़जनी ले गये, वहां मुहम्मद गौरी के मार डालने के अपराध में उसका वध कर दिया गया[4] । दिल्ली पर अधिकार कर लेने के उपरान्त शहाबुद्दीन की सेनाओं ने देश-द्रोही जयचन्द के राज्य कन्नौज पर आक्रमण किया । जयचन्द डर कर भाग गया । जब वह नाव पर बैठ कर गंगा नदी पार कर रहा था तो दुर्भाग्यवश नाव ग़ंगा नदी में डूब गई । इस प्रकार जयचन्द का वहीं अन्त हो गया[5] । 'प्रायश्चित' नाटिका में कन्नौज और दिल्ली स्थान आये हैं, जो ऐतिहासिक हैं ।

'प्रायश्चित' में जयचन्द का युद्ध भूमि में आहत अवस्था में तड़पना, वहीं पृथ्वी-

---

१. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत, पृ० ८७ २. वही, पृ० ८१
३. टाड कृत राजस्थान का इतिहास, प्रका० आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद (संस्क० १९६२), पृ० १४६
४. डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत, पृ० ८५-८६
५. टाड कृत राजस्थान का इतिहास, पृ० १४६

राज का दाह संस्कार, जयचन्द का प्रायश्चित स्वरूप गजारोहण सम्बन्धी घटनाऐं इतिहास विरुद्ध हैं। प्रसाद ने इन घटनाओं के सहारे ऐतिहासिकता का निर्वाह करना चाहा है, साथ ही वे जयचन्द के देशद्रोही होने पर उससे आत्महत्या करा कर प्रायश्चित भी कराना चाहते थे। इसी उद्देश्य का निर्वाह करते हुए उन्होंने इस नाटक की रचना की।

दासी

महमूद गजनवी ९९८ ई० में इस्माइल से गृह-युद्ध करके २७ वर्ष की आयु में सिंहासनारूढ़ हुआ। वह सुबुक्तगीन का पुत्र था[१]। मसूद महमूद का पुत्र था, जो अपने भाई मुहम्मद से गृह-युद्ध करके महमूद के शासन का उत्तराधिकारी बना[२]। तिलक का जन्म एक साधारण परिवार में हुआ था; परन्तु अपनी योग्यता के कारण महमूद के समय में मंत्री-पद प्राप्त कर लिया था[३]। अहमद नियाल्तगीन अरियारुख के उपरान्त पंजाब का सूबेदार बना[४]। 'दासी' कहानी में तिलक और नियाल्तगीन सम्बन्धी घटना ऐतिहासिक है। नियाल्तगीन ने सन् १०३३ ई० में काजी अबुल हसन से झगड़ा कर लिया था और लूटमार के उद्देश्य से उसने बनारस पर आक्रमण किया। इस आक्रमण से बहुत-सा धन उसके हाथ लगा था। नियाल्तगीन के इन कार्यों को देख कर मसूद ने विश्वासपात्र सेनापति तिलक को भेजा। युद्ध में नियाल्तगीन मारा गया[५]। डा० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार अहमद नियाल्तगीन युद्ध में पराजित हो कर भाग गया। तिलक ने उसके सिर के लिए ५,००,००० दिरहम पुरस्कार घोषित किया। जाट लोगों ने, जो मरुदेश और वन-कन्दराओं से भली भांति परिचित थे, अहमद को पकड़ लिया और उसका सिर काट लिया[६]। कहानी में मध्यकालीन वातावरण प्रस्तुत हुआ है। विदेशी आक्रमण भारत में प्रारम्भ हो गगे थे। देश तुर्कों की परतन्त्रता में जकड़ रहा था। विदेशी आक्रमणकारियों का प्रमुख ध्येय लूट-मार करना था। कहानी में घटना से सम्बन्धित गजनी, पंजाब और बनारस ऐतिहासिक स्थान हैं।

प्रसाद ने इस कहानी में बलराज, इरावती और फीरोजा की कथा को जोड़ कर कल्पना का सहारा लिया है। प्रसाद इस ऐतिहासिक घटना को कहानी के रूप में परिवर्तित करना चाहते थे, अतः उन्होंने फीरोजा और इरावती के माध्यम से प्रेम-प्रसंग का सूत्रपात भी किया। प्रसाद ने इस कथा में बलराज के माध्यम से भारतीय शौर्य और पराक्रम का चित्र प्रस्तुत करते हुए अन्त में उसी की विजय बतलाई है। इस प्रकार वे इसमें भारतीयता का निर्वाह कर सके हैं।

---

१. डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत, पृ० ५७
२. वही, पृ० ६९ ३. वही, पृ० ७०
४. वही, पृ० ७१ ५. वही, पृ० ७१
६. ईश्वरीप्रसाद, मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ६४-६५

चित्तौड़ उद्धार

'चित्तौड़ उद्धार' नामक कहानी में मालदेव और हम्मीर ऐतिहासिक पात्र आये हैं। महाराणा हम्मीर सीसोदे सामन्त अरिसिंह के पुत्र थे। वे अपनी शूरवीरता के कारण शासन के उत्तराधिकारी बने[१]। मालदेव जालोर का बागी सरदार था, जो चित्तौड़ का शासक बन बैठा था[२]। ऐतिहासिक घटना इस प्रकार है—चित्तौड़ दुर्ग यहां के राजा रतनसिंह की मृत्यु पर वि० सं० १३८३ तक शत्रुओं के हाथ चला गया था। उसके उपरान्त जालोर के सरदार मालदेव सोनगरा के उत्पात मचाने पर सुल्तान या उसके मन्त्रियों ने उसे चित्तौड़ दे दिया था। हम्मीर बड़ा वीर और साहसी युवक था। उसने अपने पैतृक राज्य को मुसलमानों और सोनगरा चौहानों से वापिस लेने का दृढ़ प्रयत्न किया, उसके इस पराक्रम को देख कर चित्तौड़ के राव मालदेव ने, जो दिल्ली के सुल्तान की तरह से वहां का हाकिम था, अपनी पुत्री का विवाह हम्मीर से कर दिया[३]। कर्नल टाड ने राजा हम्मीर का विवाह मालदेव सोनगरा की विधवा पुत्री से होना बतलाया है, जो पहिले जैसलमेर के रावल को व्याही गई थी। वह बाल्यावस्था में ही विधवा हो गई थी[४]। हम्मीर के पुत्र होने पर मालदेव की पुत्री कुल देवता की मानता के वहाने चित्तौड़ गढ़ गई। वहां उसने किले के द्वारपालों को अपनी ओर कर लिया। हम्मीर को सूचना मिलते ही वह सेना सहित चित्तौड़ पहुंचा और किले पर अधिकार कर लिया। यह घटना वि० सं० १३८३ की है[५]। सामयिक दृष्टि से कहानी में राजपूती वीरता का चित्र प्रस्तुत हुआ है। कहानी में चित्तौड़ ऐतिहासिक स्थान आया है।

प्रसाद ने इस ऐतिहासिक घटना को चित्तौड़ उद्धार का रूप देकर सिसोदिया वंश और हम्मीर के पराक्रम का वर्णन किया है। राजपूत अपनी शान के लिए शत्रुओं के हाथ गई पैतृक सम्पत्ति को किस प्रकार वापिस लेने को प्रयत्नशील होते हैं। राजा हम्मीर ने चित्तौड़ को प्राप्त करने के लिए संकल्प किया और उसका प्रयत्न सफल हुआ। प्रसाद ने इस कहानी में राजपूती आन-बान का परिचय दिया है।

स्वर्ग के खण्डहर

'स्वर्ग के खण्डहर' नामक कहानी में प्रसाद ने चंगेजखां के अतिरिक्त अन्य कल्पित पात्रों के माध्यम से कथा का पूर्ण निर्माण किया है। चंगेजखां ऐतिहासिक पात्र

---

१. जगदीशसिंह गहलोत, राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० २०२
२. वही, पृ० २०१
३. जगदीश सिंह गहलौत, राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० २०१-२
४. कर्नल टाड, राजस्थान, भाग १, पृ० ३१८
५. जगदीश सिंह गहलौत, राजपूताने का इतिहास, भाग १, पृ० २०२-३

है। उसका जन्म उमन नदी के निकट हुआ था। अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त उसने सन् १२०३ में खान पद प्राप्त किया था। वह ख्वारिज्म के अन्तिम शाह जलाउद्दीन के आक्रमण में भारत की ओर भागा। आक्रमणकारियों द्वारा पीछा करने पर उसने सिंधु नदी पर पड़ाव डाला और मंगोलों से युद्ध करना चाहा। इसी समय यहां के शासक इल्तुतमिस से कुछ समय तक दिल्ली में रहने की आज्ञा मांगी; परन्तु इल्तुतमिश ने जलवायु खराब होने का बहाना लगाया। कहानी का वातावरण मुगलकालीन है। देश मुसलमानों के आक्रमणों से आक्रान्त था[1]।

प्रसाद ने काल्पनिक कथानक के माध्यम से इस कहानी में रूप और विलास का चित्र प्रस्तुत किया है।

प्रेमराज्य

'प्रेमराज्य' कविता का ऐतिहासिक आधार विजयनगर और बहमनी वंश के राजाओं से सम्बन्धित सन् १५६५ में हुए तालीकोट युद्ध से है। इस युद्ध में विजयनगर के दो मुस्लिम सेनापतियों ने, जिनके पास सत्तर-सत्तर हजार सेनाएँ थीं, बहमनी सुलतान से मिलकर राजा (रामराय) को धोखा दिया। इस युद्ध में राजा रामराय घायल हुए और निजामशाह द्वारा मारे गये[2]।

इस कविता में आये हुए सूर्यकेतु, कुमार चन्द्रकेतु, लतिका आदि सभी काल्पनिक पात्र हैं। घटनाओं के अन्तर्गत युद्धभूमि में महाराज के पांच वर्षीय पुत्र का आना, उसे भील को सौंपना, भील द्वारा उसे हिमगिरि पर ले जाना, महाराज द्वारा सेना को दो भागों में विभक्त करना, सेनापति द्वारा यवनों से पुरस्कार लेने जाना, सेनापति के घर पहुंचने पर पत्नी का पत्र और पुत्री लतिका का मिलना, राजकुमार चन्द्रकेतु और लतिका का प्रणय प्रसंग चलना आदि घटनाएँ काल्पनिक हैं। कवि का इन घटनाओं को प्रदर्शित करने का प्रमुख उद्देश्य युद्ध की घटना के संकेत द्वारा महाराज की वीरता तथा सेनापति के विश्वासघात को दिखाना था।

प्रलय की छाया

'प्रलय की छाया' नामक आख्यान प्रधान कविता में अल्लाउद्दीन, कर्णदेव, मानक (मलिक काफूर) तथा कमला ऐतिहासिक पात्र हैं। अलाउद्दीन दिल्ली का

---

१. डा० ईश्वरीप्रसाद, मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ० ८०-८१

२. (क) श्रीं वासुदेव उपाध्याय, विजय नगर साम्राज्य का इतिहास, प्रका० सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, प्रथम संस्क० (१९४५),

(ख) The cambridge Histry of India, Vol. 3. Turks & Atghans, Ed. 1958, Page 448.

सुल्तान था। कर्णदेव गुजरात का शासक था, बाद में सुल्तान द्वारा गुजरात आक्रमण में पराजित हो कर भाग गया[1]। मलिक काफूर कम्बे के किसी व्यापारी का दास था, अन्त में सुल्तान के आधिपत्य में आकर स्वामी की सद्भावनाओं से उच्चपद का अधिकारी हुआ[2]। कमला राजा कर्ण की पत्नी थी[3]। इस कविता में गुजरात की राजधानी अन्हिलवाड़ा पर आक्रमण की घटना ऐतिहासिक है। अलाउद्दीन खिलजी के भाई उलूफ खां और वजीर नसरतखां ने सन् १२९७ के प्रारम्भ में इस स्थान पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में ले लिया[4]। यहां के राजा कर्ण ने भाग कर[5] दक्षिण में देवगिरि के राजा रामदेव के यहां आश्रय लिया[6]। कमलादेवी को युद्ध में बन्दिनी बना कर अलाउद्दीन के अन्तःपुर में ले जाया गया, जहां उसने अपने सौन्दर्य और गुणों द्वारा सम्राट को अभिभूत किया[7]। काव्य में आक्रमणकालीन वातावरण प्रस्तुत हुआ है। 'प्रलय की छाया' में गुजरात, अन्हिलवाड़ा, दिल्ली आदि ऐतिहासिक स्थान आए हैं।

प्रसाद ने इस ऐतिहासिक आधार को ग्रहण करने में पद्मिनी के जौहर सम्बन्धी घटना का उद्धरण गुजरात के युद्ध की घटना से पहिले दिया है। पद्मिनी के जौहर की घटना सन् १३०१ ई० की है तथा गुजरात की युद्ध-सम्बन्धी घटना सन् १२९७ की है। इसके अतिरिक्त कमला मानक का बाल-अनुचर बनना, मानक के बन्दीरूप में कमला द्वारा मुक्ति कराना, मानक द्वारा कमला को कर्णदेव की सूचना देना, मालिक और काफूर का एक व्यक्ति होना, अलाउद्दीन की मृत्यु काफूर द्वारा कराना आदि घटनाएँ काल्पनिक हैं। प्रसाद ने इस प्रकार की ऐतिहासिक घटना को, अपनी मौलिकता के प्रदर्शन के अनुकूल, परिवर्तित किया है। इस मौलिकता के प्रदर्शन का प्रमुख कारण गुजरात की रानी कमला के हृदय में उठे हुए अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित करना था। प्रसाद का उद्देश्य नारी के सौन्दर्य को प्रदर्शित करना था, परन्तु सौन्दर्य जो अपने प्रभाव

---

१. John Briggs, Histry of Rige of Mohomedan Power in India, Vol. 1, Calcutta, Page3 27.
२. E. B. Cowell, Histry of India, Ledon, 2th ed. (1889), Page 394.
३. वही, पृ० ३९५
४. John Briggs, Histry Rise of the Mohomedan Power in India, Vol. 1, Calcutta, Page 327.
५. The Cambridge Histry of India, Vol. 3, Pagge 100.
६. John Briggs, Histry of the Mohomedan Power in India, Page 327.
७. E. B. Cowell, Histry of India, Page 395.

से एक अलाउद्दीन जैसे भारत के सुल्तान को झुका सकता है, वही समय के परिवर्तन के साथ क्षीण होता जाता है। जिस प्रकार प्रलय के सम्मुख सृष्टि असफल हो जाती है उसी प्रकार प्रलय में कमला का सौन्दर्य भी नष्ट होता गया। कमला ने अपने यौवन काल में इसी सौन्दर्य के वशीभूत हो कर साम्राज्य लिप्सा में फंस कर अपने सबसे बड़े सत्य अर्थात् नारीत्व को बेच दिया। उसकी प्रतिहिंसा की भावना सौन्दर्य की प्रमुखता में समाप्त हो गई।

मुगलकालीन आधार

प्रसाद के मुगलकालीन इतिहास पर आधारित साहित्य में, गद्य की श्रेणी में 'ममता', 'तानसेन', 'नूरी', 'जहांनारा' और 'गुलाम' कहानियां तथा पद्य की श्रेणी में 'महाराणा का महत्त्व, 'वीर-बालक, और 'शिल्प-सौन्दर्य' नामक खण्ड-काव्य एवं आख्यानक कविताओं को रख सकते हैं।

ममता

'ममता' कथा में हुमायूँ, शेरशाह और चूड़ामणि ऐतिहासिक पात्र हैं। शेरशाह ने बिहार में रोहतासगढ़ के दुर्ग पर अपने खजाने और परिवार की सुरक्षा के लिए अधिकार करना चाहा था। वहां का मन्त्री चूड़ामणि था। शेरखां ने चूड़ामणि से मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया। उसने बड़ी चतुराई से पालकियों में स्त्री वेश में शस्त्रों से सुसज्जित वीर अफगान सैनिकों को घुसा दिया। वहां पर युद्ध हुआ। उन सैनिकों ने राजा तथा उसके अन्य व्यक्तियों को मार भगाया, इस प्रकार शेरशाह ने सन् १५३८ में यह दुर्ग अपने अधिकार में कर लिया। इसके उपरान्त शेरखां ने बंगाल से भागे हुए हुमायूँ को कर्मनासा नदी के पास चौसा नामक स्थान पर सन् १५३९ में परास्त किया। हुमायूँ कुछ विश्वासपात्र सहयोगियों की मदद से आगरे भाग आया[1]।

प्रसाद ने उक्त दो घटनाओं को कहानी का आधार मानते हुए उसे ममता की कथा से जोड़ा है। प्रसाद ने इस अंश को जोड़ कर हिन्दू विधवा को जो संसार का निराश्रय प्राणी है, ममतामयी दृष्टि से देखा है।

तानसेन

'तानसेन' कहानी अकबर कालीन है। इस कहानी में प्रसाद ने संगीत सम्राट तानसेन तथा उसकी कला की ओर संकेत किया है। आचार्य बृहस्पति ने अकबर कालीन फजलअली द्वारा रचित 'कुल्लियात ग्वालियर' का उल्लेख करते हुए ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर के पुत्र विक्रमाजीत से तानसेन की उपाधि प्राप्त करने की बात कही है[2]। अनेक किंवदन्तियों के आधार पर तानसेन के तन्नू, तन्ना त्रिलोचन,

---

१. डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, मुग़लकालीन भारत, पृ० ९५-१००
२. संगीत (फरवरी १९५९) और धर्मयुग (२७ (२७ दिसम्बर, १९५९) में प्रकाशित।

तनसुख अथवा रामतनु नाम बतलाये गये हैं[1]। वल्लभ सम्प्रदाय के वार्ता साहित्य में तानसेन का जन्म स्थान ग्वालियर बतलाया गया है[2]।

प्रसाद ने तानसेन एवं स्थान सम्बन्धी ऐतिहासिकता को लेकर रामप्रसाद और सौसिन सम्बन्धी कल्पित प्रेम-कथा को चित्रित किया है। प्रसाद का उद्देश्य संगीत सम्राट तानसेन की ओर ध्यान आकर्षित करना था। प्रसाद स्वयं एक बड़े संगीत प्रेमी थे। रसीली तान को सुन कर 'हर-एक पत्ता ताल देने लगा[3]' से उन्होंने संगीत की महानता को चित्रित किया है।

नूरी

'नूरी' कहानी में आये हुए पात्रों में अकबर, याकूबखां, यूसुफ़खां और सलीम ऐतिहासिक पात्र हैं। जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर अपने पिता हुमायूँ के उपरान्त बैरामखां की देखभाल में १३ वर्ष की उम्र में सिंहासनारूढ़ हुआ[4]। सलीम अकबर का पुत्र था। इसका जन्म ३० अगस्त १५६६ में शेख सलीम के यहां हुआ[5]। यूसुफ़खां काश्मीर का शासक था। याकूब यूसुफ़खा का पुत्र था[6]। ऐतिहासिक घटनाओं में काश्मीर के शासक यूसुफखां ने सन् १५८२ ई० को अकबर के द्वारा भेजे गये राजा भगवानदास और कासिमखाँ को आत्मसमर्पण कर दिया। यूसफखां का पुत्र याकूब भाग निकला। वह आक्रमणकारियों के प्रतिरोध का प्रयत्न कर रहा था, परन्तु निष्फल और पराजित होने पर उसे आत्मसमर्पण करना पड़ा। अन्त में याकूब और उसके पिता को बन्दी बना कर मानसिंह की देख-रेख में बिहार भेज दिया गया[7]। कहानी में राजनीतिक वातावरण चित्रित हुआ है। मुगलकालीन समय में मुसलमानों का प्रभाव बतलाया गया है। सम्राट अकबर के सम्मुख काश्मीर नरेश यूसुफखां को भी आत्मसमर्पण करना पड़ा। स्थानों की दृष्टि से कहानी में आगरा, काश्मीर, श्रीनगर और सीकरी आये हैं, जो ऐतिहासिक हैं।

'नूरी' कहानी में नूरी-शाहजादा याकूबखां का प्रणय-प्रसंग तथा याकूब का नूरी के साथ षड्यन्त्र में बन्दी होना सम्बन्धी प्रसंग काल्पनिक हैं। प्रसाद ने अपने साहित्यिक

---

१. प्रभुदयाल मीत्तल, संगीत-सम्राट् तानसेन, जीवनी और रचनाएँ, प्रका० ब्रज साहित्य संस्थान, मथुरा, पथरा, प्रथम संस्क० (२०१७), पृ० ३
२. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, द्वितीय खण्ड, पृ० १५४
३. छाया, तानसेन, पृ० ११-१२
४. ईश्वरी प्रसाद, मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २६७
५. ईश्वरीप्रसाद, मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३०६
६. वही, पृ० ३२१
७. ईश्वरी प्रसाद, मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३२१

में नारी-प्रेम को उच्च स्थान प्रदान किया है। वह इस प्रेम-प्रसंग के माध्यम से ऐतिहासिकता का निर्वाह कर सके हैं।

जहाँनारा

'जहांनारा' कहानी में जहांनारा, शाहजहां और उसका पुत्र औरंगजेब ऐतिहासिक पात्र हैं[1]। औरंगजेब शाहजहां के अन्य पुत्रों से अनुभव और योग्यता में सबसे अधिक प्रसिद्ध था[2]। उसने शाहजहां के बीमार होने पर उसकी कुशल पूछने के ध्येय से एक पत्र लिखा, इसके उपरान्त सिंहासन प्राप्ति के लिए युद्ध हुआ। औरंगजेब ने अन्त में शाहजहाँ का खुलेआम विरोध किया और शाहजहां को कैद कर लिया। इस प्रकार आगरे का सम्पूर्ण खजाना औरंगजेब के हाथ लगा। १० जून १६५८ को शाहजादी जहांनारा बहन होने के नाते वहां आई और शाहजहां की ओर से चारों भाइयों को साम्राज्य लौटाने की बात कही, परन्तु औरंगजेब ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया[3]। शाहजहां के साथ उसकी पुत्री जहांनारा भी आठ वर्ष तक वन्दी रही। जहांनारा ने अपने भग्न-हृदय पिता के प्रति सच्चा स्नेह एवं भक्ति-भाव प्रदर्शित किया। वह माता के वात्सल्य के साथ उसकी देख-रेख करती रही और भाग्य के निष्ठुर आघातों को भुलाने की चेष्टा करती रही[4]। इस प्रकार शाहजहां की मृत्यु ८ जनवरी, १६६७ ई० को हुई। औरंगजेब उसके पास शाहजहां की आखिरी सांसें गिनने के समय भी नहीं आया[5]। जहांनारा शाहजहां की मृत्यु के उपरान्त दिल्ली चली गई। वहां पर वह दरबार की सर्वप्रमुख महिला के रूप में बनी रही। उसने धर्म-परायणता और दानशीलता में अपनी ख्याति प्राप्त की। मरने पर उसको संत निजामुद्दीन औलिया के मकबरे में दफनाया गया[6]।

प्रसाद ने इस ऐतिहासिक आधार के साथ जहांनारा के चरित्र पर प्रकाश डाला है। जहांनारा को करुणा की मूर्ति बतलाया है। अन्त में औरंगजेब के पाषाण-हृदय को उसके आगे द्रवीभूत कराया है। यह प्रसाद की मौलिकता है। कहानी में प्रसाद का उद्देश्य जहांनारा के चरित्र में सेवा और त्याग की भावना दिखाना रहा है।

गुलाम

'गुलाम' कहानी में आये हुए पात्रों में गुलाम कादिर, शाहआलम और मन्सूर (मन्जूरअली ख्वाजा) ऐतिहासिक हैं। सन् १७८७ में गुलाम कादिर रूहेला, जो

---

१. ईश्वरी प्रसाद, मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४१८
२. यदुनाथ सरकार, औरंगजेब, पृ० ६५ ३. वही, पृ० ६१-६३
४. ईश्वरी प्रसाद, मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४३७
५. वही, पृ० ४३७ ६. वही, पृ० ४३८

जाबिताखां का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था, ने मंजूरअली ख्वाजा के सहयोग से सम्राट् शाहआलम पर आक्रमण किया और उसके राजमहल पर अधिकार कर शासक बन बैठा। उसने अपने खंजर से शाहआलम की आंख निकाल ली[1]। इस कहानी में दिल्ली एक ऐतिहासिक स्थान आया है।

'गुलाम' कहानी में गुलाम कादिर का शाहआलम के यहां गुलाम बनना तथा गुलाम कादिर का वहां से छुट्टी लेकर जाना सम्बन्धी घटनाएँ अनैतिहासिक हैं। यह प्रसाद की कल्पना है। प्रसाद इस कल्पना के सहारे प्रतिशोध की भावना को चित्रित करना चाहते थे। वे पराधीन देश में इस प्रकार की रचना लिख कर जनता को उसकी परतन्त्रता का बोध कराना तथा उससे स्वतन्त्रता की भावना को प्रेरित करना चाहते थे। इसी उद्देश्य को लेकर उन्होंने इस कहानी की रचना की।

महाराणा का महत्व

'महाराणा का महत्व' नामक खण्ड काव्य के ऐतिहासिक आधार का अवलोकन करते समय हम देखते हैं कि अकबर, वहरामखां का पुत्र मिर्जाखां (खानखाना), महाराणा प्रताप और प्रताप का पुत्र अमरसिंह ऐतिहासिक पात्र हैं। शेष पात्रों में कृष्णसिंह और सालुम्ब्रापति भी ऐतिहासिक पात्र हैं, परन्तु इनका इस ऐतिहासिक घटना से कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। अकबर बादशाह के मेवाड़ से वापिस चले जाने पर महाराणा प्रताप ने पहाड़ों की शरण छोड़ कर शाही थानों पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया था। बादशाह ने इन समाचारों को सुनने पर भगवन्तदास (भगवानदास), कुंवर मानसिंह, वैहरमखां के पुत्र मिर्जाखां (खानखाना), कासिमखां मीनबहर तथा अन्य अफसरों को भेजा, परन्तु महाराणा किसी के काबू में नहीं आये। इसी बीच एक बार महाराणा के राजपूतों ने शाही सेना पर आक्रमण किया, इसमें मिर्जाखां की औरतें कुंवर अमरसिंह के द्वारा पकड़ी गईं। महाराणा ने इन औरतों के साथ अपनी बहन, वेटियों जैसा व्यवहार किया और उन्हें वापिस अपने पतियों के पास भिजवा दिया। महाराणा के इस श्रेष्ठ व्यवहार के परिणाम स्वरूप मिर्जाखां मेवाड़ के राजाओं के प्रति सद्भावना रखने लगा[2]। प्रसाद ने इस ऐतिहासिक कथा को ग्रहण करते हुए इसमें तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक वातावरण का चित्र प्रस्तुत किया है। क्षत्रिय जाति की वीरता का परिचय दिया है तथा राजनीतिक दृष्टि से उस समय के हिन्दू-मुस्लिम-युद्ध का वातावरण प्रस्तुत किया है।

'महाराणा का महत्व' में अब्दुल-रहीम खानखाना के हरम का मरुभूमि से निकलना, वेगम का प्यास लगने के बहाने मरु-उद्यान में रुकना तथा अन्त में दिल्ली

---

१. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, मुगलकालीन भारत, पृ० ५९९-५०५

२. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा राजपूताने का इतिहास, दूसरा भाग, पृ० ७५८

दरवार में रहीम द्वारा महाराणा की वीरता का गान करना, सम्बन्धी घटनाओं को प्रसाद ने कुछ परिवर्तन के साथ ग्रहण किया है। इस ऐतिहासिक आधार के माध्यम से प्रसाद का उद्देश्य महाराणा के महत्व को प्रस्तुत करना था। महाराणा खानखाना की स्त्रियों को लौटा देने का आदेश देते हुए कहते हैः—

'कहिये कभी न कोई क्षत्रिय आज से
अवला को दुःख दें, चाहे हों शत्रु की।
शत्रु हमारे यवन—उन्हीं से युद्ध है
यवनीगण से नहीं हमारा द्वेष है।
सिंह क्षुधित हो तव भी करता नहीं
मृगया डर से दबी शृगाली वृन्द की[1]।

प्रसाद ने अन्त में अकवर के दरवार की कल्पना करते हुए महाराणा के महत्व का गुणगान किया है।

वीर-बालक

'वीर-वालक' नामक आख्यान प्रधान कविता में तीन पात्रों का नाम उल्लिखित हुआ है। इनमें जोरावर सिंह और फतहसिंह के नाम इतिहास प्रमाणित हैं। सूबा का नाम इतिहास में कहीं नहीं मिलता। ऐसा लगता है कि प्रसाद ने सरहिन्द के गवर्नर अजीरखां के स्थान पर शायद सूवा नाम का उल्लेख किया हो या यह सूवा नाम का कोई सैनिक अधिकारी वजीरखां द्वारा आदेशित व्यक्ति हो। परन्तु इतिहास में वजीरखां का नाम ही आया है। 'वीर-वालक' कविता की कथा, मुगल काल की एक ऐतिहासिक घटना से सम्वन्धित है। गुरु गोविन्दसिंह के छोटे पुत्र जोरावर्सिह और फतहसिंह को इस्लाम धर्म न मानने पर[२] सर्हिद के गवर्नर वजीरखां[३] ने औरंगजेब के आदेश से[४] २७ दिसम्बर सने १७०० को ईंटों की दीवाल में चिनवा दिया था[५]। 'वीर-बालक' में मुगलकालीन वातावरण चित्रित किया गया है। औरंगजेब की हिन्दुओं

१. महाराणा का महत्त्व, पृ० १२
२. यदुनाथ सरकार, औरंगजेब (१६१८-१७०७), हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, कार्यालय, बम्बई, प्रथम संस्क० (१९५१), पृ० २०८
३. Teja Singh and Ganda Singn A Short History of Sikhs, Vol. 1 (1469-1765), Orient Longmans Ltd, Bombay, Ed 1950, Page 73!
४. Translated and edited by Henary court, History of the Sikhs, Susil Gupta (India) Private Ltd, Calcta—12, imp (1959), Page 471
५. Teja Singh and Ganda Singh, A Short Histry of Sikhs, Pago 73

को मुसलमान बनाने की नीति को प्रस्तुत किया है। कविता में उल्लिखित 'सरहिंद' (सीमांत प्रदेश) उस समय एक महत्वपूर्ण सूबा था।

प्रसाद इतिहास की इस सांकेतिक घटना के साथ अपनी मौलिक कवि-कल्पना को भूलने नहीं पाये हैं। उन्होंने भारत के गौरवगान तथा धर्म की महत्ता सम्बन्धी प्रसंगों का प्रतिपादन करते हुए भारतीय गौरव की रक्षा की है।

शिल्प-सौन्दर्य

'शिल्प-सौन्दर्य' नामक कविता में आलमगीर द्वितीय[1] और सूर्यमल[2] ऐतिहासिक पात्र आये हैं। सन् १७५३ में सूरजमल ने दिल्ली के उस स्थान को लूटा जहां मध्यम श्रेणी के लोग रहते थे। १० मई को जाटों में सैयदबाड़ा, बीजल मस्जिद, तारकागंज और अब्दुल्ला नगर को लूटा। इन जाटों ने नगर के द्वार तक लूट की। प्रसाद ने उक्त ऐतिहासिक घटना को परिवर्तित रूप में ग्रहण किया है। वे इस ऐतिहासिक कल्पना के माध्यम से भारतीय संस्कृति के प्रतीक, शिल्प और साहित्य, की महत्ता को प्रदर्शित करना चाहते थे।

अंग्रेज कालीन आधार

इस युग से सम्बन्धित प्रसाद साहित्य में गद्य के अन्तर्गत 'शरणागत', 'गुण्डा', 'विराम-चिन्ह,' कहानी, 'तितली' उपन्यास तथा पद्य के क्षेत्र में 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' आख्यानक काव्य को रख सकते हैं।

शरणागत

प्रसाद ने 'शरणागत' कहानी में सिपाही-विद्रोह का ब्यौरा देते हुए ऐतिहासिक वातावरण प्रस्तुत किया है। इसमें ऐलिस, विल्फर्ड और जमींदार किशोरसिंह से सम्बन्धित घटना काल्पनिक है। सिपाही-विद्रोह सन् १८५७ ई० में हुआ था। यह विद्रोह हिन्दू और मुसलमानों द्वारा अंग्रेजों को देश से बाहर निकालने का एक असफल प्रयत्न था।

प्रसाद ने इस ऐतिहासिक वातावरण के सहारे जमींदार किशोरसिंह की कल्पित कथा को लिया है। प्रसाद का उद्देश्य अंग्रेजों में भारतीय सभ्यता का प्रभाव अंकित करना रहा है। उन्होंने इस कल्पित कथा के माध्यम से एक अंग्रेज युवती ऐलिस को भारतीयता के रंग में ढाला है।

गुण्डा

'गुण्डा' कहानी का आधार १८वीं शताब्दी के अंतिम समय की एक घटना है।

२. डा० आशीर्वादीलाल, मुगलकालीन भारत, पृ० ४५६

३. जदुनाथ सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, (हिन्दी अनु०) प्रथम खण्ड, पृ० ३०७-३०८

यह समय वारेन हेस्टिग्ज़ का था। कहानी में वारेन हेस्टिग्ज़, बलवन्तसिंह और चेतसिंह ऐतिहासिक पात्र आये हैं। काशी नरेश बलवन्तसिंह, मन्साराम के बेटे थे, जिनका विवाह पिड्रा गांव (बनारस से १५ मील जौनपुर की ओर) के जमींदार वरियारसिंह की कन्या गुलाब कुंअर से हुआ था। गुलाब कुँअर अपने पिता की इकलौती लड़की थी। चेतसिंह एक राजपूत कन्या से उत्पन्न बलवन्तसिंह का पुत्र था, जो वारेन हेस्टिग्ज़ की अनुचित मांगों को ठुकराने पर सन् १७८१ ई० को कैद किया गया[1]। कहानी में तत्कालीन कम्पनी के शासन तथा शहर की गुण्डागर्दी के वातावरण को प्रस्तुत किया गया है। इसमें ऐतिहासिक स्थान काशी आया है[2]।

प्रसाद ने नहकूसिंह की कल्पित कथा को जोड़ कर उसके द्वारा राजा चेतसिंह को बचाने में आदर्श का परिचय दिया है। वह राजपरिवार के प्रति अपने जीवन की परवाह न करता हुआ कर्तव्य का पालन करता है। प्रसाद ने नहकूसिंह की राजपरिवार के प्रति सहानुभूति और कर्त्तव्य परायणता के अतिरिक्त देश-प्रेम और अप्राप्त-प्रेयसी पन्ना के प्रेम को भी प्रदर्शित किया है।

विराम-चिन्ह

'विराम-चिन्ह' कहानी हरिजन आन्दोलन से सम्बन्धित है। महात्मा गांधी ने समाज-सेवा के क्षेत्र में हरिजन-आन्दोलन को प्रारम्भ किया। इससे पूर्व भी बम्बई में सन् १९०६ में एक दलित-मिशन सोसायटी का कार्य प्रारम्भ हो चुका था[3]। दलित जातियों के लिए आम चुनाओं में मत देने का अधिकार तथा कौंसिलों में अपना प्रतिनिधित्व प्राप्त करने का अधिकार भी दिलाने का निर्णय किया गया[4]। प्रसाद ने इसी ऐतिहासिक वातावरण के आधार पर इस कहानी की रचना की।

'विराम-चिन्ह' राधे और उसकी माँ से सम्बन्धित कल्पित कथा है। प्रसाद ने राधे में अछूतोद्धार की भावना को प्रस्तुत किया है। समाज में अछूतों के प्रति कैसा व्यवहार किया जाता है इसका चित्र भी प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ-साथ दीन-दुखियों के प्रति करुणा और सहानुभूति को व्यक्त किया है।

तितली

प्रसाद ने 'तितली' उपन्यास में भारत के अंग्रेजकालीन सामाजिक एवं राजनीतिक वातावरण को प्रस्तुत किया है। प्रसाद ने हिन्दू सम्मिलित-कुटुम्ब-प्रणाली पर

---

१. डा० हरदेव बाहरी, प्रसाद साहित्य कोष, पृ० १२०

२. मोतीचन्द, काशी का इतिहास, पृ० ४३३

३. रायचौधरी, भारत का वृहत् इतिहास, तृतीय भाग, पृ० ३८४

४. अनु० हरिभाऊ उपाध्याय, कांग्रेस का इतिहास, पहला खण्ड, पृ० ५४८

विस्तार से विचार करते हुए वर्तमान अर्थ-प्रधान समाज-व्यवस्था में इस प्रणाली को दोषपूर्ण बतलाया है। तितली में प्रसाद ने एक स्थल पर इस समस्या पर विचार करते हुए कहा है—'मुझे धीरे-धीरे विश्वास हो चला है कि भारतीय सम्मिलित कुटुम्ब की योजना की कड़ियां चूर-चूर हो रही हैं। वह आर्थिक संगठन अब नहीं रहा जिसमें कुटुम्ब का एक प्रमुख सबके मस्तिष्क का संचालन करता हुआ रुचि की समता का भार ठीक रखता था। मैंने जो अध्ययन किया है, उसके बल पर इतना तो कह ही सकता हूं कि हिन्दू समाज की बहुत-सी दुर्बलताएँ इस खिचड़ी-कानून के कारण हैं। प्रत्येक प्राणी अपनी व्यक्तिगत चेतना का उदय होने पर एक कुटुम्ब में रहने के कारण अपने को प्रतिकूल परिस्थिति में देखता है। इसलिए एक सम्मिलित कुटुम्ब का जीवन दुःखदायी हो रहा है[1]। वर्तमान काल में समाज संगठन की मूल आधारशिला अर्थ है। इसी कारण माधुरी का इन्द्रदेव के प्रति विरोधाभाव और प्रतिद्वन्द्विता हो जाती है। आधुनिक युग में यह सम्मिलित-कुटुम्ब-प्रणाली की भावना समाज में घर कर गई है।

राजनीतिक दृष्टि से प्रसाद ने जमींदारी प्रथा की ओर संकेत करते हुए कहा है—'जमींदार साहब के रहते वह सब कुछ नहीं हो सकेगा। सरकार कुछ कर नहीं सकती। उन्हें अपने स्वार्थों के लिए किसानों में कलह कराना पड़ेगा। अभी-अभी देखिये न, घूर के लिए मुकदमा हाईकोर्ट में लड़ रहा है। तहसीलदार को कुछ मिला। उसने वहाँ के एक किसान को उभाड़ कर घूर न फेंकने पर मार-पीट करा दी। वह घूर फेंकना बन्द कर उस टुकड़े को नजराना लेकर दूसरे के साथ बन्दोबस्त कराना चाहता है। यदि आप लोग वास्तविक सुधार करना चाहते हो, तो खेतों के टुकडों को निश्चित रूप में बांट दीजिये और सरकार उन पर मालगुजारी लिया करे[2]।' जमींदारी प्रथा के अतिरिक्त प्रसाद ने इस उपन्यास में ग्राम-संगठन और ग्राम-सुधार की योजना के सफल रूप को प्रस्तुत किया है—

'शैला की तत्परता से धामपुर का ग्राम-संगठन अच्छी तरह हो गया था। इन्हीं कई बरसों में धामपुर एक कृषि-प्रधान छोटा-सा नगर बन गया। सड़कें साफ-सुथरी, नालों पर पुंल, करघों की बहुतायत, फलों के खेत, तरकारियों की क्यारियां, अच्छे फलों के बाग—वह गांव कृषि प्रदर्शनी बन रहा था। खेतों के सुन्दर टुकड़े बड़े रमणीय थे। कोई भी किसान ऐसा न था जिसके पास पूरे एक हल की खेती के लिए पर्याप्त भूमि नहीं थी। पाठशाला, बैंक और चिकित्सालय तो थे ही, तितली की प्रेरणा से दो-एक रात्रि पाठशालाएँ भी खुल गई थीं[3]।'

---

१. तितली, पृ० ११६-११७
२. वही पृ० २५५-५६
३. वही पृ० २८३

प्रसाद 'तितली' उपन्यास में सहयोग और सुधारवादी प्रवृत्ति के आधार पर जागीरदारी प्रथा का अन्त करते हुए ग्राम्य जीवन को उन्नत देखना चाहते हैं। इसीलिए जमींदांर इन्द्रदेव जनता के हित के लिए अपनी सम्पत्ति और अधिकारों को त्याग देते हैं। इस प्रकार प्रसाद किसानों की उन्नत्ति के लिए एक आदर्श योजना प्रस्तुत करते हैं।

शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण

'शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण' नामक आख्यान प्रधान काव्य में शेरसिंह और लालसिंह ऐतिहासिक पात्र आये हैं। शेरसिंह चलियांवाला के युद्ध में सिक्ख सेना का सेनापति था[1]। लालसिंह सिक्खों का प्रधान मन्त्री था जो प्रथम सिक्ख युद्ध में देशद्रोही हो गया था[2]। लालसिंह सन् १८०५ ई० सरदार तेजसिंह के साथ सतलुज पर ६०,-००० सैनिकों के साथ उतरा और अंग्रेजों पर हमला किया। अंत में सिक्खों के पीछे हट जाने पर अंग्रेजों की विजय हुई[3]। इसके उपरान्त जनवरी १३, सन् १८४६ ई० को सिक्ख और अंग्रेजों के बीच चलियांवाला में युद्ध हुआ[4]। इस युद्ध में चौबीस हजार अंग्रेज और चालीस हजार सिक्ख मारे गये[5]। इस युद्ध में सिक्खों ने बड़ी हिम्मत से शत्रु का सामना किया परन्तु अंग्रेज अन्त में भारी खर्च उठा कर विजयी हुए[6]। इस कविता में तत्कालीन सिक्खों और अंग्रेजों के वीच हुए युद्ध तथा उसके परिणाम स्वरूप सिक्ख पराजय का चित्र उपस्थित हुआ है। इसमें सिक्खों के शौर्य और पराक्रम का चित्रण भी हुआ है। कविता में चलियाँवाला स्थान ऐतिहासिक है।

निष्कर्ष

इस प्रकार प्रसाद-साहित्य को इतिहास के निष्कर्ष पर कसने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद ने भारतीय संस्कृति के उज्ज्वलतम रूप को प्रस्तुत करने के लिए इतिहास का आश्रय लिया, साथ ही जहां कोरा इतिहास भारत के सांस्कृतिक स्वरूप

---

१. (क) The Cambridge Histry of India, Vol 4, Page 555-556
   (ख) नन्दकुमार शर्मा, पंजाब-हरण और दलीपसिंह, प्रका० हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता, प्रथम संस्करण, पृ० १३५
२. श्री केशवकुमार ठाकुर, भारत में अंग्रेजी राज्य के दो सौ वर्ष, प्रका० आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहबाद, प्रथम संस्क०, पृ० ३५०
३. वीरविनोद, प्रथम भाग, पृ० ६४
४. वही, पृ० ६४
५. विलियम विलसन इन्टर, दि मारक्यूस आफ डलहौजी, पृ० ७८
६. मजूमदार चौधरी तथा दत्ता, भारत का वृहत् इतिहास, तृतीय भाग, (अनु) मैकमिलन एण्ड कं०, कलकत्ता, पृ० १३५

को अंकित करने में असफल रहा है अथवा कम सफल रहा है, वहां पर उन्होंने कल्पना के सहाय्य के द्वारा उस अभाव की पूर्ति करने की चेष्टा की । इस प्रकार प्रसाद ने इतिहास और कल्पना के बहुरंगी चित्रों से अपने साहित्य को सजाया और प्राचीन भारत की स्वर्णिम झांकी प्रस्तुत करके भारतीय संस्कृति के निखरे हुए रूप को उभारा। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रयत्न में उन्हें आशातीत सफलता मिली । रामायण, महाभारत तथा बौद्ध ग्रन्थ जो भारत के प्राचीनतम, इतिहास को प्रस्तुत करते हैं, का आधार लेकर उन्होंने अपने साहित्य की भीत खड़ी की है । वस्तुतः प्रागैतिहासिक काल से लेकर, जिसका विवरण अंधकारमय है, उन्होंने अंग्रेजी युग तक के इतिहास की सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक घटनाओं की आधार-भित्ति पर अपना साहित्य प्रासाद निर्मित किया, जिसमें कल्पना की मनोरम पच्चीकारी ने नवीन साज-सज्जा प्रदान की । इसीलिए उनके साहित्य का धरातल पुरातन होते हुए भी नवीन सा प्रतिभासित होता है । उस युग की समस्याओं में आधुनिक युग की समस्याओं की आत्मा झलकती है । प्राचीन पात्रों में नूतन प्राणों का सा संचार दीख पड़ता है और इन सबके परे प्राचीन भारतीय संस्कृति में आज की संस्कृति अन्तर्निहित दीख पड़ती है ।

अध्याय ४

सामाजिक पृष्ठभूमि

सामाजिक-व्यवस्था

प्रसाद ने अपने साहित्य में इतिहास के साथ सामाजिक परिवेश भी प्रस्तुत किया है, जिसमें प्राचीन समाज को पाठक के सामने उतारने का सफल प्रयत्न मिलता है। प्रसाद की विशेषता यह है कि वे ऐतिहासिक पटों पर आधुनिक चित्र प्रस्तुत कर देते हैं। समय के साथ सामाजिक-व्यवस्था भी बदलती चली आ रही है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' के अनुसार रामायण-महाभारत काल में सामाजिक-व्यवस्था का वही स्वरूप था, जो मनुस्मृति में वर्णित है। 'अजातशत्रु' में बौद्धकालीन सामाजिक-व्यवस्था का चित्र प्रस्तुत किया गया है। उस समय वर्ण-व्यवस्था तथा पारिवारिक ढांचा शिथिल पड़ गया था। गृह-कलह ही इसकी मुख्य जड़ थी[1]। मौर्य-काल में सर्वत्र 'ब्राह्मणत्व' ही की प्रधानता थी[2]। गुप्तकाल में स्कन्दगुप्त को अधिकारों[3] के प्रति तथा ध्रुवस्वामिनी को पति के प्रति उदासीन[4] दिखाकर एक ओर तो सामाजिक व्यवस्था को शिथिल बतलाया गया है और दूसरी ओर पुरोहित को धर्म का मुख[5] कह कर उसे उच्च स्थान प्रदान किया गया है। मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था बौद्ध-कालीन प्रभाव तथा मुगलों के आक्रमणों से शिथिल पड़ गई थी। आधुनिक काल में तो 'कंकाल' में वर्णसंकर पात्रों की सृष्टि कर वर्ण-व्यवस्था[6] को तथा 'तितली' में संयुक्त-कुटुम्ब-प्रणाली[7] को दूषित ठहराया गया है। इस प्रकार प्रसाद-साहित्य में वर्णित इस सामाजिक-व्यवस्था की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को अध्ययन के लिए उसे वर्ण-व्यवस्था तथा कर्म, आश्रम-व्यवस्था तथा जीवन-निर्वाह, पुरुष-नारी भेद, विवाह, बहु-विवाह,

१. अजातशत्रु, पृ० २६
२. चन्द्रगुप्त, पृ० ६०
३. स्कन्दगुप्त, पृ० १०
४. ध्रुवस्वामिनी, पृ० १२
५. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६३
६. कंकाल, पृ० २८१
७. तितली, पृ० ११६-१७

वैधव्य, पुनर्विवाह, सती-प्रथा, दाम्पत्य जीवन, नारी, आजीविका के साधन, अशन, वसन आवास, कला आदि शीर्षों में विभक्त कर सकते हैं।

वर्ण व्यवस्था तथा कर्म

प्रसाद 'वर्ण-भेद' को सामाजिक जीवन का क्रियात्मक विभाग[१]' मानते हुए उसे चार वर्गों में विभाजित करते हैं— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। वर्णों का यह क्रियात्मक विभाजन जनता के कल्याण के लिए बना[२]। श्रीमद्भगवद्गीता में भी इसी प्रकार कर्मों की दृष्टि से वर्णों का विभाजन किया गया है[३]। प्रसाद ने इन चतुर्वर्णों में ब्राह्मण को उच्च-स्थान प्रदान करते हुए क्षत्रिय को रक्षक, वैश्य को पोषक तथा शूद्र को सेवक का कार्य प्रदान किया है[४]। इस प्रकार ब्राह्मण का कार्य मनन करना, क्षत्रिय का कार्य रक्षा करना, वैश्य का कार्य पोषण हेतु धनोपार्जन करना तथा शूद्र का कार्य अन्य तीन वर्णों की सेवा करना है[५]।

ब्राह्मण

प्रसाद-साहित्य में ब्राह्मण को बुद्धि का प्रतीक माना गया है वह एक सार्वभौम वुद्धि-वैभव है। बुद्धि-वैभव का अर्थ है चिंतन और मनन करना। 'चन्द्रगुप्त' में इसका प्रतीक चाणक्य है। वह न किसी के राज्य में रहता है और न किसी के अन्न से पलता है, स्वराज्य में विचरता है और अमृत होकर जीता है।—ब्राह्मण सब कुछ सामर्थ्य रहने पर भी स्वेच्छा से इन माया स्तूपों को ठुकरा देता है, प्रकृति के कल्याण के लिए अपने ज्ञान का दान देता है[६]। ब्राह्मण का गुण है त्याग और क्षमा, तप और विद्या, तेज और सम्मान[७]।

त्यागी

ब्राह्मण के त्याग और क्षमा की मूर्ति होने के कारण ही बड़े-बड़े सम्राट् उसके आश्रम के निकट निःशस्त्र होकर जाते हैं[८]। मेघ के समान मुक्त वर्षा-सा जीवन-दान, सूर्य के समान अबाध आलोक विकीर्ण करना; सागर के समान कामना, नदियों को पचाते हुये सीमा के वाहर न जाना; यही तो ब्राह्मण का आदर्श है[९]। पृथ्वी पर सबसे उच्च स्थान प्राप्त होने के कारण ब्राह्मण सब जीवों के धर्म समूह की रक्षा करने में

१. 'कंकाल,' पृ० २८१ २. वही, पृ० २८१

३. श्रीमद्भगवद् गीता ४।१३ —

'चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः'

४. चन्द्रगुप्त, पृ० ९१

५. वही, पृ० ९० ६. वही, पृ० ५६

७. वही, पृ० ८४ ८. वही, पृ० १९८ ९. स्कन्दगुप्त, पृ० १३२

समर्थ है[1]। ब्राह्मण त्यागमय जीवन यापन करता है अतः उसके लिए वेदाध्ययन और तपश्चर्या पर सदैव बल दिया गया है[2]।

आदर्शवादी

चाणक्य स्वयं एक आदर्श ब्राह्मण है। उसके इन शब्दों में उसके आदर्श की गवेषणा कर सकते हैं। 'मैं ब्राह्मण हूं! मेरा साम्राज्य करुणा का था, मेरा धर्म प्रेम का था! आनन्द-समुद्र में शान्ति-द्वीप का अधिवासी ब्राह्मण मैं, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र मेरे द्वीप थे, अनन्त आकाश वितान था, शस्यश्यामला कोमला विश्वम्भरा मेरी शय्या थी। बौद्धिक विनोद कर्म था, संतोष धन था[3]। उस आदर्श ब्राह्मण का निवास है झोंपड़ी[4], वह फलमूल खाकर अंजलि से जलपान कर तृण-शय्या पर आंख बन्द किये सो रहता है[5]। मनुस्मृति में ब्राह्मण के यही गुण और यही जीवन-पद्धति बतलाई गई है[6]।

भविष्यवेता

ब्राह्मण लोभ से, सम्मान से, या भय से किसी के पास नहीं जाता[7]। ब्राह्मण भविष्यवेता होता है। दाण्ड्यायन अलक्षेन्द्र को सावधान करते हुए चन्द्रगुप्त को दिखा कर कहता है—'देखो, यह भारत का भावी सम्राट् तुम्हारे सामने खड़ा है[8]।' इसी कारण सिकन्दर को उसकी बातों पर पूर्ण विश्वास हो गया है[9]।

धर्मात्मा

ब्राह्मण धर्म का मुख होता है[10]। वह ध्रुवस्वामिनी के विवाह की अनुमति प्रदान करता है[11]। उसका कथन है कि ब्राह्मण केवल धर्म से भयभीत है अन्य किसी भी शक्ति को वह तुच्छ समझता है[12]। वह रामगुप्त को सम्बोधित करता हुआ कहता है—'तुम मुझे धार्मिक सत्य कहने से नहीं रोक सकते[13]।' धर्म का नियामक ब्राह्मण है, पात्र देख कर उसका संस्कार करने का अधिकार उसे प्राप्त है[14]। ब्राह्मण का निर्णय सभी को मान्य होता है। इसी कारण ब्रह्म हत्या कर देने पर वपुष्टमा जनमेजय को यज्ञ संबंधी कार्यों में ब्राह्मण का महत्व बतलाते हुए कहती है—'मन हिचकता है, पर

---

१. मनुस्मृति १।९९
२. महाभारत, १२।१२।२४
३. चन्द्रगुप्त, पृ० १८८
४. वही, पृ० ६७
५. वही, पृ० ९६
६. मनुस्मृति, ४।४
७. चन्द्रगुप्त, पृ० ९५
८. वही, पृ० ९८
९. वही पृ० १४९
१०. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६३
११. वही, पृ० ६२-६३
१२. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६३
१३. वही, पृ० ६३
१४. चन्द्रगुप्त, पृ० ९०

विवशता वही करने को कहती है। धर्म की आज्ञा और ब्राह्मणों का निर्णय है। बिना आज्ञा यज्ञ से छुटकारा नहीं[१]। पुराणों में भी ब्रह्म हत्या को गुरुत्तर पाप बतलाया है[२]।

राष्ट्र के नियमन का अधिकारी

ब्राह्मण का स्थान चारों वर्णों में सबसे उच्च होने के कारण उसे नियन्त्रित राष्ट्र के नियमन का अधिकार प्राप्त था। वह राज्य करना नहीं जानता, करना भी नहीं चाहता, हां, वह राजाओं का नियमन करना जानता है; राजा बनाना जानता है[३]। मनुस्मृति में कहा गया है, ब्राह्मण का स्थान सर्वोपरि होने से उसे ब्रह्मा ने संसार के नियमन हेतु क्षत्रिय आदि से पहिले उत्पन्न किया।[४]

आत्म-सम्मानी

वर्णों में ब्राह्मण का उच्च स्थान होने से समाज में वह सम्मान और आदर का पात्र होता है। राजाओं द्वारा वह सम्मानित होता है[५]। उसकी अवज्ञा पर प्रायश्चित करना पड़ता है। काश्यप, ब्राह्मण की अवज्ञा को, एक भिन्न पाप बतलाता है,। वह अपमान नहीं सहन कर सकता। उसे पददलित किये जाने पर उसका ब्राह्मणत्व जाग्रत हो जाता है[६]। वह कहता है—'रे पद दलित ब्राह्मणत्व देख, शूद्र ने निगड़ बद्ध किया, क्षत्रिय निर्वासित करता है, तब जब···एक बार अपनी ज्वाला से जल! उसकी चिन-गारी से तेरे पोषक वैश्य, सेवक शुद्र और रक्षक क्षत्रिय उत्पन्न हों[७]।' महाभारत में ब्राह्मण को भूचर के रूप में देवता बतलाया है[८]। वह विद्वान् हो या अविद्वान् प्राकृतिक हो या संस्कृत, वह कभी भी किसी भी अवस्था में अनादर करने योग्य नहीं है[९]।

अध्ययनशील

ब्राह्मण का प्रमुख कर्तव्य अध्ययन-अध्यापन है। वह समाज में आजीवन ज्ञानोपार्जन तथा ज्ञान वितरण का कार्य करता है। प्रसाद-साहित्य में चाणक्य[१०]

---

१. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ७८

२. नेवास्ति ब्राह्मण वधात् पापं गुरुतरं क्वचित

—अग्निपुराण, २२२।१७

३. चन्द्रगुप्त, पृ० १४३

४. मनुस्मृति, १।९४

५. चित्राधार, ब्रह्मर्षि, पृ० ११७

६. वही, पृ० २६

७. चन्द्रगुप्त, पृ० ९१

८. महाभारत १२।३९।१ —भूमिचराः देवः

९. महाभारत १।२८।३

१०. चन्द्रगुप्त, पृ० ५५

और वररुचि[1], तक्षशिला के स्नातक हैं तथा चाणक्य[2], दाण्डयायन[3], वररुचि,[4] राक्षस[5], वेद[6], कश्यप[7], च्यवन[8] आदि आचार्य अध्यापन कार्य करते हैं। 'मनुस्मृति' में ब्राह्मण का यही कर्तव्य बतलाया है[9]।

यज्ञ-सम्पादन

ब्राह्मण का कार्य है यज्ञ सम्पादन। 'ब्रह्मर्षि' कथा में वसिष्ठ तपोवन में अग्निहोत्र शाला को आलोकित करते हैं[10]। कामायनी में भी मनु का अग्निहोत्र सागर के तीर प्रज्ज्वलित हो उठा[11], जहां वे पाक यज्ञ करते हैं[12]। इसी प्रकार के यज्ञ सम्पादन की प्रमुखता भागवत्कार ने दी है[13]।

क्षत्रिय

क्षत्रियों का कार्य है 'तीनों वर्णों की रक्षा करना। क्षत्री का कर्तव्य' विपद का हंसते हुए आलिंगन करना, मुस्करा कर विभीषिकाओं की अवहेलना करना, और विपन्नों के लिए, अपने धर्म के लिए, देश के लिए प्राण देना है[14]। मार्कण्डेय पुराण में क्षत्रिय का धर्म पृथ्वी की रक्षा करना बतलाया गया है[15]।

दृढ़प्रतिज्ञा

क्षत्रिय का प्रमुख कर्तव्य है अपने देश की रक्षा करना। उसे जय-पराजय की चिन्ता नहीं रहती, वह केवल लड़ना जानता है। चाहे बादलों में पानी बरसने की जगह बज्र बरसें, सारी गज सेना छिन्न-भिन्न हो जाय, रथी विरथ हो, रक्त के नाले धमनियों से बहें, परन्तु एक पग भी पीछे हटना उसके लिये असम्भव है। वह धर्म युद्ध में प्राण-भिक्षा मांगने वाला भिखारी नहीं[16]। उसका लक्ष्य दुश्मन से प्रतिशोध लेना है। क्षत्रिय अपने लक्ष्य के पूर्ण करने के लिये प्रतिज्ञा करता है। अजातशत्रु शाक्यों के संहार, उनके रक्त से नहा कर कौशल के सिंहासन पर बैठने की प्रतिज्ञा करता है[17], आम्भीक अपनी खड्ग की शपथ खाकर अपने कर्तव्य से च्युत न होने की प्रतिज्ञा करता

---

१. चन्द्रगुप्त, पृ० ७९
२. वही, पृ० ५५, ७८
३. वही, पृ० ११२
४. वही, पृ० ७९
५. वही, पृ० २२५
६. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० २२
७. चित्राधार, वन-मिलन, पृ० ६६
८. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ४८
९. मनुस्मृति, १।८८
१०. चित्राधार, ब्रह्मर्षि, पृ० ११७
११. कामायनी, पृ० ३१
१२. वही, पृ० ३२
१३. भागवत, १२।१७।४०
१४. स्कन्दगुप्त, पृ० ६८, चित्राधार, कुरुक्षेत्र, पृ० ११६
१५. मार्कण्डेय पुराण, २५।५, २७।७५
१६. चन्द्रगुप्त, पृ० ११४
१७. अजातशत्रु, पृ० ५६

है[1]। 'ध्रुवस्वामिनी' में चन्द्रगुप्त अकेला ही शकराज का काल बन कर उसकी वीरता की प्रतिज्ञा लेता है[2]। मनुस्मृति में भी क्षत्रिय का प्रमुख कर्तव्य प्रजा की रक्षा करना बतलाया है[3]।

मनोबल शक्ति

क्षत्रिय के मनोबल में देश की रक्षा की शक्ति होनी चाहिये तब ही वह अपने देश को दुश्मनों से बचा सकता है तथा अन्य वर्णों की रक्षा कर सकता है। अलका सिंहरण को आदर्श क्षत्रित्व के विषय में कहती है—'जिस देश में ऐसे वीर युवक हों, उसका पतन असम्भव है। मालववीर, तुम्हारे मनोबल में स्वतन्त्रता है और तुम्हारी दृढ़ भुजाओं में आर्यावर्त्त के रक्षण की शक्ति है[4]।'

आर्त्त-निवारण

क्षत्रिय को युद्ध में अपने आपका उत्सर्ग कर देना चाहिये। उसके 'शस्त्र धारण करने पर आर्त्त वाणी सुनायी नहीं पड़नी चाहिए, मौर्य चन्द्रगुप्त वैसा ही क्षत्रिय प्रमाणित होगा[5]।' इस प्रकार चाणक्य चन्द्रगुप्त के क्षत्रित्व गुणों पर अभिमान करता है।

युद्ध प्रियता

युद्ध के समय क्षत्रिय की आजीविका युद्ध-स्थली ही हुआ करती है। चाहे वह क्षत्रिय सैनिक हो या राजा। क्षत्रिय राजा भी युद्ध में सेनापति का कार्य करना अपना सौभाग्य समझता है। चन्द्रगुप्त अपनी आजीविका युद्ध को बतलाते हुए अपने को शूद्रकों की सेना का सेनापति बनाकर मगध की रक्षा करना चाहता है[6]। प्रसाद ने 'कुरुक्षेत्र' आख्यानक में कृष्ण से अर्जुन के लिये युद्ध को निर्भय हो करना ही क्षत्रियोचित बतलाया है[7]। रामचरितमानस में क्षत्रिय को युद्ध-प्रिय बतलाते हुए कहा गया है कि यदि एक बार काल भी सम्मुख आ जाय तो उससे भी नहीं डरना चाहिये[8]।

कर्मठता और आत्म-विश्वास

क्षत्रिय को अपने देश के लिए अपने प्राणों तक का विसर्जन भी कर देना चाहिए। परन्तु कुछ क्षत्रिय सम्राट् ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने धन के लोभ में या आपसी

१. चन्द्रगुप्त, पृ० १९६
२. ध्रुवस्वामिनी, ६४६
३. मनुस्मृति १।९०
४. चन्द्रगुप्त, पृ० ६०
५. चन्द्रगुप्त, पृ० ६१
६. वही, पृ० ११९
७. कानन कुसुम, कुरक्षेत्र, पृ० ११६
८. रिपु बलवंत देखि नहीं डरहिं, एक बार कालहु सन लरहीं।
—रामचरितमानस, आर० १८।१०

देश के कारण दुश्मनों का साथ दिया । आम्भीक भी उन अविश्वासी क्षत्रियों में से एक है । जिसके लिए चाणक्य का यह कथन—'अविश्वासी क्षत्रिय ! इसी से दस्यु और म्लेच्छ साम्राज्य बना रहे हैं और आर्य जाति पतन के कगारे पर खड़ी एक धक्के की राह देख रही है[१] ।' परन्तु अन्त में अविश्वासी क्षत्रिय कर्त्तव्य से च्युत न होने की शपथ लेता है तो सिंहरण के ऐसे क्षत्रियों के विषय में यह शब्द सार्थक हैं—'मनुष्य साधारण-धर्मा पशु है, विचारशील होने से मनुष्य होता है और निःस्वार्थ कर्म करने से देवता भी हो सकता है[२] । 'जयचन्द देशद्रोह के लिए आत्मवध करता हुआ प्रायश्चित करता है[३] । महाभारत में क्षत्रिय के गुणों का उल्लेख करते हुए उसकी कर्मठता पर बल दिया गया है[४] ।

क्षत्रिय-नारी की वीरता

क्षत्रियों के साथ-साथ देश में कुछ ऐसी क्षत्राणियां भी हुआ करती थीं जो आपत्ति-काल में दुश्मनों से लोहा ले सकें । कल्याणी, अलका तथा जयमाला कुछ इसी प्रकार की आदर्श क्षत्राणियां हैं । कल्याणी पर्वतेश्वर के गर्व की परीक्षा लेना चाहती है साथ ही यह भी बतलाना चाहती है कि वह किसी क्षत्राणी से कम नहीं[५] । 'अलका धनुष चढ़ा कर दुश्मनों पर तीर मारती है[६] । क्षत्राणियां युद्ध के संदेश को शुभ समझती हैं[७] । भारतीय संस्कृति की भूमिका में नारी द्वारा संग्राम में जाने का वर्णन मिलता है । ऋग्वेद में बतलाया गया है कि मुद्गलपत्नी, इन्द्रसेना ने, युद्ध में इन्द्र के शत्रुओं का विनाश करते हुए बड़ी वीरता का परिचय दिया था। वह अस्त्र संचालन की कला में पारंगत थी । उसने अपनी वीरता से शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये थे[८] ।

क्षत्रिय-धर्म

क्षत्रिय का धर्म स्त्रियों की, ब्राह्मणों की, पीड़ितों और अनाथों की रक्षा करना है[९] । वे कभी स्त्री को दुख नहीं पहुचाते[१०] । उनका प्रमुख धर्म भिक्षुओं को वस्त्र और धन देना[११], दान देना[१२], तथा यज्ञ कराना[१३] था । इसी प्रकार के कार्यों का वर्णन मनु-

१. चन्द्रगुप्त, पृ० ५६
२. वही, पृ० १६६
३. चित्राधार, प्रायश्चित, पृ० ९८
४. महाभारत, ६।४२।४३
५. चन्द्रगुप्त, पृ० ७२
६. वही, पृ० १३६
७. राज्यश्री, पृ० २३
८. ऋग्वेद १०।१०२।२-११
९. स्कन्दगुप्त, पृ० १२,४५
१०. (क) चित्राधार, सज्जन, पृ० १०८
(ख) महाराणा का महत्व, पृ० १०
११. राज्यश्री, पृ० २१
१२. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ३०
१३. वही, पृ० १००, ११३

स्मृति में भी किया गया है[१]' विष्णु पुराण में क्षत्रिय के गुण यथेच्छदान, यज्ञसंपादन, अध्ययन, शस्त्र धारण कर पृथ्वी की रक्षा करना, वर्णधर्म को स्थिर रखना, दुष्टों को दण्डित करना, साधुजनों का पालन करना बतलाया है[२]।

वैश्य

वैश्यों का प्रयोग प्रसाद साहित्य में बहुत कम मात्रा में आया है। प्रसाद ने वैश्य के लिये 'श्रेष्ठी[३]' शब्द का प्रयोग किया है। वैश्य धन का प्रतीक होता है। इसी कारण प्रसाद ने अपने साहित्य में 'श्रेष्ठी' शब्द वैश्य के लिए प्रयुक्त किया है।

ब्राह्मणों के पोषक

वैश्य 'ब्राह्मण का पोषक[४]' होता है। 'इरावती' में ब्रह्मचारी वैश्य के विषय में कहता है 'वैश्यों का अन्न पवित्र है। उसकी जीविका उत्तम है, क्योंकि वे इसमें से दान ग्रहण करने की दीनता नहीं दिखाते और त्रास से दूसरों का 'धन नहीं छीन लेते[५]'। भागवत्कार ने अस्तिकता, दानशीलता, पापहीनता, ब्राह्मण सेवा, धन ऐश्वर्य से असंतुष्ट आदि वैश्य का स्वभाव बतलाया है[६]।

शूद्र

प्रसाद ने शूद्र का कार्य तीनों वर्णों की सेवा करना बतलाया है। इसीलिये 'स्कन्दगुप्त' में मुद्गल के शब्दों में 'शूद्रों की मुक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की ठोकरों से बतलाई है[७]। पुराणों में भी इसी प्रकार का कार्य बतलाया गया है[८]। शूद्रों का स्थान निम्न होने के कारण चाणक्य नन्द को 'शूद्र के अन्न से पले हुए कुत्ते[९]' तथा पर्वतेश्वर चाणक्य को 'शूद्र-शासित राष्ट्र में रहने वाला ब्राह्मण[१०]' कहता है।

प्रसाद ने स्कन्दगुप्त में मुद्गल के शब्दों में कहवाया है—'ब्राह्मण की मुक्ति भोजन करते हुए मरने में, बनियों की दीवालों की चोट से गिर जाने में और शूद्रों की हम तीनों की ठोकरों से तथा क्षत्राणी की मुक्ति शस्त्र से होती है[११]। प्रसाद उक्त वर्ण-व्यवस्था के साथ-साथ समाज का विभाजन मानव के कर्मों के आधार पर करना चाहते हैं।

---

१. मनुस्मृति १।८९
२. विष्णु पुराण ३।८।२६ से ३९
३. अजातशत्रु, पृ० ७१
४. चन्द्रगुप्त, पृ० ९८
५. इरावती, पृ० ९०
६. भागवत, ११।१७।१८
७. स्कन्दगुप्त, पृ० ५८
८. मत्स्य पुराण, १६५।३, मार्कंण्डेय पृ० २५।७८, ब्रह्म पुराण २२२।१३, १४
९. चन्द्रगुप्त, पृ० ७७
१०. वही, पृ० ४१
११. स्कन्दगुप्त, पृ० ५८

आश्रम-व्यवस्था तथा जीवन-निर्वाह

प्रसाद ने जिस प्रकार वर्णों का विभाजन किया है उसी प्रकार मनुष्य के जीवन को भी आयु की दृष्टि से चार भागों में—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास में विभाजित किया है । वैसे आयु की दृष्टि से जीवन-विभाजन इस प्रकार किया है—ब्रह्मचर्य २५ वर्ष तक, ब्रह्मचर्य के उपरान्त गृहस्थ ५० वर्ष तक, वानप्रस्थ ५० वर्ष से ७५ वर्ष तक तथा सन्यास ७५ वर्ष से १०० वर्ष (मृत्यु पर्यन्त) तक की अवस्था तक । प्राचीन काल से भारतीय समाज में यही व्यवस्था चली आ रही है । गौतम, आपस्तम्ब, वसिष्ठ आदि व्यवस्थाकारों ने इस व्यवस्था का उल्लेख सूत्र-साहित्य में किया है[1] ।

ब्रह्मचर्याश्रम

यह आर्य जीवन का प्रथम आश्रम है । इस आश्रम में विद्यार्थी का मुख्य कर्तव्य विद्याभ्यास और धर्म का अनुशीलन[2] करना होता था । अपने इस कर्तव्य की पूर्ति के लिए विद्यार्थी गुरुकुल में आया करते थे । अथर्ववेद में इस आश्रम प्रणाली की महता को प्रतिपादित किया गया है । इसमें बतलाया गया है कि ब्रह्मचर्य और तप से देवता लोग मृत्यु को भी जीत लेते हैं[3] ।

ब्रह्मचर्य और गुरुकुल

गुरुकुल जीवन मार्ग का पहला पत्थर होता था[4] । गुरुकुल का प्रधान कुलपति या आचार्य कहलाता था । गुरुकुल में आचार्य की आज्ञा सब को मान्य होती थी[5] । गुरुकुल में विद्यार्थियों को अर्थशास्त्र[6], राजनीति[7], युद्धनीति[8], धर्मशास्त्र[9], दण्डनीति[10], व्याकरण[11], आदि विषयों का अध्ययन कराया जाता था । इन विद्याओं का अध्ययन-काल विद्यार्थी की सामर्थ्य पर आधारित था । चन्द्रगुप्त ने तक्षशिला में ५ वर्ष तक अध्ययन कार्य किया था[12] । गुरुकुल में विद्याभ्यास किये हुए विद्यार्थी को स्नातक की उपाधि मिलती थी । इस उपाधि को प्राप्त करने के बाद उसके प्रमाण की पुनः परीक्षा

---

१. गौतम ३।२, आपस्तम्ब धर्म सूत्र, २।६, २१।१, वसिष्ठ ध० सू० ७।१-२
२. आंधी, पृ० २१
३. अथर्ववेद ११।५।१६ 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्यु मुपाध्नत ।'
४. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० १८
५. चन्द्रगुप्त, पृ० ५७
६. वही, पृ० ५६,८८
७. वही, पृ० २२५, स्कन्द० १।३६
८. चन्द्रगुप्त, पृ० ७६,८६,२२५
९. वही, पृ० ८०
१०. वही, पृ० ८८
११. वही, पृ० २२५
१२. वही, पृ० ७२

लेना गुरुजनों के प्रति अपमान तुल्य समझा जाता था[१]। छान्दोग्योपनिषद में बतलाया गया है कि गुरुकुल में अनेक विद्याओं का अध्ययन कराया जाता था[२] शुक्रनीति में भी चौदह विद्याओं का उल्लेख किया गया है[३]।

गुरुदक्षिणा

गुरुकुल में अध्ययन समाप्त करने के उपरान्त स्नातक को गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट होने से पूर्व गुरुदक्षिणा देनी पड़ती थी। यह कार्य उसकी स्वेछा पर निर्भर रहता था। असहाय या गरीव विद्यार्थी इस भार का प्रतिदान गुरु की सेवा करके या बिना पारिश्रमिक प्राप्त किये अध्यापन कार्य करके चुकाया करते थे। चाणक्य ने स्नातक होने के उपरान्त इस ऋण को वहां के भावी स्नातकों को अर्थशास्त्र पढ़ा कर चुकाया था[४]। उतंक ने महादेवी वपुष्टमा के मणि-कुण्डल प्राप्त कर गुरुपत्नी की इच्छा की पूर्ति की थी[५]।

गुरुआज्ञा

विद्याध्यायन के उपरान्त ब्रह्मचर्य से गृहस्थ में प्रविष्ट होने के लिए गुरुकुल के प्रधान की आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक था। प्रसाद ने बतलाया है कि गुरुकुल में केवल केवल आचार्य की आज्ञा शिरोधार्य थी[६]। इसी कारण चाणक्य को कुलपति ने गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट होने की आज्ञा प्रदान की है[७]।, याज्ञवल्क्य स्मृति में गुरु आज्ञा पर विशेष बल दिया गया है। ब्रह्मचारी को गुरु की आज्ञा से ही अध्ययन करना चाहिए। इसके साथ-साथ उसे मन: वाणी और देह से गुरु के हित की कामना करनी चाहिए[८]।

गृहस्थाश्रम

गृहस्थाश्रम में ब्रह्मचर्याश्रिम की अवधि पूर्ण करने के उपरान्त ही स्नातक प्रवेश पा सकता था। इस आश्रम में प्रवेश पाने पर गृहस्थ का सम्पूर्ण भार उसे वहन करना पड़ता था। मनुस्मृति में कहा गया है कि जिस प्रकार वायु के आश्रम में सभी जीवजन्तु जीवित रहते हैं उसी प्रकार गृहस्थाश्रम पर भी अन्य आश्रम जीवित रहते हैं[९]। रामा-

---

१. चन्द्रगुप्त, पृ० ७३
२. छान्दोग्योपनिषद्, ७।१।२
३. शुक्रनीति १।५४
४. चन्द्रगुप्त, पृ० ५५
५. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० १३
६. चन्द्रगुप्त, पृ० ५७
७. वही, पृ० ५५
८. यज्ञवल्क्य स्मृति, २।२७
९. मनुस्मृति—३।७७।७८

यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः ।।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्वं आश्रमाः ।।
यस्मात्त्रयो प्या श्रमिणो ज्ञाने नान्ने च चान्वहम् ।।
गृहस्थेनेव धार्यन्ते तास्माज्ज्येष्ठाश्रमोगृही ।।

यण में गृहस्थाश्रम का स्थान चतुराश्रमों में सर्वोपरि माना है[1] । महाभारत में इस आश्रम की गुरुता अन्य तीनों आश्रमों की गुरुत्ता के सम्मिलित योग के बराबर बतलाई है । प्रसाद सद्‌गृहस्थ की महत्ता को प्रतिपादित करते हैं । यह गृहस्थ ही भूखी और निर्वासित जातियों को अन्न दान देकर संतुष्ट कर सकता है[2] ।

गृहस्थी का कर्तव्य

गृहस्थी में प्रविष्ट होते ही गृहस्थी को वानप्रस्थियों, सन्यासियों, अनाथों, पशु-पक्षियों और निम्न जातियों की सेवा करना तथा स्वयं का पालन-पोषण करना ही प्रमुख उद्देश्य रहता है । 'कंकाल' उपन्यास में किशोरी मंगल को वस्त्र और पाठ्यपुस्तकें देकर सहायता प्रदान करतीं है[3] । 'अजातशत्रु' में मल्लिका शक्तिमती को पाशव-वृत्ति वाले क्रूरकर्मा पुरुषों के प्रति स्त्रियों का कर्त्तव्य बतलाती हुई कहती है—'स्त्रियों का कर्त्तव्य है कि पाशविक वृत्ति वाले क्रूरकर्मा पुरुषों को कोमल और करुणाप्लुत करें, कठोर पौरुष के अनन्तर उन्हें जिस शिक्षा की आवश्यकता है—उस स्नेह, शीतलता, सहन-शीलता और सदाचार का पाठ उन्हें स्त्रियों से ही सीखना होगा[4] ।

गृहस्थ जीवन को सुखी बनाने के लिए आपस में स्नेह होना आवश्यक है । परिवार में अशान्ति तथा गृह-कलह न होने पर ही एक दूसरे में इन शब्दों से स्नेह हो सकता है । अजातशत्रु में वासवी गृह-कलह के स्थान पर परिवार में इन शब्दों में स्नेह के भाव जागृत करना चाहती है—

'बच्चे बच्चों से खेलें, हो स्नेह बढ़ा उनके मन में,
कुल लक्ष्मी हो मुदित, भरा हो मंगल उनके जीवन में ।
वन्धु वर्ग हों सम्मानित, हो सेवक सुखी, प्रणत अनुचर,
शान्तिपूर्ण हो स्वामी का मन, तो स्पृहणीय न हो क्यों घर[5] ?

गृहस्थ के किसी भी सदस्य से कोई त्रुटि होने पर उसे गृह के वयोवृद्ध से क्षमा याचना करनी पड़ती है । क्षमा याचना करने से बड़े से बड़े अपराध से छुटकारा मिल जाता है । प्रसाद ने 'अजातशत्रु' में विरुद्धक से, पितृ द्रोही होने की क्षमा याचना इन शब्दों में करवाई है—पिता, मेरा अपराध कौन क्षमा करेगा ? पितृ-द्रोही को कौन ठिकाना देगा ? मेरी आंखें लज्जा से ऊपर नहीं उठती । मुझे राज्य नहीं चाहिए केवल आपकी क्षमा[6] । 'ऐसा कौन पिता होगा जो अपने हृदय को इतना कठोर करले, पुत्र

---

१. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या-काण्ड, १०६।२२
२. स्कन्दगुप्त, पृ० ११४
३. कंकाल, पृ० १०६
४. अजातशत्रु, पृ० १२७
५. अजातशत्रु, पृ० २६
६. अजातशत्रु, पृ० १०३

कितना ही बड़ा अपराध करले परन्तु उसके लिये तो वह पुत्र ही रहेगा[1] । इसके प्रति उत्तर में विरुद्धक का पिता प्रसेनजित उसे इन शब्दों में क्षमा करता है—'यह मेरा त्याज्य पुत्र है, किन्तु अपराध का मृत्यु दण्ड, नहीं-नहीं वह किसी राक्षस पिता का काम है । वत्स विरुद्धक उठो ! मैं तुम्हें क्षमा करता हूं[2] ।

वानप्रस्थाश्रम

गृहस्थ की अवधि को पूर्ण कर मनुष्य वानप्रस्थाश्रम में प्रविष्ट होता है । वह पचास वर्ष की अवस्था के उपरान्त गृहस्थ के विलाप को त्याग कर सुख-दुख से उठने के लिए इस आश्रम को ग्रहण करता है । प्रसाद ने बतलाया है कि इस आश्रम में मनुष्य अपने सोने के संसार को पैरों से ठुकरा कर पुत्र मुख दर्शन का सुख, माता का अंक, यश-वैभव सब कुछ छोड़ कर वैराग्य धारण कर लेता है[3] । वैरागी अतिथियों की सेवा के लिए तृण-कुटीर का सहारा लेता है[4] । कुशासन और कम्बल, कमण्डल और वल्कल मात्र ही उसके जीवन परिग्रह होते हैं[5] । मनुस्मृति में भी यही कहा गया है । कि दारैषणा, लोकेषणा आदि को छोड़ कर गृहस्थी वानप्रस्थ में प्रविष्ट करे[6] । इस आश्रम में पति और पत्नी दोनों ही एक साथ वैराग्य धारण करते हैं । अजातशत्रु में मगध नरेश तथा महारानी वासवी दोनों ने एक साथ वानप्रस्थ में प्रवेश किया है[7] । वासवी महाराज को जीवन की सारी क्रियाओं का अन्त केवल विश्राम में बतलाती हुई स्वतंत्र वृत्ति को आवश्यक समझती है[8] । 'चन्द्रगुप्त' में मौर्य ने भी शान्ति की आवश्यकता समझते हुए वानप्रस्थ ग्रहण किया है[9] । 'स्कन्दगुप्त' में भी स्कन्दगुप्त पुरगुप्त को युवराज वना कर वानप्रस्थ ग्रहण करता है[10] । मनुस्मृति में भी आश्रम के उक्त गुण उपलब्ध हैं[11] ।

सन्यासाश्रम

मनुष्य वानप्रस्थाश्रम के उपरान्त सन्यासाश्रम में प्रविष्ट होता है । सन्यास में में सन्यासी का कार्य आत्म-ज्ञान को बढ़ाना है । इस अवस्था में अपने गृहस्थ का मोह छोड़ कर वह सम्पूर्ण जगत् को ही अपना गृह मानता है । उसका मुख्य कार्य उपदेश देना होता है । प्रसाद-साहित्य में इस आश्रम का बहुत कम मात्रा में वर्णन मिलता है ।

---

१. अजातशत्रु, पृ० १३०
२. वही, पृ० १३०
३. आकाशदीप—वैरागी, पृ० ११४
४. वही, पृ० ११३
५. वही, पृ० ११३
६. मनुस्मृति, ६।१-२
७. अजातशत्रु, पृ० ३९
८. चन्द्रगुप्त, पृ० १८८
९. अजातशत्रु, पृ० ३७
१०. मनुस्मृति ६।१-३६
११. स्कन्दगुप्त, १४५

'चन्द्रगुप्त मौर्य' में चाणक्य मौर्य को काषाय गृहण करने की आज्ञा देता है[1], परन्तु इस काषाय ग्रहण करने का अर्थ विरक्ति से है। वैसे मौर्य वानप्रस्थ ग्रहण कर चुके हैं[2]। इस कारण यहाँ पर यह काषाय-ग्रहण का प्रयोग सन्यास ग्रहण करने के ही अर्थ में हो सकता है। मनुस्मृति में कहा गया है कि सन्यासी को मोटे वस्त्र कोपीन कंधा धारण करने चाहिये। उसे जीने और मरने की इच्छा को त्यात्य देना चाहिए[3]।

पुरुष और नारी-भेद

प्रसाद 'अजातशत्रु' में कारायण को शब्दों में पुरुष और स्त्री का भेद बतलाते हुए कहते हैं—'कठोरता का उदाहरण है पुरुष, और कोमलता का विश्लेषण है—स्त्री जाति। पुरुष क्रूरता है तो स्त्री करुणा है[4]—' इस विश्व में पुरुष और स्त्री के एक से कर्म नहीं हैं। दोनों के कर्मों में भेद है, इसी कारण पुरुष को कठोरता का तथा स्त्री को करुणा का प्रतीक माना है। दोनों के कामों में भेद हैं—'विश्व भर में सब कर्म सबके लिए नहीं हैं, इसमें कुछ विभाग हैं अवश्य। सूर्य अपना काम जलता-बलता हुआ करता है और चन्द्रमा उसी आलोक को शीतलता से फैलाता है। क्या उन दोनों से परिवर्तन हो सकता है? मनुष्य कठोर परिश्रम करके जीवन-संग्राम में प्रकृति पर यथाशक्ति अधिकार करके भी एक शासन चाहता है, जो उसके जीवन का परमध्येय है, उसका एक शीतल विश्राम है। और वह, स्नेह-सेवा-करुणा की मूर्ति तथा सान्त्वना के अभय-वरद हस्त का आश्रय, मानव-समाज की सारी वृत्तियों की कुंजी, विश्व-शासन की एक मात्र अधिकारिणी प्रकृति-स्वरूपा स्त्रियों के सदाचारपूर्ण स्नेह का शासन है[5]। दूसरी ओर स्त्रियों का प्रमुख कर्तव्य अपने कुल की सेवा-सुश्रुषा करना है।' कुलशील-पालन ही तो आर्थ ललनाओं का परमोज्ज्वल आभूषण है। स्त्रियों का वही मुख्य धन है[6]। परिवार को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए पुरुष और स्त्री दोनों ही प्रयत्नशील रहते हैं। दोनों ही परिवार के उत्तरदायित्वों को सम्हालते हैं। पुरुष का संबंध परिवार के बाह्य जीवन से तथा नारी का संबंध परिवार के आन्तरिक जीवन से होता है। इस प्रकार परिवार के सुख और सुविधा के लिए, परिवार के दो पहलू पुरुष और नारी का संयोग आवश्यक है।

परिवार में दाम्पत्य-जीवन का निर्वाह आवश्यक है। स्त्री-पुरुष, एक दूसरे के प्रति आकर्षित होने पर ही प्रजा-सृजन कर सकते हैं। सर्वप्रथम ब्रह्म अकेला था

---

१. चन्द्रगुप्त, पृ० २२०
२. वही, पृ० १८८
३. मनुस्मृति, ६।४४-४५
४. अजातशत्रु, पृ० १२५
५. अजातशत्रु, पृ० १२५
६. वही, पृ० ५४

उसकी इच्छा हुई 'मैं अकेला हूं, बहुत से उत्पन्न करूं[१]। इसी से सृष्टि का विकास हुआ। सृष्टि के विकास का प्रथम चरण स्त्री-पुरुष का सहवास रहा जिसका विकसित एवं मान्य रूप विवाह है।

विवाह

विवाह में किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं है[२]। उसमें नियमों का बंधन नहीं, सम्मिलन चाहिए[३], समर्पण[४] की भावना चाहिए। इसमें स्त्री और पुरुष का परस्पर विश्वासपूर्वक अधिकार, रक्षा और सहयोग[५] भी अनिवार्य है। हृदय के सम्मिलन, समर्पण के भाव के बिना, (धर्म) विवाह एक खेल मात्र[६] होगा, उसमें स्वतंत्र प्रेमसत्ता की स्वीकृति[७] नहीं होती और न झगड़े के विनिमय की सम्भावना का बहिष्कार ही होता है। प्रसाद, स्त्री-पुरुष के स्निग्ध मिलन को, जीवन की एक जटिल समस्या[८] बतलाते हुए, उसमें स्वतन्त्र चुनाव तथा स्वयंवर को सहायक न मानकर समझौते को ही उसका एकमात्र उपाय[९] बतलाते हैं। इस प्रकार विवाह स्त्री-पुरुष के सामाजिक नियम का एक समझौता है। जिसका सम्बन्ध सुख-दुख से अलग न होकर जन्म जन्मान्तर तक स्थायी रहता है। यह भारतीय संस्कृति में गृहस्थ का धार्मिक कर्तव्य है।

भेद एवं पद्धति

स्मृति साहित्य में ब्राह्म, देव, आर्य, प्राजापत्य, गान्धर्व, आसुर, 'पैशाच आदि आठ प्रकार के विवाहों का वर्णन मिलता है[१०]। अभिभावक स्वयं वर ढूँढ़कर कन्या का उससे विवाह करता है वह ब्राह्म विवाह कहलाता है। दैव-विवाह में यज्ञ कराने वाले पुरोहित से प्रभावित होकर अपनी कन्या उस पुरोहित को दक्षिणा स्वरूप देना है। आर्य विवाह में पुत्री-दान के समय पिता अपने भावी दामाद से अपनी कन्या के वदले एक गाय या बैल लेता है। प्रजापत्य विवाह में धर्माचरण करने के वचनों के साथ पूजा करके कन्या दी जाती। गान्धर्व विवाह वर-कन्या की स्वेच्छा पर आधारित होता

---

१. तैत्तिरीय उपनिषद् ब्रह्मानन्द वल्ली, ६
२. कंकाल, पृ० १७६
३. वही, १७६
४. वही, पृ० १७६
५. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ५३
६. वही, पृ० ५३
७. कंकाल, पृ० १७६
८. वही, पृ० २८६
९. वही, पृ० २८६
१०. मनुस्मृति —३।२१

'ब्राह्मो देवस्तथा आर्षः प्रजापत्यस्यथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमो धमः।'

—तथा यज्ञवल्य स्मृति १।५८।६१

है। यह प्रणाली वर और कन्या की वयस्क अवस्था पर निर्भर है। आसुर विवाह में कन्या पक्ष को धन देकर स्वेच्छा से कन्या प्राप्त की जाती है। राक्षस विवाह में कन्या का अपहरण किया जाता है। पैशाच विवाह में सुप्त, बेहोश और पागल कन्या के साथ समागम किया जाता है। समागम-कर्ता के इस पैशाच कर्म के कारण ही इस विवाह का नाम पैशाच पड़ा। यह विवाह सबसे निकृष्टतम कोटि का माना जाता है[१]। स्मृतियों की साँस्कृतिक पीठिका पर आधारित, उक्त विवाह-पद्धतियों में से बाल, गान्धर्व, आसुर तथा राक्षस प्रणालियों का सांकेतिक प्रतिरूप, प्रसाद-साहित्य में कई स्थलों पर परिलक्षित होता है।

बाल विवाह

प्रसाद की रचनाओं में कुछ ऐसे विवाह आये हैं जिन्हें हम बाल विवाह के अन्तर्गत रख सकते हैं। चन्द्रगुप्त कार्नेलिया का विवाह उसी कोटि का है। कार्नेलिया का पिता सिल्यूकस चन्द्रगुप्त मौर्य को अपने यहाँ न बुलाकर स्वयं चन्द्रगुप्त के यहाँ उपस्थित होता है और अपनी इच्छा से पुत्री कर्नेलिया और चंद्रगुप्त को एक-दूसरे का हाथ मिलाकर विवाह के बंधन में बाँधता है[२]। सुवासिनी और राक्षस के विवाह को भी इसके अन्तर्गत रखा जा सकता है। सुवासिनी राक्षस से प्रणय संबंधी प्रस्ताव को अपने पिता को कहलाने के लिए बाध्य करती है[३]। याज्ञवल्क्य स्मृति[४] में इस विवाह के विषय में लिखा गया है कि कन्या का पिता वर को अपने यहाँ बुलाकर शक्ति से अलंकृत की हुई कन्या का संकल्प करे। 'चन्दा' नामक कहानी में एक वृद्ध जिसे पिता तुल्य मान सकते हैं। चन्दा का हीरा से विवाह कराता है[५]। 'कंकाल' में गोस्वामी ने मंगल और गूजर बालिका गाला का विवाह इन शब्दों के साथ कराया था—'मैं इन दोनों पवित्र हाथों को एक बन्धन में बांधता हूं, जिसमें सम्मिलित शक्ति से वे लोग मानव सेवा में अग्रसर हों और यह परिणय समाज के लिए आदर्श हो[६]। 'प्रसाद ने अपने साहित्य में उक्त विवाहों को विधिपूर्वक न कराकर पिता या पिता तुल्य किसी वयोवृद्ध की इच्छा को ही सर्वमान्य मानकर संपादित कराया है। प्रसाद ने अर्जुन-चित्रांगदा के विवाह को विवाह मंडप में दिखाते हुए वैवाहिक कार्य सम्पन्न होने पर ब्राह्मणों से आशीर्वाद दिलवाया है—

'युग-युग यह जोड़ी जिये, अविचल होवे राज
प्रेमलता तुम दुर्दन की, फलै सुफल सुखसाज[७]।

---

१. मनुस्मृति, ३।२७-३४
२. चन्द्रगुप्त, पृ० २२२
३. वही, पृ० १७८
४. याज्ञवल्क्य संहिता, ५८।२६
५. कंकाल, पृ० २८६
६. छाया, पृ० २२
७. चित्राधार, बभ्रुवाहन, पृ० ३९

गान्धर्व विवाह

प्रसाद-साहित्य में कुछ विवाह वर और कन्या की स्वेच्छा से हुए हैं। इस प्रकार के विवाहों को मनुस्मृति में गान्धर्व विवाह की संज्ञा दी गई है[1]। प्रसाद ने इस प्रकार के विवाह विषय में स्वतंत्र रूप से कहीं वर्णन नहीं किया है परन्तु शास्त्रों के लक्षणों के आधार पर इन विवाहों को इस श्रेणी में रख सकते हैं। 'कामायनी' में मनु श्रद्धा का विवाह दोनों की इच्छा से हुआ है। लज्जा सर्ग में श्रद्धा 'आँसू से भीगे अंचल पर, अपनी स्मित रेखा से सन्धि-पत्र लिखती है[2]।' 'अजातशत्रु' में अजातशत्रु का वाजिरा से यह कथन—'यह जंगली हिरन इस स्वर्गीय संगीत पर चौकड़ी भरना भूल गया है। अब यह तुम्हारे-पाश में पूर्ण रूप से वद्ध है[3]' तथा उसे अँगूठी पहनाना, विवाह को प्रेरित करता है। वाजिरा भी स्वयं का, अजातशत्रु के लिए आत्म-समर्पण[4] कर चुकी है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' में सरमा का नागपरिणय[5] तथा जनमेजय मणि-माला का परिणय भी इसी प्रकार का है[6]। 'ध्रुवस्वामिनी' में ध्रुवस्वामिनी और चंद्र-और चंद्रगुप्त का परिणय भी इसी कोटि का है। दोनों में एक-दूसरे के प्रति पूर्व आकर्षण की स्थिति रही है। प्रसाद ने नाटक के अन्त में ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त का परिचय तो नहीं बतलाया है परन्तु 'राजाधिराज चन्द्रगुप्त की जय' तथा 'महारानी ध्रुवस्वामिनी की जय' दिखलाकर पाठकों को दोनों के परिणय की ओर संकेत किया है[7]। 'प्रणय-चिन्ह' कहानी में पथिक और रमणी का प्रेम भी इसी प्रकार का है[8]।

आसुर-विवाह

प्रसाद की रचनाओं में कुछ इस प्रकार के विववाम आये हैं जहाँ राजाओं ने निम्न वर्ग अर्थात दरिद्र कन्याओं से विवाह किए हैं। इन विवाहों में कन्या पक्ष की ओर से धन का लोभ रहा है। मनुस्मृति में इस प्रकार कन्या पक्ष को धन देकर प्राप्त की गई कन्या के विवाह को आसुर विवाह कहा है[9]।' 'अजातशत्रु' में कोशाम्बी का राजा उदयन एक मागन्धी नामक दासी को अपनी स्वामिनी बनाने की इच्छा व्यक्त करता है[10]। 'राज्यश्री' में मालवराज देवगुप्त सुरमा नामक मालिन से विवाह की याचना करता है[11]। इस प्रकार उदयन[12] और देवगुप्त[13] दोनों ही राजा हैं, श्रेष्ठ कुल

---

१. मनुस्मृति ३।३१
२. 'कामायनी, लज्जा सर्ग, पृ० १०६
३. अजातशत्रु, पृ० ११६
४. वही, पृ० ११७
५. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ३१
६. वही, पृ० ७८
७. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६३
८. आकाशदीप, प्रणय-चिन्ह, पृ० १५४
९. मनुस्मृति, ३।३२
१०. अजातशत्रु, पृ० ४५
११. राज्यश्री, पृ० २५
१२. अजातशत्रु, पृ० २१
१३. राज्यश्री, पृ० ६

के हैं। परन्तु मागन्धी दरिद्र कन्या[1] है तथा सुरमा मालिन[2] है । 'इन्द्रजाल' नामक कथा में बेला को, धन के लोभ से दलपति मैकू पहिले भूरे[3] को तथा बाद में ठाकुर[4] को देता है ।

राक्षस विवाह

मनुस्मृतिकार ने राक्षस-विवाह का लक्षण, कन्या का बलात् अपहरण बतलाया है। यह विवाह कन्या और उसके माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध होता है[5] । ध्रुव-स्वामिनी चंद्रगुप्त की की वाग्दता पत्नी थी जो समुद्रगुप्त की विजय यात्राओं में अप-हृत कर, उपहार स्वरूप लाई गई थी। चंद्रगुप्त समुद्रगुप्त द्वारा निर्वाचित, गुप्तकाल का युवराज था[6] परन्तु रामगुप्त ने छल और बल से, पुरोहित द्वारा कुछ आहुतियां दिलवाकर ध्रुवस्वामिनी के साथ (उसकी इच्छा के विपरीत), राक्षस विवाह किया था,[7] जिसमें उसने सुख-दुख में ध्रुवस्वामिनी का साथ न छोड़ने की प्रतिज्ञा की थी[8] । इस विवाह के सम्बन्ध में डा० जगन्नाथ प्रसाद का मत भी समर्थणीय है जिन्होंने इस विवाह को 'असम और राक्षस-विवाह कहा है[9] ।

एक पत्नीव्रत एवं बहुपत्नीकता

प्रसाद ने अपने साहित्य में अधिकांशत: एक पत्नीव्रत की प्रथा का उल्लेख किया है। बन्धुवर्मा, शर्वनाग, मातृगुप्त, चन्द्रगुप्त, सिंहरण, राक्षस, जरत्कारु, वासुकि, वेद, सोमश्रवा, प्रसेनजित्, अजातशत्रु, बंधुल, महापिंगल नरदेव, विशाख, देवदत्त, ग्रहवर्मा, अजीगर्त, विश्वामित्र, तानसेन, हीरा, मदन मोहन, श्यामलाल, मधुवन, अर्जुन, राम, कर्णदेव, आदि एक पत्नीक हैं। इस प्रकार की प्रथा का उल्लेख ऋग्वेद, में मिलता है[10] ।

प्रसाद के साहित्य का अवलोकन करने पर यह विदित होता है कि समाज में गोण रूप से उच्च राजकीय वर्गों में वहुपत्नीक की प्रथा भी प्रचलित थी। मनु की दो पत्नियों, बिम्बसार की दो रानियों, उदयन की तीन रानियों, जनमेजय की दो रानियों तथा महाराज कुमारगुप्त की दो रानियों का उल्लेख हुआ है । भारतीय संस्कृति में वहुपत्नीत्व की प्रथा भी प्रचलित रही है। ऋग्वेदिक समाज[11], भागवत[12] तथा ऐतरेय

---

१. अजातशत्रु, पृ० ४४
२. राज्यश्री, पृ० १२
३. इन्द्रजाल, पृ० ४
४. वही, पृ० ८-९
५. मनुस्मृति, ६७।३३
६. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६०
७. वही, पृ० २५
८. वही, पृ० ६२
९. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २०४
१०. ऋग्वेद, १।११७।७: २।९७।१, १०।३९।३
११. उपाध्याय, बी० ए०, वीमैन इन ऋग्वेद, पृ० ११२
१२. भागवत पुराण, ११

ब्राह्मण[1] में इस प्रथा का उल्लेख मिलता है । भागवत में श्रीकृष्ण की १६ हजार रानियों का तथा ऐतरेय ब्राह्मण में हरिश्चन्द्र की १०० पत्नियों का उल्लेख मिलता है।

प्रसाद ने प्रमुख रूप से एक पत्नीक प्रथा को प्रमुखता दी है । पुराणों में भी एक पत्नीक प्रथा का समर्थन किया गया है अग्निपुराण में स्पष्ट कहा गया है, कि अनेक पत्नियों से विवाह करने पर पुरुष अपनी जाति को खो देता है[2] ।

वैधव्य

प्रसाद ने मदन की मां[3] तथा रोहितास दुर्ग के मंत्री चूड़ामणि की दुहिता ममता[4] को विधवा बतलाया है ।

'कंकाल' की घन्टी भी बाल-विधवा है । प्रसाद के शब्दों में 'हिन्दू विधवा संसार में सबसे तुच्छ निराश्रय प्राणी है[5] ।'

पुर्नविवाह प्रथा

प्राचीन भारतीय संस्कृति को देखने से विदित होता है कि समाज में नारी के पुर्नविवाह की प्रथा प्रचलित थी । रामचरित मानस में तारा बालि की मृत्यु पर सुग्रीव से विवाह करती है[6] । ऋग्वेद में विधवाओं को पुर्नविवाह की अनुमति दी गई है[7] । ब्रह्मपुराण में बतलाया गया है कि पुर्नविवाह उसी स्थिति में सम्भव हो सकता है जब वह स्त्री या तो बालविधवा हो या बलात् किसी व्यक्ति ने उसका अपहरण किया हो[8]।

प्रसाद ने इसी को आधार मान कर पुर्नविवाह की प्रथा को स्थान दिया है । चित्तौड़-उद्धार कहानी में मालवदेव की पुत्री राजकुमारी जो सात वर्ष की अवस्था में विधवा हो गई थी, का विवाह पुनः हम्मीर से करवाया है । 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में राजगुप्त की मृत्यु के उपरान्त ध्रुवस्वामिनी का चन्द्रगुप्त से 'राजाधिराज चन्द्रगुप्त की जय' और 'महादेवी ध्रुवस्वामिनी की जय' में विधवा-विवाह ध्वनित होता है।

सती-प्रथा

प्रसाद ने नारी की विधवा अवस्था का चित्रण करने के साथ ही पद्मनी[9],

---

१. ऐतरेय ब्राह्मण, ३३।१

२. अग्निपुराण, १६८।२८ से ३८

३. छाया, मदन मृणालिनी, पृ० ११०

४. आकाशदीप, ममता, पृ० २५

५. आकाशदीप, ममता, पृ० २५

६. रामचरित मानस, किष्किन्धाकाण्ड

७. मजूमदार, पृ० ११

८. 'यदि सा बाल विधवा बलात्यक्त्वाधवा क्वचित् ।
तथा भूयस्तु संस्कार्याः गृहीता येव केवचित् ॥' ब्रह्मपुराण अपरार्क (पृ० ९७) द्वारा उद्धृत । पर आधुनिक ब्रह्मपुराण में यह श्लोक अप्राप्य है ।

९. लहर, प्रलय की छाया, पृ० ६४

संयोगिता[1] और जयमाला[2] के सती होने की ओर संकेत किया है। राज्यश्री भी चिता प्रज्ज्वलित करके प्रवेश करना चाहती है। वह चिता की ज्वाला में जल कर स्त्रियों के पवित्र कर्तव्य का पालन करना चाहती है[3]। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में कोमा, ध्रुवस्वामिनी से शकराज के शव की मांग करती है। ध्रुवस्वामिनी उसे प्रेम के नाम पर शकराज के शव के साथ जलने को कहती है[4]' प्रसाद सती होना स्त्रियों का परम कर्तव्य मानते हुए उसका पालन करना आवश्यक बतलाते हैं[5]। इसी प्रकार पुराणों में सती-प्रथा को प्रशंसनीय बतलाया गया है[6]। सतीत्व के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति होती है[7]।

दाम्पत्य-जीवन

भारतीय संस्कृति में स्त्री और पुरुष का स्थान उच्च है। शतपथ ब्राह्मण[8] तथा महाभारत[9] में स्त्री को पुरुष की आत्मा का आधा भाग मान कर स्त्री के विना मनुष्य का जीवन अपूर्ण बतलाया है। इस प्रकार स्त्री-पुरुष जीवन-गाड़ी के दो पहिये हैं। दोनों पहिये बराबर रहने चाहियें तथा साथ-साथ चलने चाहिये तभी जीवन-गाड़ी अच्छी प्रकार चल सकती है। इसीलिए स्त्री को पुरुष की अर्धांगिनी बतलाया है[10]।

प्रसाद स्त्री को करुणा और त्याग की मूर्ति बतलाते हुए उसे पुरुष के समक्ष महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं—

'तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में, कुछ सत्ता है नारी की,
समरसता सम्बन्ध बनी, अधिकार और अधिकारी की[11]।'

भारतीय नारी का सबसे बड़ा गुण पतिपरायण होना है। जयमाला को अपने पति के अटल विश्वास के सम्मुख नतमस्तक हो कर क्षमा मांगनी पड़ी है तथा उसकी पति-भक्ति की चरम सीमा, उसके पति के साथ सती होने में दीखती है[12]। वह पति को दुखी अवस्था में देख कर उसे बचाने का प्रयत्न करती है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' की सरमा अपने पति को विपत्तिकाल में देख कर कह उठती है—'देवता! तुम संकट में हो, यह सुन कर भला मैं कैसे रह सकती हूं। मेरा अश्रु-जल समुद्र वन कर तुम्हारे और शत्रु के बीच गर्जन करेगा, मेरी शुभ कामना तुम्हारा वर्ग बन कर तुम्हें सुरक्षित

---

१. चित्राधार, प्रायश्चित, पृ० ९२
२. स्कन्दगुप्त, पृ० १३४
३. राज्यश्री, पृ० ६२-६३
४. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ५३
५. राज्यश्री, पृ० ६२
६. मार्कण्डेय पुराण, २१-१३
७. ब्रह्मपुराण, ८०।७६-७७
८. शतपथ ब्राह्मण, ५।२।१।१०
९. महाभारत, आदिपर्व, ७४।४०
१०. शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति, पृ० १३७
११. कामायनी, इड़ा सर्ग, पृ० १६२
१२. स्कन्दगुप्त, पृ० ६८, १३४

रखेगी। तुम्हारे लिए अपमानित सरमा राजकुल में दासी बनेगी[1]।

दाम्पत्य प्रेम भारतीय नारी के अनुकूल है जो अपने पति के लिए आत्मोत्सर्ग करने में अपना परम सौभाग्य समझती है। शीला अपने पति सोमश्रवा की 'आर्य ललनाओं के समान ही अपने पति के सत्कर्मों की सहकारिणी' है[2]। शीला अपने पति की धर्मपत्नी होने के नाते उसके मांगलिक कृत्यों, अग्निहोत्र आदि में सहयोग दे कर पतिव्रत धर्म का पालन करती है। 'अजातशत्रु' में वासवी अपने पति बिम्बसार की सेवा में सदैव तत्पर रहती है। वह अपनी मधुर वाणी द्वारा बिम्बसार के उत्तेजित हृदय को शान्त करती है। वह अपने पति की इच्छानुसार अपनी प्रिय वस्तु रत्नजड़ित स्वर्ण-कंकण भिक्षुकों को दे देती है[3]। बिम्बसार भी वासवी के इन अलोकिक गुणों को देख कर, चकित हुए बिना नहीं रहता। वह कह उठता है—'वासवी! तुम मानवी हो कि देवी[4]।' 'आंधी' कहानी में रामेश्वर और मालती का दाम्पत्य जीवन कितना सफल है। उनमें बतलाया गया है कि 'रामेश्वर एक सफल कदम्ब है, जिसके ऊपर मालती की लता अपनी सेकड़ों उलझनों से, आनन्द की छाया और आलिंगन का स्नेह-सुरभि डाल रही है[5]।' दोनों का दाम्पत्य जीवन कितना विनोद-प्रिय है श्रीनाथ के शब्दों में—'बालिका मालती और किशोर रामेश्वर! हिन्दू-समाज का एक परिहास—एक भीषण मनोविनोद। तो भी मैंने देखा, कहीं भूचाल नहीं हुआ, कहीं ज्वालामुखी नहीं फूटी। बहिया ने कोई गांव बहाया नहीं[6]।' 'कलावती को शिक्षा' कहानी में कलावती और श्यामसुन्दर का दाम्पत्य-प्रेम अत्यन्त ऊँचा है। कलावती पति-प्रेम के कारण ही उससे अगले जन्म में मिलने की बात करती है[7]।

मधुवन और तितली, इन्द्रदेव और शैला सफल दाम्पत्य जीवन के प्रतीक हैं। तितली पति-परायण पत्नी है। वह अपने कर्म और स्वावलम्बन से व्यस्त जीवन में मधुवन को विस्मृत नहीं कर सकती। उसके हृदय में जीवन-साथी का वियोग रह रह कर हृदय की व्यथा को बढ़ाता ब। उसकी पति-प्रेम की निष्ठा समाज की प्रताड़ना से पराभूत नहीं हो पाती। उसका कहना है—'संसार भर उनको चोर, हत्यारा और डाकू कहे, किन्तु मैं जानती हूं कि वह ऐसे नहीं हो सकते। इसलिए मैं कभी उनसे घृणा नहीं कर सकती। मेरे जीवन का एक-एक कोना उनके लिए, उस स्नेह के लिए, संतुष्ट है[8]।' इस विश्वास की राह में अन्त में उसका चिर-जीवन साथी मधुवन लौट

---

१. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ३१
२. वही, पृ० ७७
३. अजातशत्रु, पृ० ४०
४. अजातशत्रु, पृ० ११४
५. आंधी, पृ० १५
६. वही, पृ० १५
७. प्रतिध्वनि, कलावती की शिक्षा, पृ० ६१
८. तितली, पृ० २६७

ही आता है।

प्रसाद-साहित्य में पतिव्रत धर्म के कुछ उदाहरण ऐसे भी हैं जिनमें पति या पत्नी के कुमार्ग की ओर जाने पर उन्हें सन्मार्ग की ओर लाया गया है। 'कामायनी' में श्रद्धा अपने पति मनु का पथ-प्रदर्शन करने वाली है। मनु अपनी पत्नी श्रद्धा की उपेक्षा करते हुए विलासिता के गर्त में डूब कर सारस्वत प्रदेश में इड़ा की ओर आकृष्ट होते हैं। उनके हृदय में चंचलता, आसक्ति और अहंकार जैसी दुर्वृत्तियां स्थान पा लेती हैं। परन्तु उनकी आदर्श पत्नी श्रद्धा के सहयोग से ही धीरे-धीरे इन दुर्वृत्तियों का निराकरण होता है और वह ज्ञान, कर्म और इच्छा के मार्ग से सरसता को प्राप्त हो कर अखण्ड आनन्द का लोभ प्राप्त करते हैं। 'जनमेजय का नागयज्ञ' में दामिनी गुरुकुल के आचार्य वेद की पत्नी है परन्तु वह अपने कामोन्माद में वेद के शिष्य उत्तंक की ओर आसक्त होती है। वह अपने पति की किंचितमात्र भी परवाह न करते हुए उत्तंक के सामने अपनी वासना का नग्न चित्र प्रस्तुत करते हुए कह उठती है—'तो चले आओगे ? आज मैं स्पष्ट कहना चाहती हूं कि[1]......।' दामिनी में विवेक के जागृत होने पर आश्वसेन की कामुक चेष्टाओं पर उसे फटकारती है[2] और अपने सतीत्व की रक्षा करते हुए अपने पति से पुनः अपने अपराधों की क्षमा याचना करती है। माणवक उसकी सच्चरित्रता की साक्षी देता हुआ वेद से उसे क्षमा करने का अनुरोध करता है—'आर्य ! क्षमा से बढ़ कर और किसी वात में पाप को पुण्य बनाने की शक्ति नहीं है। मैं भली-भांति जानता हूं, मानसिक दुर्बलताओं के रहते हुए भी यह स्त्री आचरतः पवित्र और शुद्ध है[3]।' अजातशत्रु की छलना और मागधी भी इसी प्रकार की नारियां हैं। पति से विमुख होकर काम करती हैं। छलना नारी-हृदय की स्वाभाविक प्रवृत्तियों के विरुद्ध चलने से अपने उद्देश्यों में असफल होती है। वासवी के शब्दों में—'नारी का हृदय कोमलता का पालना है, दया का उद्गम है, शीतलता की छाया है और अनन्य भक्ति का आदर्श है[4]।' छलना पुरुषार्थ के ढोंग से अपने पति की विद्रोहिनी वन जाती है। अन्त में वह अपने दुराचरणों से लज्जित होती हुई पति बिम्बसार के सम्मुख क्षमा मांगती है। 'नाथ ! मुझे निश्चय हुआ कि वह मेरी उदण्डता थी। वह मेरी कूट-चातुरी थी, दम्भ का प्रकोप था। नारी जीवन के स्वर्ग से वह वंचित कर दी गई। ईंट-पत्थरों के महल रूपी वन्दीगृह में मैं अपने को धन्य समझने लगी थी। दण्डनायक ! मेरे शासक ! क्यों न उसी समय शील और विनय के नियम-भंग करने के अपराध में मुझे आपने दण्ड

---

१. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ४२
२. वही, पृ० ६०
३. वही, पृ० ७१
४. अजातशत्रु, पृ० १११-११२

दिया । क्षमा करके, सहन करके, जो आपने इस परिणाम की यंत्रणा के गर्त में मुझे डाल दिया था, वह मैं भोग चुकी । उबारिये[१] ।' 'स्कन्दगुप्त' की रामा के हृदय में पति के प्रति अनुराग है, परन्तु वह अपने पति को सन्मार्ग की ओर लाने के लिये कोमलता और कठोरता का आलम्बन लेती है । वह पहिले कठोरता का अवलम्ब लेकर कहती है—'लोभ के वश मनुष्य से पशु हो गया है । रक्त-पिपासु ! क्रूर-कर्मा मनुष्य ! कृतघ्नता की कीच का कीड़ा ! नरक की दुर्गन्ध ! तेरी इच्छा कदापि पूर्ण न होने दूंगी[२] ।' शर्वनाग अपनी पत्नी रामा के इस कठोरतम व्यवहार से सद्मार्ग की ओर नहीं आने पर वह विनम्रता से उसके पैर पकड़कर प्रार्थना करती हुई उसके विवेक को जागृत करने का प्रयत्न करती है—'तुम्हारा यह झूठा सत्य है । ऐसी प्रतिज्ञाओं का पालन सत्य नहीं कहा जा सकता; ऐसे धोखे के सत्य को लेकर ही संसार में पाप और असत्य बढ़ते हैं । स्वामी ! जान ाओ[३] ।' इस प्रकार रामा अपने जीवन को संकट में डालकर अपने पति को मृत्यु के जाल से ही नहीं बचाती वरन् वह उसे सनुष्यत्व को प्राप्त कराती है ।

भारतीय संस्कृति में नारी का धर्म व्रत और नियम एक ही है, वह है मनसा, वाचा और कर्मणा से पति-पद प्रेम[४] । भारतीय नारी को अपने पति को आपत्तिकाल में सहयोग देना चाहिये । आपत्तिकाल का सहयोग ही उसके पतिप्रेम की कसौटी है[५] । पुराणों में नारी की महत्ता का वर्णन मिलता है[६] । पति नारी का परमेश्वर होता है, वह उसके लिए परागति है । वह पत्नी के लिये देवता या नारायण होता है[७] । उसके सर्वसुख पति में ही समाहित होते हैं[८] । वह इस जीवन का और अर्थ का स्वामी होता है । पत्नी को उसका अनुसरण करना चाहिये[९] । भागवतकार ने भी पति को परमेश्वर की संज्ञा देते हुए पत्नी को पति की सेवा, उसके अनुकूल रहना, पति के सम्बन्धियों को प्रसन्न रखना पतिव्रता स्त्रियों का धर्म बतलाया है[१०] ।

---

१. अजातशत्रु, पृ० १४४

२. स्कन्दगुप्त, पृ० ५९

३. स्कन्दगुप्त, पृ० ६०

४. रामचरित मानस, अरण्य० ४।९

५. धीरज धर्म मित्र अरु नारी ।
आपद काल परखियऊ चारि ।। आर० ४।७

६. यतो मर्त्ता परागति : मार्कण्डेय पुराण १६।६३

७. 'पतिरहि देवता स्त्रीनाम् पतिरेवा परायणम् । मत्स्यपुराण १५४।१६५

८. मत्स्यपुराण १५४।१६

९. मार्कण्डेय पुराण २१०।१७

१०. स्त्रीणां च पति देशनां तच्छुश्रूषानुकूलता ।
तद्वन्धुण्वनुवृतिश्च नित्यं तद्व्रत धारणम् —भागवत ७।११।२५

नारी-समाज

प्रसाद ने अपने साहित्य में नारी का आदर्शवादी दृष्टिकोण ग्रहण किया है। वह करुणा और त्याग की मूर्ति है। प्रसाद पर नारी के विषय में स्वयँ के पारिवारिक जीवन, युगवातावरण तथा युग साहित्य का प्रभाव पड़ा है। इसी कारण प्रसाद ने नारी समाज को अपने साहित्य में उच्च स्थान प्रदान किया है। उसका अवलोकन करने के लिए उसे हम निम्न वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—दुर्बल नारी सौत, सौतिया डाह, प्रबुद्ध संयत नारी तथा नारी आदर्श।

दुर्बल नारी

प्रसाद की रचनाओं में दो प्रकार की दुर्बल नारियां दृष्टिगत होती हैं। पहली वे नारियां हैं जो अपनी कुत्सित प्रवृतियां एवं परिस्थितियों से प्रभावित होकर अपने आदर्श की सीमा लांघकर गलत मार्ग की ओर प्रवृत होती है परन्तु अन्त में जाकर अनेक ठोकरों के परिणामस्वरूप वे आदर्शोन्मुख मार्ग की ओर प्रवृत होती हैं। इस श्रेणी में दामिनी, सुरभा, छलना, मागन्धी, शक्तिमती तथा सुवासिनी को रख सकते हैं। दामिनी गुरुकुल के आचार्य वेद की पत्नी हैं। परन्तु वह अपने पद और मर्यादा का तनिक भी ध्यान न देते हुए विषय वासना में पथ-भ्रष्ट होकर अपने पति के शिष्य उत्तंक की ओर अनुरक्त होना चाहती है। परन्तु अन्त में उसमें विवेक जागृत होता है, वह अपने पति के सम्मुख क्षमा याचना करते हुए सन्मार्ग की ओर प्रवृत होती है। 'राज्यश्री' की सुरमा अपने यौवन के उन्माद एवं राजरानी होने की महत्वाकांक्षा में देवगुप्त की ओर अनुरक्त होती है। वह पुनः शान्तिभिक्षु की ओर प्रवृत होती है, परन्तु उसके हत्या और लूट के कृत्यों को देखकर सुरमा के हृदय में सात्विक परिवर्तन होता है। 'अजातशत्रु' की छलना के हृदय में महत्वकांक्षा की भावना घर कर गई है। वह स्वाभाविक और प्रमाद के वशीभूत राजपद प्राप्त करने की अभिलाषिनी है, परन्तु अपनी स्वाभाविक प्रवृतियों के विरुद्ध चलने के कारण वह असफल होती है। उसे वाणी द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। वह पति के सम्मुख अपने कुकृत्यों की क्षमा मांगकर सन्मार्ग की ओर प्रवृत होती है। मागन्धी का रूप सौन्दर्य पहले गौतम को आकर्षित करना चाहता है, परन्तु वह असफल होता है। मागन्धी राजरानी बनती है। पुनः इस पद से पतित होकर वैश्या बनती है। विरुद्धक छली जाती है। अन्त में गौतम के आश्रम में उसे शांति मिलती है। शक्तिमती प्रसेनजित की पत्नी है। वह अपने पुत्र की विद्रोही भावनाओं को भड़काती हैं। अपने पति के विरुद्ध राज्य प्राप्ति हेतु षड्यन्त्र रचना चाहती है। अन्त में मल्लिका के सम्पर्क में आश्रय पाती है। सुवासिनी अपनी विवशता के कारण चाणक्य से प्रेम होते हुए राक्षस की ओर अनुरक्त होती है। फिर

नन्द की वासनापूर्ति में सहायक होती है। पुनः राक्षस में ही अपने को आत्मसात् करती है।

दूसरी श्रेणी में वे नारियां आती हैं, जो अपनी वासनात्मक प्रवृति के कारण कुपथ की ओर प्रवृत होती हुई अपना जीवन समाप्त करती है। इस श्रेणी में विजया, और अनन्त देवी आती हैं। विजया धन एवं रूप के उन्माद में देवसेना की बलि कराने को प्रेरित होती है। वह भटार्क पर मुग्ध होती है, फिर पुरगुप्त की ओर अनुरक्त होती है। अन्त में धन के आधार पर स्कन्दगुप्त के हृदय को खरीदना चाहती है। वह प्रेम के मार्ग में धोखा खाकर आत्महत्या कर लेती है। अनन्तदेवी महत्वाकाँक्षा के उन्माद में, सम्राट को अपनी कोमलता एवं सुकुमारता के प्रदर्शन से, अपनी ओर आकृष्ट करती है। वह विलासिता के मद में भटार्क की ओर आसक्त होती हैं। अपने पुत्र के समक्ष निर्लज्जतापूर्वक मद्यपान करती है।

प्रसाद ने दुर्बल नारी के दूषणों को बतलाते हुए उन्हें सन्मार्ग की ओर प्रेरित किया है। कल्याणी के नारी अंक में नारी के अनेक दूषण बतलाते हैं। उनमें प्रमुख कलह, निन्दा, ईर्ष्या, आलस्य, व्यभिचार आदि हैं[1]। रामायण में नारी के दोषों को बतलाते हुए कहा गया है कि कुछ नारियां ऐसी होती हैं जो पति की निर्धन अवस्था में उस पर अनेक दोषारोपण करके, उन्हें त्याग देती हैं। वे असत्यवादिनी, मन में विकार पैदा करने वालों और हृदयहीन होती हैं। कोई उन्हें पहिचान नहीं सकता। उनके मन में पाप उत्पन्न होते रहते हैं। जिससे प्रेम किया था, उससे द्वेष करने लगती हैं। वे किसी के उत्तम कुल, उपकार, उपदेश, आभूषण तथा पूर्ण स्वतन्त्रता पाकर भी किसी के अनुकूल नहीं होती[2]।

सौत

सौत का अर्थ एक व्यक्ति या राजा के अनेक स्त्रियों का होना है। उन स्त्रियों में आपसी सम्बन्ध सौत का होता है। प्रसाद की कुछ रचनाओं में सौत का वर्णन मिलता है। 'अजातशत्रु' में बिम्बसार की रानियां वासवी और छलना, उदयन की रानी पद्मावती, मागन्धी और वासदत्ता, प्रसेनजित् की रानियां मल्लिका और शक्तिमती तथा 'स्कन्दगुप्त' में महाराज कुमारगुप्त की रानियां देवकी और अनन्तदेवी सौत हैं। प्रसाद ने इसकी पृष्ठभूमि प्राचीन इतिहास से ग्रहण की है। दशरथ के तीन रानियां कौशल्या, कैकई और सुमित्रा थीं। आपस में सभी सौत थीं[3]।

---

१. कल्याण, नारी अंक (नारी के दूषण) पृ० २६८, सन् १९४८
२. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, ३९।२१-२३
३. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग १८

सौतिया डाह

जब एक राजा की दो रानियों में आपस में मनमुटाव हो जाता है, तब वे एक-दूसरे को देखकर जलने लगती हैं तथा एक-दूसरे को मारने का प्रयत्न करती हैं, उस समय उनके अन्तस्थल में एक दूसरे के प्रति डाह को स्थान मिलता है। 'अजातशत्रु' की छलना और मागन्धी तथा 'स्कन्दगुप्त' की अनन्तदेवी इसी प्रकार की नारियां हैं। ये महत्वाकांक्षा, क्रूरता और कुटिलता से महत्व पद की अभिलाषिणी हैं। छलना में स्वाभिमान और प्रतिहिंसा की भावना प्रबल है। वह अपनी सौत वासवी को पग-पग पर अपने व्यंग्यवाणों द्वारा अपमानित करती है। वह वासवी को पटरानी के रूप में नहीं देख सकती। उसमें प्रतिहिंसा की भावना जागृत हो जाती है। वह वासवी के सामने आकर ललकारती है—'वासवी, सावधान! मैं भूखी सिंहनी हो रही हूं[1]। 'उदयन की रानी मागन्धी अपनी सौत पद्मावती पर मतिभ्रष्ट होने का षड्यंत्र रचती है। उस पर कटूक्ति करती हुई उदयन को उपदेश देती है—'मगध के राजमन्दिर में गुड़ियों का स्वांग अच्छा, कौशाम्वी, इस पाखड से बची रहे तो बड़ा उत्तम हो। स्त्रियों के मन्दिर में उपदेश क्यों—क्या उन्हें पतिव्रत धर्म छोड़कर किसी और भी धर्म की आवश्यकता है[2]?' उदयन उस पर संदेह करने लगता है और उसका अन्त करना चाहता है, परन्तु वह अपने चरित्र में सहिष्णुता तथा पतिपरायणता प्रदर्शित करती है। 'स्कन्दगुप्त' की अनन्तदेवी नियमों के प्रतिकूल देवकी के पुत्र, युवराज स्कन्दगुप्त के स्थान पर अपने दुर्बल पुत्र पुरगुप्त को युवराज बनाने में प्रयत्नशील है दूसरी ओर वह कुमारगुप्त की विलास-प्रियता और सहपत्नी के षड्यन्त्र से देवकी को पति सुख से वंचित रखती है। वह अपनी सौत देवकी की हत्या का आयोजन करने का प्रयत्न करती है। वह देवकी से कहती है—'व्यंग्य की विष-ज्वाला रक्त-धारा से भी नहीं बुझती देवकी! तुम मरने के लिए प्रस्तुत हो जाओ[3]।'

सौतिया डाह की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि रामायण में कैकेयी के चरित्र में देखी जा सकती है। मन्थरा कैकेयी को भड़काने का प्रयास करती है। वह कैकेयी से सौत के लड़के की उन्नति देख कर उसे व्यथित करने का प्रयत्न करती है[4]। कैकेयी सौत पुत्र को अपने पुत्र के सम्मुख शासक होता हुआ नहीं देख सकती। वह राम से उनके पिता तथा स्वयं की प्रतिज्ञा को सत्य कराने के लिए चौदह वर्ष का वनवास तथा भरत के राज्याभिषेक की आज्ञा देती है[5]।

---

१. अजातशत्रु, पृ० ११०
२. वही, पृ० ४३
३. स्कन्दगुप्त, पृ० ६२
४. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, ८।४
५. वही, १८।३०-३६

प्रबुद्ध एवं संयत नारी

प्रबुद्ध एवं संयत नारी के अन्तर्गत प्रसाद की जागृता और पतिव्रता नारियों को रख सकते हैं। सुविधा की दृष्टि से प्रबुद्ध एवं संयत नारियों को राष्ट्रसेवी और समाजसेवी वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

राष्ट्रसेवी एवं समाजसेवी नारियां

प्रसाद की रचनाओं में राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का अंकन बड़ी सफलतापूर्वक हुआ है। प्रसाद ने विशेष रूप से नारियों के माध्यम से युग की राष्ट्रीय भावना को आर्य-संस्कृति की दृढ़भूमि पर लाकर खड़ा किया और वीर रस द्वारा जन-मानस में उसका मन्त्र फूंका। प्रसाद साहित्य में प्राचीन काल के विदेशियों की पराजय में भारत की राष्ट्रीय भावना का जो गौरव और उल्लास निहित है वह प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना को आलोकित करता है। इस राष्ट्रीय-भावना के अन्तर्गत एकता, त्याग और आत्मोत्सर्ग की भावना प्रबल है। कमला, रामा, जयमाला और अलका स्वदेशानुरागिनी नारियां हैं। इनमें से कमला और रामा में स्वामिभक्ति प्रवल है। कमला सेनापति भट्टार्क की माता है। उसे स्वदेश विरोधी कुकृत्यों से दुख होता है, वह भट्टार्क को स्वदेश-प्रेम की ओर आकृष्ट करती है। उसे साम्राज्यविरोधी एवं स्वामिभक्ति हीन प्रवृत्ति के लिए लांछित करती है। रामा स्वामिभक्ति के कारण देवकी की सेवा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करना चाहती है। जब उसका पति षड्यन्त्र में पड़ कर देवकी का वध करना चाहता है तो वह देवकी को उसकी सूचना देती है। बाद में वह अपने पति को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करती है। जयमाला में स्वदेश-प्रेम की भावना प्रबल है। उसमें नारी-सम्मान एवं राज्य का लोभ है परन्तु अपने पति के अटल निश्चय के आगे सिर झुका कर क्षमा मांगती है। वह स्कन्दगुप्त को मालव का सिंहासन सर्मपित करती हुई कहती है—'देव ! यह सिंहासन आपका है, मालवेश का इस पर कोई अधिकार नहीं[1]।' अलका और कल्याणी भी इसी प्रकार की नारियां हैं। अलका में स्वदेशानुराग, साहस और वीरता की भावना प्रवल है। वह चाणक्य, चन्द्रगुप्त और सिंहरण से प्रभावित होकर स्वदेश-सेवा को अपना लक्ष्य बनती है। वह स्वदेश-सेवा के लिए पर्वतेश्वर की सेना में नट-नटी का स्वांग करती है। मालवदुर्ग की रक्षा के लिए एक सैनिक की भांति तत्पर रहती है।

उपन्यासों में 'तितली' की शैला और तितली तथा 'इरावती' की कालिन्दी भी इसी प्रकार की नारियां हैं। शैला और तितली समाज के सुधार कार्य-क्रम में सक्रिय सहयोग देती हैं। शैला विदेशी रमणी होने पर भी ग्राम-जीवन को सुन्दर मानती है।

---

१. स्कन्दगुप्त, पृ० ७१

वह ग्रामीण व्यक्तियों से मिल कर उनकी समस्याओं का अध्ययन करती है तथा गांव के किसानों की सेवा करना ही अपने जीवन का उद्देश्य समझती है । 'तितली' का चरित्र गरिमामय है । वह अन्य व्यक्तियों के जीवन-निर्वाह के जटिल प्रश्नों को सुलझाने का प्रयत्न करती है । कन्या पाठशाला द्वारा विद्या दान करती है । समाज से अभि-शिप्त बच्चों का वह पालन करती है । कालिन्दी एक वीर और साहसी नारी है । उसकी धमनियों में नन्द वंश का रक्त है । मौर्यों ने नन्द वंश को निर्मूल करने का प्रयत्न किया था अतः वह विद्रोहियों की गुप्त संस्था का संगठन करके मौर्य साम्राज्य का नाश करना चाहती है । वह अग्निमित्र से कहती है—'मौर्यों ने नन्दों का विनाश किया था । मैं मौर्यों का विनाश करूँगी[१] ।'

प्रसाद भारतीय संस्कृति के अनन्य भक्त थे, अतः उन्होंने भारतीय इतिहास का अवलोकन करते हुए उसके आधार पर अपने साहित्य का निर्माण किया है । उन्होंने राष्ट्रसेवी नारियों में वीरांगना, कर्मदेवी, कमलावती, कर्णवती, तारावाई, दुर्गादेवी, हाड़ी रानी आदि नारियों की वीर भावनाओं को भरने का प्रयास किया[२] ।

नारी आदर्श

प्रसाद की गहन अनुभूति और अध्ययन की विविधता के कारण उन्होंने अपने साहित्य में नारी का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है । इसके लिये उन्होंने ऐतिहासिकता तथा अन्य पात्रों में अपनी, कल्पनामयी तूलिका से रंग भरे हैं । इसी के फलस्वरूप उनके साहित्य में श्रद्धा, जानकी, मनसा, वासवी, मल्लिका, मालविका, देवसेना, राज्य-श्री कार्नेलिया, तारा, घंटी, तितली तथा शैला आदि कितनी ही नारी पात्र हैं जिन्होंने अपने चरित्र द्वारा पाठकों को प्रभावित किया है । गुण-अवगुणों की दृष्टि से प्रसाद के नारी पात्रों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—उत्तम, मध्यम तथा निम्न । प्रथम श्रेणी में वे नारी पात्र हैं जो त्यागी हों, सुख-दुख में विचलित न हों । ये अधिकतर आदर्श की ओर प्रभावित होते हैं । 'इन पात्रों के अन्दर दो विरोधी भावों का संघर्ष होता रहता है और ऊपर से ये प्रकृतिस्थ दिखाई पड़ते हैं । सुख-दुःख में समत्व इनके चरित्र की विशेषता होती है । ये धीर, शांत एवं अतीव सहिष्णु बने रहते हैं[३] ।' इस श्रेणी में हम प्रमुख रूप से वासवी, मल्लिका, मालविका, देवसेना, देवकी

१. इरावती, पृ० ५५

२. कल्याणी, नारी अंक, सन् १९४८, पृ० ५८४-५९०

३. डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २७०

तथा तारा को रख सकते हैं। मध्मम श्रेणी में स्कन्दगुप्त की जयमाला को को रख सकते हैं। वह वीर क्षत्राणी है, अपने पति बन्धुवर्मा को प्रसन्नता से युद्ध में जाने का आग्रह करती हुई कहती है—'जाओ प्रभु ! सेना लेकर सिंह-विक्रम से शत्रु सेना पर टूट पड़ो ! दुर्ग-रक्षा का भार मैं लेती हूं[1]। दूसरी ओर अपने पैतृक राज्य को स्कन्दगुप्त के लिए सौंपना उसे कष्टदायक नहीं लगता[2]। वह पति के साथ सती होकर पति-भक्ति का उदाहरण उपस्थित करती है।[3] इस प्रकार वह अनन्तदेवी के समान इतनी नीच प्रवृत्ति की भी नहीं है, जो उन्हीं के विरुद्ध षड्यन्त्र रचकर उनका नाश करने की सोचे। उसमें वे सभी गुण हैं, जो एक मध्यम कोटि की नारी में उपलब्ध होते हैं। प्रसाद के कथा-साहित्य में तारा, घंटी, गाला, तितली, शैला, नूरी, सालवती, ममता मधूलिका तथा चूड़ीवाली ऐसे पात्र हैं जो अपने आदर्शों को सुरक्षित रखने के लिये अन्त तक प्रयत्नशील रहते हैं।

सामाजिक दृष्टि से उत्तम और मध्यम कोटि के आदर्श नारी-पात्रों को निम्न कोटि में विभाजित कर सकते हैं—प्रेमादर्श, सपत्नी तथा सपत्नी पुत्र सम्बन्धी आदर्श, सतीत्व और पतिव्रत धर्म सम्बन्धी आदर्श।

प्रेमादर्श

इस श्रेणी के अन्तर्गत देवसेना, कोमा, कार्नेलिया, तारा तथा मधूलिका आदि नारी-पात्र आते हैं। प्रसाद ने देवसेना में पवित्र प्रेम-व्यंजना को व्यक्त किया है। वह स्कन्दगुप्त से प्रेम करती है परन्तु विजया के स्कन्दगुप्त की ओर आकर्षित होने में नारी की भांति ईर्ष्या और द्वेष से जलती नहीं। वह नारी हृदय की सहज दुर्वलताओं को अपने पैरों से दवाकर उच्च स्तर पर स्थित होना चाहती है। यही उसके चरित्र की महानता है। देवसेना का प्रणय महान् है। वह अपनी प्रणय प्रतिद्वंद्विनी विजया के मार्ग में रोड़ा नहीं बिछाती। उसका प्रेम वासनामयी दुर्गन्ध से कोसों दूर है। उसके भाई वन्धुवर्मा ने स्कन्दगुप्त को अपना मालव राज्य समर्पित किया है। वह दूरदर्शिता नारी है। वह सोचती है—'लोग कहेंगे कि मालव देकर देवसेना का ब्याह किया जा रहा है[4]।' स्कन्दगुप्त विजया से निराश होकर देवसेना से अपना ममत्व स्थापित कर एकान्तवास की कामना करता है[5]।' परन्तु स्वाभिमानी देवसेना अपने आत्म गौरव को कलंकित करना नहीं चाहती। वह कहती है—'उस समय आप विजया का स्वप्न देखते थे; अब प्रतिदान लेकर उस महत्त्व को कलंकित न करूँगी। मैं आजीवन दासी

---

१. स्कन्दगुप्त, पृ० ४२
२. वही, पृ० ७३
३. वही, पृ० १३४
४. स्कन्दगुप्त, पृ० ९१
५. वही, पृ० १३५

वनी रहूंगी, परन्तु आपके प्राप्य में भाग न लूँगी[1]।' अन्त में वह स्वयं से कहती है—'नाथ ! मैं आपकी हूं, मैंने अपने को दे दिया है, अब उसके वदले कुछ लेना नहीं चाहती[2]।' इस प्रकार उसका प्रेम, आदर्श और कामनाहीन है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में कोमा का प्रेम उत्कृष्ट रूप में प्रदर्शित किया गया है। वह शकराज़ से प्रेम करती है, परन्तु शकराज उसे विलास की सहचरी बनाकर रखना चाहता है। वह एक स्वार्थी, विलासी और निर्दयी पुरुष है। कोमा एक ओर तो कुलीन नारी के अपमान को सहन न करने के कारणं शकराज से कहती है—मेरे, राजा ! आज तुम एक स्त्री को अपने पति से विच्छिन्न कराकर अपने गर्व की तृप्ति के लिए कैसा अनर्थ कर रहे हो[3] ?' इस कार्य में असफल होने पर अपने पिता मिहिर देव के साथ चली जाती है। इस प्रकार एक ओर तो वही शकराज के विलासी कर्मों का विरोध करती है तथा दूसरी ओर प्रेम की अति होने पर शकराज के शव के साथ आत्मविसर्जन कर नारी-जाति के गौरव तथा आदर्श त्याग को प्रस्तुत करती है।

'चन्द्रगुप्त' में मालविका का चन्द्रगुप्त के प्रति प्रेम, आदर्श कोटि का है। चन्द्र-गुप्त के प्रथम मिलन से उसके हृदय में प्रेम जागृत हो जाता है। वह वासना से रहित सात्विक प्रेम की उपासिका है। वह चन्द्रगुप्त के उत्कर्ष के लिए असत्य बोलने को तैयार रहती है। अपनी मृत्यु का पूर्ण निश्चय जानकर चन्द्रगुप्त के लिए चाणक्य की यह आज्ञा 'आज घातक इस शयन-गृह में आवेंगे, इसलिए चन्द्रगुप्त यहां न सोने पावे और वह षड्यन्त्रकारी पकड़े जाएँ[4]।' पाकर प्रसन्नता से अपने को प्रणांतकारी परिस्थितियों में रख देती है। वह मरण शय्या पर बैठकर कहती है—'यह चन्द्रगुप्त की शय्या है। ओह, आज मेरे प्राणों में कितनी मादकता है। मैं···कहाँ हूं ? कहां ? स्मृति, तू मेरी तरह सो जा ! अनुराग, तू रक्त से भी रंगीन वन जा[5]।' इस प्रकार प्रेममयी वेदी पर आत्मबलिदान कर गौरवपूर्ण आदर्श की स्थापना करती है।

कार्नेलिया का चन्द्रगुप्त के प्रति प्रेम सात्विक वृत्ति का है। दाण्डयायन के आश्रम में चन्द्रगुप्त के प्रथम साक्षात्कार से तथा उसके भावी सम्राट् होने की भविष्य-वाणी सुनकर[6], वह अपने मानस में उसका स्थान सुरक्षित कर लेती है। सैल्यूकस के प्रति शिष्टाचारपूर्ण व्यवहार तथा सिकन्दर के प्रति निर्भीकतापूर्ण साहस उसके प्रेम को दृढ़ करता है। अन्त में चाणक्य इस प्रेम की महानता को देखकर कार्नेलिया को

---

१. स्कन्दगुप्त, पृ० १३४
२. वही, पृ० १३५
३. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ४१
४. चन्द्रगुप्त, पृ० १८६
५. चन्द्रगुप्त, पृ० १८६
६. चन्द्रगुप्त, २२२

भारत की साम्राज्ञी बनाता है[१] ।

'पुरस्कार' कहानी में प्रसाद ने मधूलिका के चरित्र में प्रेम और कर्तव्य के द्वंद्व को अंकित किया है । परन्तु प्रेम उसके कर्तव्य में बाधक सिद्ध नहीं होता, वह अपने दायित्व की समाप्ति पर पुनः अरुण के साथ प्राणदण्ड मांग कर आदर्श प्रेम को स्थान देती है ।

रामायण में भी नारी के प्रेमादर्श पर बल दिया गया है । राम और सीता दोनों एक-दूसरे के अनन्य प्रेमी हैं । सीता के हृदय मन्दिर में राम सदैव विराजमान रहते हैं । इसी कारण राम का मन भी सीता में ही लगा रहता है[२] ।' आर्य कन्याओं का यह आदर्श है कि वे अपने हृदय में जिसको एक वार स्थान देती हैं वही पति की श्रेणी में आता है । इस कथन की पुष्टि महाभारत में सावित्री के प्रसंग से हो जाती है । वहां सावित्री राजा अश्वपति के यह कहने पर कि बेटी, तुम और किसी को अपना पति चुन लो, वह कह उठती है—'पिताजी ! एक बार मन में मैंने जिनका वरण किया है, वह मेरे पति हैं, चाहे कुछ भी हो, अब और किसी का वरण मैं नहीं कर सकती, कन्यादान एक बार होता है और आर्य कन्या एक बार पति का वरण करती है[३] ।

सपत्नी तथा सपत्नी-पुत्र सम्बन्धी आदर्श

'अजातशत्रु' में वासवी के सौत एवं उसके सौतेले पुत्र अजातशत्रु के साथ होने वाले व्यवहार को आदर्श की कोटि में रख सकते हैं । वासवी की सपत्नी छलना और सपत्नी-पुत्र अजातशत्रु उसके साथ दुर्व्यवहार करते हैं । सपत्नी छलना उसे पग-पग पर अपमानित करती है, किन्तु वासवी उसे सहिष्णुता का परिचय देती हुई कहती है—'बहन ! जाओ, सिंहासन पर बैठकर राज्यकार्य देखो ! व्यर्थ झगड़ने से तुम्हें

---

१. चन्द्रगुप्त, पृ० ९९

२. वाल्मीकि रामायण, १।७७।२६, ४।१।५२

३. सकृदंशो निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते ।
सकृदाय ददानीति त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ।।
दीर्घायुरधवाल्पायुः सगुणा निर्गुणोऽपिवा ।
सकृद्वृतो मया भर्त्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम् ।।
मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाभिधीयते ।
क्रियते कर्मणा पश्चात् प्रमाणं मे मनस्ततः ।।

—महाभारत, वन पर्व, २९४।२६-२८

क्या सुख मिलेगा ? और अधिक तुम्हें क्या कहूं; तुम्हारी बुद्धि[१] ।' इस प्रकार अन्त में वह विम्बसार से छलना के क्षमादान के प्रस्ताव की सिफारिश करती है[२] । सपत्नी-पुत्र अजातशत्रु अपनी कुटिलताओं के कारण वासवी को कष्ट पहुंचाना चाहता है[३] । परन्तु अन्त में उसके आश्रय में उसे शान्ति मिलती है[४] । क्षमा और वात्सल्यमयी माता वासवी अजातशत्रु की कुत्सित भावना को परिवर्तित कर देती है । विम्बसार उसके अलौकिक गुणों पर मुग्ध होकर कहता है—'वासवी ! तुम मानवी हो कि देवी[५] ।' 'स्कन्दगुप्त' में महादेवी देवकी, अपनी सपत्नी अनन्तदेवी के अत्याचारों के परिणाम-स्वरूप भी किसी भी प्रकार की दुर्भावना नहीं रखती । यहाँ तक कि उनकी हत्या की चेष्टा करने वाले भट्टार्क और शर्वनाग को क्षमा कर देती है[६] ।

सतीत्व और पतिव्रत धर्म सम्बन्धी आदर्श

'पद्मावती, कल्याणी, ध्रुवस्वामिनी, राज्यश्री तथा तारा आदि नारी पात्रों को इस कोटि में रखा जा सकता है । पशु के समान विलासी और मधुप पर्वतेश्वर कल्याणी को पशु के समान अपमानित कर एवं भ्रष्ट कर, अपनी संगिनी बनाकर, मगध साम्राज्य को हस्तगत करना चाहता था, इसी से कल्याणी उसका वध करती है; किन्तु उसने 'वरण किया था केवल एक पुरुष को—वह था चन्द्रगुप्त[७]' परन्तु स्वयं भी इन शब्दों के साथ अपना प्राणान्त करती है—'तुम (चन्द्रगुप्त) मेरे पिता के विरोधी हुए इसलिए उस प्रणय को—प्रेम-पीड़ा—को मैं पैरों से कुचल कर, दबा कर खड़ी रही ! अब मेरे लिये कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहा, पिता ! लो मैं भी जाती हूं[८] ।' इस प्रकार वह चन्द्रगुप्त से विवाह न कर सतीत्व और पतिव्रत धर्म दोनों का ही आदर्श उपस्थित करती है । राज्यश्री देवगुप्त के अधीन होने पर भी उसके समस्त ऐश्वर्य और प्रलोभन के साधनों को ठुकरा कर अपने सतीत्व की रक्षा करती है तथा दृढ़ता के साथ शस्त्रपालन करती हुई कहती है—'बस मैं सचेत हूं देवगुप्त ! मुझे अपने प्राणों का अधिकार है । मैं तुम्हारा वध न कर सकी तो क्या अपने प्राण भी नहीं दे सकती[९] ?'

'कंकाल' उपन्यास की तारा गुलेनार के रूप में स्त्रियों का व्यापार करने वाली

---

१. अजातशत्रु, पृ० ८८-८९
२. वही, पृ० ११४
३. वही, पृ० ६३
४. वही, पृ० १४३-१४४
५. वही, पृ० १४४
६. स्कन्दगुप्त, पृ० ७६-७७
७. चन्द्रगुप्त, पृ० १७६
८. वही, पृ० १७६
९. राज्यश्री, पृ० १३८

एक संस्था[1] के चक्कर में फंस जाने पर भी अपना सर्वनाश होने से बचाती है[2] तथा जीवन संघर्ष में बार-बार अपमानित होने के पश्चात् भी 'पवित्र देवमंदिर की दीप-शिखा सी ज्योतिर्मयी' बनी रहती है[3] । उसने प्रणय किया था मंगल से परन्तु उसने तारा को निरपराध छोड़ दिया[4] । तारा ने 'एक अपराध किया है—वह यही कि प्रेम करते समय साक्षी न इकट्ठी की और कुछ मंत्रों से कुछ लोगों की जीभ पर उसका उल्लेख नहीं करा लिया था, पर किया था प्रेम[5] इतना होने पर भी वह विश्वासघाती मंगल के प्रति अपने हृदय में द्वेष तया क्रोध नहीं लाती बल्कि अपने सतीत्व की अन्त तक रक्षा करती है । वह विजय को अपनी और आकृष्ट होते देख उसे प्रोत्साहन न देकर कहती है—'किसी के हृदय की शीतलता और किसी के यौवन की ऊष्णता, मैं सब झेल चुकी हूं । उसमें सफल नहीं हुई, उसकी साध भी नहीं रही, विजय बाबू ! मैं दया की पात्री एक बहन होना चाहती हूं—है किसी के पास इतनी निःस्वार्थ स्नेह सम्पत्ति, जो मुझे दे सके[6] ?'

वाल्मीकि रामायण में यह बतलाया गया है कि पतिव्रता स्त्री के लिये उसका पति ही गति और पति ही धर्म होता है[7] । पति ही देवता और प्रभु होता है[8] । पति ही गुरु और पति ही सर्वस्व होता है[9] । भारतीय-नारियों में सीता पतिव्रत्य पात्र का आदर्श उपस्थित करती है[10] । वह अनुसुया के उपदेशों को[11] ग्रहणक रती हुई कहती है, 'पतिव्रत्य धर्म का पालन करने वाली साध्वी स्त्रियां अपने पुण्यकर्म के बल से देव-लोक में आदर पाती हैं[12] ।'

इस प्रकार प्रसाद ने नारी को अपने नाटकों में प्रकृति-स्वरूप माना है । उनके शब्दों में वह करुणा की मूर्ति है । दया, क्षमा, त्याग, तितिक्षा एवं सेवा-भावना की वह साक्षात् प्रतिमा है । उनके नाटकों तथा काव्यों में कोई न कोई देवी अपने असा-धारण गुणों एवं दिव्य कर्मों के द्वारा अन्य पात्रों का उद्धार करती है । असत् को सत् में, अधमता को उदादता में, राक्षसत्व को देवत्व में, बर्बरता को सभ्यता में एवं पाप को पुण्य में परिवर्तित करने का भार उसी पर है । 'स्कन्दगुप्त' में देवसेना, 'अजातशत्रु'

---

१. कंकाल, पृ० ३३
२. वही, पृ० २९
३. वही, पृ० २२७
४. वही, पृ० ५८
५. वही, पृ० २७७
६. वही, पृ० १११
७. वाल्मीकि रामायण २।२१।६०
८. वाल्मीकि रामायण, २।२४।२१
९. वही, २।११८।२
१०. वही, ५।१६
११. वही, ५।१६
१२. वही, २।११८

में मल्लिका तथा 'कामायनी' में श्रद्धा यही कार्य करती हैं[1]।'

ग्राजीविका के साधन

प्रसाद की रचनाओं में ग्राजीविका के ग्रनेक साधनों का प्रयोग हुग्रा है। तितली उपन्यास में कृषि कर्म के लिये खेत का प्रयोग हुग्रा है। खेत द्वारा एक छोटी सी गृहस्थी चलाने की वात कही गई है[२]। इस कार्य में कृषक हल का उपयोग करता है[३]। ऋग्वेद में ग्रश्विन् देवताग्रों ने मनु को हल चलाना ग्रौर यव की खेती करना सिखाया है[४]। शतपथ ब्राह्मण में कृषि कर्म के लिये जुताई, बुवाई, कटाई ग्रौर मड़ाई का उल्लेख मिलता है[५]।

'कामायनी' में पशुग्रों की ऊन काटना तथा पट्टिका बनाने का वर्णन मिलता है[६]। ऊन की पट्टी बनाने में वस्त्र निर्माण की ग्रोर संकेत किया गया है। ऋग्वेद में भी वस्त्र बनाने का उल्लेख मिलता है[७]।

प्रसाद ने धातु निर्माण का भी वर्णन किया है। 'कामायनी' में धातु गलाने, ग्राभूषण बनाने तथा ग्रस्त्र बनाने की वात कही है—

उधर धातु गलते, बनते हैं, ग्राभूषण ग्रो ग्रस्त्र नये[८] ग्रथर्ववेद में ग्राभूषण का प्रयोग हुग्रा है[९]। शतपथ ब्राह्मण में ग्रयस का वर्णन हुग्रा है। जहाँ ग्रयस को सोने ग्रौर सीसे से पृथक धातु बतलाया है।

ग्राकाशदीप' कहानी में विदेशी-व्यापार का वर्णन हुग्रा है। उसमें प्रसाद ने वालिद्वीप पर सिंहल के वणिकों का प्राधान्य वतलाते हुए[१०] पोतवाहिनी पर ग्रसंख्य धनराशि लादने का उल्लेख किया है[११]। वैदिक इन्डेक्स में बतलाया गया है कि ऋग्वेद में समुद्र का उल्लेख हुग्रा है; परन्तु यहाँ समुद्र का उल्लेख कदाचित् मोतियों के व्यापार के लिये हुग्रा है[१२]।

प्रसाद ने राज्य के आय के साधनों में राजस्व कर का वर्णन किया है। 'ग्रजातशत्रु' में वतलाया गया है कि काशी, मगध का एक सम्पन्न प्रान्त था, वहां की जनता ने वासवी के कहने पर राजस्व देना वन्द कर दिया था[१३]। इससे यह ग्रर्थ

---

१. कल्याण नारी ग्रंक जनवरी १९४८, डा० मुशीराम शर्मा का लेख (हिन्दी काव्य में नारी), पृ० १६६
२. तितली, पृ० ८६
३. चन्द्रगुप्त, पृ० १३१
४. ऋग्वेद० १।११७।२१
५. शतपथ ब्राह्मण, १।६।२।३
६. कामायनी, पृ० १४२
७. ऋग्वेद० १।२६।१, ३।३६।२
८. कामायनी, पृ० १८१
९. शतपथ ब्राह्मण ५।१।२।१४
१०. ग्राकाशदीप, पृ० १२
११. आकाशदीप, पृ० २०
१२. वैदिक इन्डेक्स, ।। पी० पी०, पृ० ४३१-३८
१३. ग्रजातशत्रु, पृ० ६६

निकलता है कि प्रजा द्वारा राजा को नियमित रूप से कर की प्राप्ति होती थी। 'अजातशत्रु' में आगे बतलाया गया है कि राजा प्रजा को अपने अनुकूल करने का प्रयत्न करता था[१]। ऋग्वेद और अथर्वबेद में इन्द्र से यह प्रार्थना की गई है कि वह राज-कर देने के लिए प्रजा को वाध्य करे[२]।

अशन

प्रसाद की रचनाओं में कुछ स्थलों पर भोज्य पदार्थों में मांस[३], घी[४], लड्डू[५], फल-मूल[६], पान[७], दूध[८] तथा सुरापान[९] का उल्लेख हुआ है। इन पदार्थों की सांस्कृतिक भूमिका को देखने से विदित होता है कि ऋग्वेदिक साहित्य में भी मांस, घी, फल-मूल, पान तथा सुरा का वर्णन मिलता है[१०]।

वसन

प्रसाद-साहित्य में वेष-भूषा का वर्णन बहुत कम मात्रा में आया है। स्त्रियां, कंचुक, उत्तरीय तथा परिच्छेद धारण करती थीं। उत्तरीय का उल्लेख 'ध्रुवस्वामिनी' में हुआ है। यह उत्तरीय एक ऐसा वस्त्र होता था जिससे सारा शरीर ढंक जाता था। ध्रुवस्वामिनी अपने मुख को छोड़ कर इस उत्तरीय में अपने सम्पूर्ण अंगों को छिपाये हुए आती है[११]। उपाध्याय जी ने कालीदास के दुकूलयुग्म में इसका उल्लेख किया है[१२]। 'चन्द्रगुप्त' में अलका ने कंचुक पहन रखा है[१३]। वाण के अनुसार यह वस्त्र पतला होता है, जिसमें सारा शरीर दीखता है[१४]।

प्रसाद ने चन्द्रगुप्त में मालविका के परिच्छेद पहनने का उल्लेख एक स्थल पर

---

१. अजातशत्रु, पृ० ६६
२. ऋग्वेद, पृ० १।१७३।६, अथर्ववेद, ३।४।३
३. स्कन्दगुप्त, पृ० १२६, इन्द्रजाल, 'चित्र मंदिर', पृ० ७८
४. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ३१
५. अजातशत्रु, पृ० १३५
६. चन्द्रगुप्त, पृ० १०३; चित्राधार, उर्वशी, पृ० ११, करुणालय, पृ० १३-१७
७. ध्रुवस्वामिनी, पृ० १६, २०
८. विशाख, पृ० ५७,८६
९. चन्द्रगुप्त, पृ० १६६, ६६,६३, स्कन्दगुप्त, पृ० २८, ५६, ३०, १२३ ध्रुवस्वामिनी, पृ० २४, १३; अजातशत्रु, पृ० ४१,४४, ६७; राज्यश्री पृ० ५६; कामायनी, पृ ११
१०. श्री उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ ३२
११. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ४६
१२. इण्डिया इन कालिदास, पृ० १६६
१३. चन्द्रगुप्त, पृ० ८२
१४. वाण, हर्षचरित, सप्तम उच्छवास, पृ० २०७

किया है[१]। आप्टे ने इसको एक वस्त्र माना है[२]। उष्णीय का उल्लेख जनमेजय का नागयज्ञ में हुआ है जिसमें तक्षक, उत्तंक का उष्णीय लेना चाहता है[३]। महाभारत में भी पुरुषों के लिए सिर पर उष्णीय बांधने का वर्णन मिलता है[४]।

इन वस्त्रों के अतिरिक्त अन्य स्थलों पर गायक वेश[५] तथा मृगया वेश[६] शिथिल वसन[७] आदि का उल्लेख मिलता है।

प्रसार-साहित्य में आभूषणों के लिए कुण्डल[८], मुकुटमणि[९], अंगूठी[१०], नूपुर[११], कंकण[१२], हार[१३] आदि का उल्लेख हुआ है।

आवास

प्रसाद ने अपने साहित्य में आवास के साधनों के लिए प्रमुख रूप से आश्रम, कुटीर और महलों का उल्लेख किया है। ऋषि और महात्माओं के आवास के लिए आश्रमों[१४] का उल्लेख हुआ है। यह आश्रम नगर से दूर हुआ करते थे। इन्हीं आश्रमों में गुरु के पास ब्रह्मचारी विद्याध्ययन करने आया करते थे। यह स्थान गुरुकुल कहलाता था[१५]। प्रसाद ने कुटीर का उल्लेख भी किया है[१६]। 'कामायनी' में श्रद्धा ने अपने निवास के लिए एक कुटीर बनाई है—

—'मैंने तो एक बनाया है
चल कर देखो मेरा कुटीर[१७],

आवास के साधनों में मठों[१८] का उल्लेख भी हुआ है। प्रसाद यहाँ बौद्धकालीन

---

१. चन्द्रगुप्त, पृ० २११
२. आप्टे, संस्कृत-अंग्रेजी कोष, पृ० ५९३
३. जनमेजय नागयज्ञ, पृ० ३७
४. महाभारत, ५।१५३।१८-२०
५. चित्राधार, बभ्रुवाहन, पृ० ३६
६. वही, पृ० ४२, सज्जन, पृ० १०३
७. कामायनी, पृ० १०
८. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ३०
९. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ७९ राज्यश्री, पृ० ३७
१०. चन्द्रगुप्त, पृ० १९३,८३, अजातशत्रु, पृ० ११६
११. स्कन्दगुप्त, पृ० ९४ तथा कामायनी, पृ० ११
१२. अजातशत्रु, पृ० ४०
१३. वही, पृ० ११
१४. चन्द्रगुप्त, पृ० ९५, कानन कुसुम, भरत, पृ० १०५, जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ९४
१५. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० १८, ३९
१६. चन्द्रगुप्त, पृ० ६६, जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ६१, स्कन्दगुप्त, पृ १२१, अजातशत्रु, पृ० १४१
१७. कामायनी, पृ० १४९
१८. स्कन्दगुप्त, पृ० ५२

संस्कृति से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं । इनके अतिरिक्त राज-भवनों[1] का उल्लेख भी हुआ है। इन भवनों में राजाओं का निवास बतलाया है । राजभवन में अन्तःपुर[2] भी हुआ करते थे। प्रसाद ने आवास का एक स्थान गृह भी बतलया है। उन्होंने श्यामा, वन्धुल और विम्बसार के गृहों का भी उल्लेख किया है[3] । प्रसाद द्वारा वर्णित आवास के साधनों में प्राचीन भारतीय संस्कृति की झलक परिलक्षित हाती है । ऋग्वेद में आवास के साधनों में गृहों का उल्लेख हुआ है[4] ।

कला

प्रसाद कला-प्रेमी होने के कारण कला के महत्व को जानते थे। उन्होंने कला की सांस्कृतिक पीठिका के आधार पर अपने साहित्य में कला को स्थान दिया है। उनके साहित्य में कला का उल्लेख कुछ ही स्थलों पर आया है । उनकी कृतियों में प्रमुख रूप से वर्णितक लाओं को वास्तुनिर्माण-कला, संगीत-कला तथा नृत्य-कला नामक शीषकों में विभक्त कर सकते हैं।

प्रसाद ने सुन्दर आश्रमों, कुटीरों ग्रहों और राजभवनों का उल्लेख करके उस काल की वास्तुकला का परिचय दिया है । इसके अतिरिक्त कामायनी में 'श्रद्धा' ने एक कुटीर का निर्माण किया है[5] । गृह-निर्माण के साथ-साथ प्रसाद इसकी महत्ता को जानते थे । इसी कारण उन्होंने 'देवदासी' कहानी में अशोक के द्वारा लिखित पत्र में दक्षिण के मंदिरों की महता का उल्लेख किया है[6] । वे शिल्प की महता जानते हुए उसे द्वेपता के कारण नष्ट करना नहीं चाहते···

'···'नष्ट कर देंगे यदि विद्वेष से—
इनको, तो फिर एक वस्तु संसार की
सुन्दरता से पूर्ण सदा के लिए ही
हो जायेगी लुप्त। वड़ा आश्चर्य है
आज काम वह किया शिल्प-सौन्दर्य ने'
जिसे न करती कभी सहस्त्रों वक्तृता[7]'

प्रसाद वास्तु कला का ध्वंस नहीं देख सकते । वे शिल्प की ध्वंसता का एक मात्र कारण धर्मजन्य प्रतिहिंसा बतलाते हैं—

---

१. अजातशत्रु, पृ० १०९
२. स्कन्दगुप्त, पृ० ३०
३. अजातशत्रु, पृ० ७५, ८२, ८६
४. शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति, पृ० २९१
५. आवास नामक शीर्ष में देखिये।
६. आकाशदीप, देवदासी, पृ० ९१
७. कानन-कुसुम, शिल्प-सौन्दर्य, पृ० १०९

'धर्म-जन्य प्रतिहिंसा ने क्या-क्या नहीं
किया, विशेष अनिष्ट शिल्प-साहित्य का
लुप्त हो गये कितने ही विज्ञान के
साधन. सुन्दर ग्रन्थ जलाये वे गये[1]'

वास्तु-कला की सांस्कृतिक पीठिका को देखने से विदित होता है कि इस कला की महत्ता हमेशा रही है। वैदिक काल में छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े गृह-निर्माण का उल्लेख हुआ है[2]।

संगीत-कला के अन्तर्गत प्रसाद ने वीणा[3], वांसुरी[4], तूर्य[5], शृंगी[6], सोने की झांझ[7], मृदंग[8] वीन[9] आदि का उल्लेख किया है। इस कला का उल्लेख ऋग्वेद और यजुर्वेद में मिल जाता है। ऋग्वेद में दुन्दुभि, वाण (बांसुरी) और वीणा का उल्लेख हुआ है। यजुर्वेद में विभिन्न व्यवसायों के साथ वीणा, बांसुरी, शंख आदि बजाने वालों का वर्णन मिलता है[10]।

प्रसाद ने नृत्यकला के अन्तर्गत नृत्य का उल्लेख दो रूपों में किया है—मूक अवस्था में और गान के साथ[11]। नृत्यकला की प्राचीन पीठिका को देखने से विदित होता है कि इस कला को मनोरंजन का साधन माना जाता था। रामायण में कहा गया है कि नृत्य और गीत रात-दिन हुआ करते थे। वानर-राज वालि के अन्तःपुर में रानियों के मनोरंजन हेतु इस कला का प्रदर्शन किया जाता है[12]।

प्रसाद ने इन कलाओं के अतिरिक्त हिजड़े, बौने और कुबड़े[13], नट[14], सपेरा[15], स्वांग[16], आखेट[17] आदि मनोविनोद के साधनों का उल्लेख किया है जो वांस पर नाचा

१. कानन-कुसुम, शिल्प-सौन्दर्य, पृ० १०९
२. शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति, पृ० २९२
३. अजातशत्रु, पृ० ५८, १२७, स्कन्दगुप्त, पृ० ४६, चित्राधार, पृ० ११, १४, ५३, ५६, महाराजा का महत्व, पृ० १३
४. आकाशदीप, देवदासी, पृ० ९८
५. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ४०
६. स्कन्दगुप्त, पृ० ४९
७. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ३८
८. चित्राधार, बभ्रूवाहन, पृ० ३६
९. वही, अयोध्या का उद्धार, पृष्ठ ५३
१०. शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति, पृ० ३०२,३०३
११. चन्द्रगुप्त, पृ० ६२-६३
१२. शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति, पृ० ३०५
१३. ध्रुवस्वामिनी, पृ० २०
१४. चन्द्रगुप्त, पृ० १२०
१५. वही, पृ० ११९
१६. वही, पृ० ११७
१७. अजातशत्रु, पृ० ७०, २४, चन्द्रगुप्त, पृ० ७४, राज्यश्री, पृ० १५, जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ४३, विशाख, पृ० ५३, चित्राधार, पृ०, १०, १०३

करता था। इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक विकास में इन कलाओं का विकास महत्वपूर्ण रहा है। इसका संस्कारिकतापूर्ण विकास राजा और धनाढ्यों के आश्रम में हुआ[1]। ऋग्वेदिक-साहित्य में नृत्य, गान और वाद्य को प्रमुखता दी गई है। ये सभी साधन जीवन को सुखी और प्रसन्न बनाये रखने के लिए आवश्यक थे[2]।

निष्कर्ष

इस प्रकार प्रसाद ने एक ओर प्राचीन चातुर्वण्य-व्यवस्था तथा वर्णाश्रम व्यवस्था को अंगीकार किया है, दूसरी ओर उसमें यत्र-तत्र परिवर्तन करके समयानुकूल संशोधन करके अपनी सुधारवादी मनोवृत्ति का परिचय दिया है। उनके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मात्र-परम्परा की लकीर पीटने वाले नहीं हैं अपितु सम-सामयिक परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढाल लेते हैं, फिर भी वे कहीं भारतीय संस्कृति से विचलित हुए नहीं दीख पड़ते। इनके अतिरिक्त प्रसाद काव्य में समाज के जो अन्य चित्र मिलते हैं चाहे वे पत्नी के चित्र हों अथवा सपत्नी के, पुत्र के हों या सपत्नी-पुत्र के, अथवा विविध संस्कारों और मनोरंजन के साधनों के, प्रसाद सर्वत्र भारतीय संस्कृति का अनुगमन करते हुए दीख पड़ते हैं।

---

१. शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति, पृ० ३०४-३०६

२. उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० ३२

अध्याय ५

राजनीतिक पृष्ठभूमि

साहित्य और राजनीति

शरीर के पंचतत्वों की भांति साहित्य, राजनीति, दर्शन, धर्म और विज्ञान जीवन के अपेक्षित अंग हैं। इन सबका उद्देश्य जीवन को स्वस्थ और जाग्रत रखना है। साहित्य को जनता की चित-वृत्तियों का प्रतिविम्ब कहा गया है। राजनीति का सम्बन्ध उस नीति से है, जिसके द्वारा शासक अपने राज्य का रक्षण करता तथा शासन को सुदृढ़ बनाता है। शासक प्रजा-पालन द्वारा ही अपने नाम को सार्थक बना सकता है। साहित्य और राजनीति के विवेचन से यह स्पष्ट है कि दोनों का प्रमुख उदय जीवन-विकास के अटल लक्ष्य पर पहुंचना है। राजनीति साहित्य की सूत्रधारिणी है, वह मानव चेतना को दिशा निर्देश करती है। साहित्य में भी मानवी चेतना को गति मिलती है। दोनों ही जीवन के अंग हैं। एक से गांधी और चर्चिल का तथा दूसरे से प्रेमचन्द और गोर्की का आविर्भाव हुआ है। साहित्य का युग से घनिष्ट सम्बन्ध रहता है।

साहित्य पर युग का प्रभाव पड़ता है। इस कारण युग की राजनीतिक मुद्रा भी साहित्य पर यत्र-तत्र लक्षित रहती है, यह सही है। यद्यपि आधुनिक साहित्य के सम्बन्ध में यह आवाज बहुत बुलन्द की गई है कि उसे राजनीति से असंपृक्त रखा जाय, किन्तु इसका परिणाम कुछ नहीं हुआ। इतना ही नहीं आधुनिक साहित्य का बहुत सा अंश ऐसा है जिसे हम राजनीति की पीठिका पर ही पनपा हुआ देखते हैं। इससे यह अनुमान कर लेना अमगेल न होगा कि साहित्य की भाव-धारा में कहीं-कहीं राजनीति की तरंगें उसका विक्लन नहीं कर सकतीं; क्योंकि वे धारा का अंग हैं। जीवन का अंग होने के नाते से यथावश्यक रूप में राजनीतिक गुट—मैं समझता हूं अनिवार्य हो सकता है। आज राजनीति का प्रभाव-क्षेत्र इतना व्यापक और उसके

परिणाम इतने तीव्र हो गये हैं कि संवेदनशील हृदय उससे प्रभावित हुए बिना कदापि नहीं रह सकता । इस विज्ञान-युग का मानव-जीवन राजनीति के आंचल की छाया में पल रहा है इसलिये साहित्यकार अपना ऐसा कोई पृथक् व्यक्तित्व रखने में असमर्थ है जिसके निर्माण में राजनीति के तत्वों का समावेश न हो, परन्तु राजनीतिक तत्वों को ग्रहण करते समय साहित्यकार का यह दृष्टिकोण होना चाहिये कि संस्कृति और राजनीति का सम्बन्ध बना रहे ।

प्रसाद-साहित्य में राजनीति

इस दृष्टिकोण के निर्वाह के लिए प्रत्येक युग और समाज में ऐसे अनेक साहित्यकार हुए हैं जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से अपनी संस्कृति को ऊँचा रखने का प्रयत्न किया है। प्रसादजी भी उन्हीं में से एक हैं । उनके साहित्य पर युग की मुद्रा लगे बिना नहीं रही है । प्रसाद का युग वह युग था जबकि हमारा देश विदेशी प्रभुता से दुखी था, किन्तु उसकी आँखें नहीं खुली थीं । सामन्तशाही प्रवृत्तियां, जागीरी और जमींदारी प्रथाएँ देश की शक्ति को निर्बल बना रही थीं । न्याय और बुद्धिवाद को शस्त्र-बल के सम्मुख झुकना पड़ रहा था[1] । उस समय जनता को किसी उद्घोवन की आवश्यकता थी। दुखी जनता, बिलखती हुई जनता, सिसकती हुई जनता आतंकित एवं प्रताड़ित भारतीयता मानों किसी गहरी निद्रा में सो रही थी । प्रसादजी ने बड़ी मधुर थपकियों से और कहीं-कहीं बड़ी मधुर चुटकियों से, उसको जगाने का प्रयत्न किया है, जिसका साधन बना उनका साहित्य, विशेषत: उनके नाटक, कहानियां तथा उपन्यास । इनके द्वारा प्रसाद ने शासक और शासित के नैतिक सिद्धान्तों को प्रस्तुत करके जनता के पथ-प्रदर्शक के कर्त्तव्य को सम्पन्न किया । वह मार्ग उन्होंने संस्कृति से प्रेरित दिखलाया । प्रसाद ने साहित्य की पीठिका में संस्कृति के उस अंश को भी, जिसे भारतीय संस्कृति ने आत्मसात् कर लिया है, अपने साहित्य में समुचित स्थान दिया है । निस्सन्देह प्रसादजी की यह नीति बड़े कौशल से पूर्ण थी। जो रोग अनिवार्य है उसके प्रति सहिष्णु बनने के सिवा और कोई चारा नहीं है। इसीलिये उनके साहित्य में भारतीय और अभारतीय संस्कृति का अभूतपूर्व सामंजस्य दीखता है। इस सामंजस्य का अवलोकन करने के लिये उनके साहित्य में वर्णित राजनीतिक तत्वों को निम्न भागों में विभाजित कर सकते हैं—राजा, राजा का निर्वाचन राज्याभिषेक, राजकीय शपथ, अत्याचारी शासक और प्रजा, राजा द्वारा प्रायश्चित, परिषद्, मंत्री, राजा और मंत्री, पुरोहित तथा राज-व्यवस्था ।

---

१. इन्द्रजाल, गुण्डा, पृ० ८५

राजा

प्रसादजी ने राजा का महत्व साम्राज्य को विपत्तिकालीन परिस्थितियों से बचाने[१], मुक्ति-संग्राम में सेनानी बनने[२], लोक-सेवा[३] तथा भूमण्डल पर स्नेह, करुणा और क्षमा का शासन फैलाने के लिये आवश्यक बतलाया है[४]। राजा-हीन देश में अराजकता और विप्लव का प्रत्यक्ष रूप में नग्न ताण्डव-नृत्य दिखाई देने लगता है। इससे मानव-जीवन को सुचारु रूप से चलाने तथा उसके विकास के लिये राजा की उपेक्षा करना असम्भव जान पड़ता है। प्रसाद का यह संकेत भारतीय परम्परा से अनुमोदित है। मनुस्मृति में चर और अचर की रक्षा के लिये, राजा का अस्तित्व अनिवार्य बतलाया गया है[५]। राजनीति में राजा के बिना प्रजा विपत्ति के जाल में फंस जाती है। उसकी वही स्थिति हो जाती है जैसी समुद्र में कर्णधार के बिना नौका की[६]।

राजा का निर्वाचन

प्रसाद ने अपने साहित्य में राजा का निर्वाचन वंश परम्परागत बतलाया है, परन्तु इस परम्परा में शासकों को राजाधिकार प्रदान करने का अधिकार प्रजा के हाथ रहा है। इस प्रकार के अनेक प्रमाण प्रसाद-साहित्य में उपलब्ध हैं[७]।

चन्द्रगुप्त का निर्वाचन प्रजा द्वारा अनुमोदित परिषद से हुआ[८]। स्कन्दगुप्त[९] तथा हर्षवर्धन[१०] का निर्वाचन भी प्रजा के उपस्थित व्यक्तियों ने विपत्कालीन परिस्थितियों से बचने[११] तथा लोक-सेवा[१२] के लिये किया है। प्रसादजी की इस परम्परा

---

१. चन्द्रगुप्त, पृ० १७२ 	२. स्कन्दगुप्त, पृ० ७४

३. राज्यश्री, पृ० ७५, चन्द्रगुप्त, पृ० १७३, स्कन्दगुप्त, पृ० ७५

४. अजातशत्रु, पृ० १३२

५. 'अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः॥' —मनु० ७।३

६. 'यदि न स्यान्नरपतिः सम्यङ् नता ततः प्रजाः।
अकर्णधारा जलधौ विप्लवतेहि नौरिव॥'
—शुक्रनीति १।६५

७. चन्द्रगुप्त, पृ० १७२-३, स्कन्दगुप्त, पृ० ७४, राज्यश्री, पृ० ७५, अजातशत्रु पृ० ३२, ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६४

८. चन्द्रगुप्त, पृ० १७२-३ 	९. स्कन्दगुप्त, पृ० ७३-४

१०. राज्यश्री, पृ० ७५

११. चन्द्रगुप्त, पृ० १७२, स्कन्दगुप्त, पृ० ७४ 	१२. राज्यश्री, पृ० ७५

का अनुमोदन भारतीय संस्कृति से प्राप्त है । रामायण में राजा सगर के उपरान्त अंशुनान्[1] की तथा महाभारत में परीक्षित के पश्चात् जनमेजय[2] की नियुक्ति पवित्र ब्राह्मणों, राजपुरोहितों, राजा के मंत्रियों तथा राजधानी के निवासियों द्वारा हुई है।

युवराज्याभिषेक के लिए भी राजा को प्रजा की अनुमति ग्रहण करनी पड़ती थी। 'अजातशत्रु' में युवराज्याभिषेक के लिए मगध-सम्राट् बिम्बसार ने परिषद् को सभाग्रह में एकत्र करने की आज्ञा दी है[3] । इस प्रथा के सांस्कृतिक सूत्र हमें रामायण में राम के युवराज्याभिषेक के समय मिल जाते हैं। वहाँ राम के युवराज्याभिषेक के लिये दशरथ ने पौर तथा जनपद संस्थाओं के सदस्यों को उपस्थित किया है[4] ।

राज्याभिषेक

प्रसाद-साहित्य में कुछ स्थलों पर राजा के राज्याभिषेक का उल्लेख मिलता है। राज्याभिषेक का आयोजन राजपद प्राप्त करने से पूर्व आवश्यक होता था। यह उसी अवस्था में सम्भव था, जबकि उसे प्रजा का अनुमोदन प्राप्त हो । प्रसाद-साहित्य में प्रजा की प्रतिनिधि संस्था[5] राज-सभा में उपस्थित सदस्यों, प्रमुख सामन्तों[6] तथा अन्य उपस्थित व्यक्तियों[7] के सम्मुख राजा का अभिषेक कराया गया है। चन्द्रगुप्त का अभिषेक आमात्य राक्षस द्वारा किया गया है[8] । वह चन्द्रगुप्त का हाथ पकड़ कर सिंहासन पर बिठाता है[9] । 'स्कन्दगुप्त' नाटक में गोविन्दगुप्त और बन्धुवर्मा हाथ पकड़ कर स्कन्दगुप्त को सिंहासन पर बिठाते हैं तथा देवकी उसका अभिषेक करती है[10] । इस प्रणाली का संकेत महाभारत में युधिष्ठिर के राज्याभिषेक

---

१. 'काल-धर्मंगते राज्ञिसगरे प्रकृति जनाः।
राजानं रौचयामासुरंशुमन्तं सुधामिकम् ॥
—श्लोक १, सर्ग ४२, बालकांड १

२. 'नृपंशिशुं तस्य सुतं प्रचक्रिरे समेत्य।
सर्वे पुरवासिनो जनाः ॥
—श्लोक ६, अ० ४४, आदि पर्व ।

३. अजातशत्रु, पृ० ३२

४. 'नानानगर वास्तव्यान्पृन्थूजनपदानपि ।
समानिनाय मेदिन्यां प्रधानान्पृथिवीपतिः ॥
—श्लोक ४६, सर्ग १, अयोध्याकाण्ड

५. चन्द्रगुप्त, पृ० १७२-३
६. स्कन्दगुप्त, पृ० ७४
७. राज्यश्री, पृ० ७५
८. चन्द्रगुप्त, पृ० १७३
९. वही, पृ० १७३
१०. स्कन्दगुप्त, पृ० ७४

में मिल जाता है[1]। वहां पर राजा का अभिषेक पुरोहित या राजा के प्रमुख ब्राह्मण द्वारा बतलाया गया है। प्रसाद ने इस परम्परा को केवल 'चन्द्रगुप्त' के अभिषेक में ही व्यक्त किया है।' 'स्कन्दगुप्त' में ब्राह्मण या पुरोहित के स्थान पर देवकी द्वारा तिलक किया गया है।

राज्याभिषेक प्रजा द्वारा निर्वाचित शासक का ही होता था। जो शासक राज-पद ग्रहण करने से पूर्व अभिषेक नहीं कराता था, वह प्रजा के सम्मान का पात्र नहीं बनता था। इस प्रकार प्रसादजी ने अपनी कृतियों में राज्याभिषेक के लिए प्रजातान्त्रिक प्रणाली का निर्वाह किया है।

राजकीय शपथ

राजा के सिंहासनारूढ़ होते समय अपने उत्तरदायित्व का पालन करने के लिए प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी। राजा पृथु ने भी राज्याभिषेक के समय ऐसी शपथ ग्रहण करते हुए कहा था—'मैं सदैव ब्रह्मा के समान देश का पालन करूँगा, जो कुछ भी धर्म विधान के अनुसार है, (नीति) के अनुरूप है और जो दण्डनीति पर आश्रित है, मैं उन सबके अनुसार व्यवहार करूँगा और कभी मनमानी न करूंगा[2]।' ऐत्तरेय ब्राह्मण में भी राजा के लिए शपथ ग्रहण करने का उल्लेख किया गया है[3]। प्रसादजी ने उक्त परम्परा का निर्वाह स्कन्दगुप्त के राज्याभिषेक के उपरान्त इन शब्दों में कराया है—'आर्य ! इस गुरुभार उत्तरदायित्व का सत्य से पालन कर सकूँ, आप लोग इसके लिए भगवान से प्रार्थना कीजिये और आशीर्वाद दीजिये कि स्कन्दगुप्त अपने कर्त्तव्य से, स्वदेश-सेवा से कभी विचलित न हो[4]।' 'चन्द्रगुप्त' नाटक में राजा द्वारा इस प्रकार की कोई प्रतिज्ञा राज्याभिषेक के उपरान्त नहीं कराई गई है; परन्तु चाणक्य चन्द्रगुप्त को राज्याभिषेक के उपरान्त मंत्रि-परिषद की सम्मति से मगध और आर्यावर्त के कल्याण में लगने का उपदेश देता है[5]। इस उपदेश का सांस्कृतिक आधार अथर्ववेद

---

१. महाभारत —५८।१२८

२. प्रतिज्ञां च करोम्येष मनसा कर्मणा गिरा।
पालयिष्याम्यहं भूमिं ब्रह्म इत्येव चासकृत्॥
यश्चात्र धर्म इत्युक्तो दण्डनीति व्यपाश्रयः।
ततशंकः करिष्यामि स्ववशो न कदाचन॥
—शान्तिपर्व, ५९।१०६-१०७

३. यंत्र रात्रीं जायेऽहं यां च प्रेतास्मि तदुभयमन्तरणेष्टा पूर्व लोकं।
सुकृत मायुः प्रजां वृंजीथा यदि तेदुह्य यासिति॥
—ऐत्तरेय ब्राह्मण, वार्ता १ अ० ३६, काण्डिका १५

४. स्कन्दगुप्त, पृ० ७५

५. चन्द्रगुप्त, पृ० १७३

में वर्णित है । उसमें उपदेशों के रूप में विभिन्न मन्त्रों का उल्लेख किया गया है, जो राज्याभिषेक के समय राजा से कहे जाते थे । 'सर्वादिशः संमगसः सध्रीचीर्युवाय से समितिः कल्पतामिह[१]' अर्थात् 'हे राजन् ! आप इस राज्य में अचल रह कर शत्रुओं को मसलते रहिये और शत्रुभाव रखने वाले अन्य मनुष्यों को भी औंधे मुख गिराइये । इस प्रकार शत्रुओं का विनाश करने पर, इस प्रकार शत्रु रहित होने पर पूर्व आदि सब दिशाएँ आपकी सेवा में परायण रहें । इन सब दिशाओं में निश्चल रहने के लिए आप युद्ध से कभी न भागें[२] ।' की तुलना चाणक्योपदेश से की जा सकती है ।

अत्याचारी शासक तथा प्रजा

प्रसाद ने शासक को प्रजा का पिता कहा है, वही उसके अपराधों को क्षमा कर उसे सुधार सकता है, परन्तु जब वह अपने कर्त्तव्य से भ्रष्ट हो कर प्रजा के अपराधों को सुधारने के स्थान पर उस पर अत्याचार करना प्रारम्भ कर दे तो प्रजा का अधिकार है कि वह उसे निकाल दे । प्रसाद ने अपने साहित्य में मनु, नन्द और रामगुप्त की परिस्थितियों में जनता के इसी अधिकार की रक्षा की है ।

'कामायनी' में सारस्वत प्रदेश के शासक मनु के वहाँ की साम्राज्ञी इड़ा के साथ बलात्कार करने पर प्रजा ने उससे बदला लिया[३] । 'चन्द्रगुप्त' नाटक में मगध सम्राट नन्द के महापद्म की हत्या करने, शक्टार को बन्दी बनाने, उसके सातों पुत्रों को भूख से तड़पा कर मारने, सेनापति मौर्य की हत्या का उद्योग करने, उसकी स्त्री को और वररूचि को बन्दी बनाने, कितनी ही कुलीन कुमारियों का सतीत्व-नाश कर नगर-भर में व्यभिचार को बढ़ाने, ब्रह्मत्व और अनाथों की वृत्तियों का अपहरण करने और अन्त में सुवासिनी पर अत्याचार करने[४] के अभियोग में प्रजा उसका वध करना ही उचित समझती है । 'ध्रुवस्वामिनी' में रामगुप्त अपने शत्रु शकराज से युद्ध न कर उसको संधि-स्वरूप अपनी पत्नी ही नहीं, अन्य सामंतों के लिए स्त्रियां भी भेजने का प्रस्ताव स्वीकार कर लेता है[५] । उसके इसी अत्याचार एवं कायरता के आधार पर परिषद् के सब लोग गुप्त साम्राज्य के पवित्र सिंहासन के अयोग्य मानते हैं[६] ।

उक्त घटनाओं की पृष्ठभूमि भारत के सांस्कृतिक इतिहास में देख सकते हैं । राजा को प्रजा के मान्य नियमों के विरुद्ध आचरण करना तथा प्रजा के कल्याण की प्रतिज्ञा को भंग करना एक भयंकर अपराध माना गया था तथा इस प्रकार के अत्या-

---

१. अथर्ववेद संहिता, सूत्र ८८ काण्ड ६
२. अथर्ववेद संहिता, सूत्र ८८, काण्ड ६
३. कामायनी, पृ० २००-२
४. चन्द्रगुप्त, पृ० १७१
५. ध्रुवस्वामिनी, पृ० २३
६. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६३

चार करने वाले को भयंकर दण्ड भी दिया जाता था, यहां तक कि मृत्युदण्ड भी दिया जा सकता था। वेण (महाभारत), मगध- नरेश नागदशक (महावंश), राजा पालक (मृच्छकटिक) तथा रामगुप्त (देवी चन्द्रगुप्तम्) ऐसे ही शासक थे, जिन्हें राजपद से हटाया गया था[१]। महाभारत के अनुसार यदि राजा प्रचलित मान्य नियमों के अनुसार आचरण नहीं करता है, उस स्थिति में उसका कार्य अवैधानिक होगा और जिन लोगों ने उसे चुना है वे उसे पदच्युत कर देंगे[२]।

राजा का प्रायश्चित

शासक के अत्याचारी होने पर शासित जनता का कर्त्तव्य उसे मृत्यु-दण्ड देना तथा पदच्युत करना था। यदि राजा अपने अपराधों का प्रायश्चित कर लेता था तो प्रजा उसे वापिस सिंहासनारूढ़ होने की अनुमति प्रदान कर देती थी। 'विशाख' नाटक में काश्मीर के राजा नरदेव ने अपने अत्याचारों की क्षमा देवदूत प्रेमानन्द से मांगी है[३]। क्षमायाचना करने पर प्रेमानन्द ने उसे पुनः शासक बनाने का अनुरोध किया है[४]। इस प्रकार की परम्परा के उदाहरण शतपथ ब्राह्मण[५] तथा तैत्तिरीय संहिता[६] में उपलब्ध हो जाते हैं।

परिषद्

प्रसाद-साहित्य में अनेक स्थलों पर परिषद् का उल्लेख हुआ है। परिषद् का प्रधान राजा होता था। इसके अतिरिक्त परिषद् में मंत्री और पुरोहित का भी प्रमुख स्थान रहता था[७]। परिषद् का प्रमुख कार्य राज्यकार्य को चलाने में सहायता देना था[८]। राजा अपनी कुमारावस्था में परिषद् की मदद से ही कार्य करता था[९]। परिषद् का कार्य राजा की अनुपस्थिति में युद्ध के समय राज्य का शासन-भार अपने हाथ में लेना[१०] युद्ध-विग्रह-सम्बन्धी विषयों पर नीति निर्धारण करना[११], राजा को स्वेच्छाचारी

---

१. यदुनन्दन कपूर, धर्म-निरपेक्ष प्राचीन भारत की प्रजातंत्रात्मक परम्परायें, पृ० ७९

२. 'अरक्षितारं हर्तारं विलोप्तारमनायकम्।
तं वै राजबलिं हन्यः प्रजाः सन्मतनिर्घृणम्॥
अहं वो रक्षिबंधुत्वाद यो न रक्षति भूमिपः।
स संहत्य निहन्तव्यः स्वजनैरुन्मदातुरः॥
—महाभारत, अनुशासन पर्व ६१।३२-३३

३. विशाख, पृ० ९०-९२

४. विशाख, पृ० ९०

५. शतपथ ब्राह्मण, १२।९।३।३

६. तैत्तिरीय-संहिता २।३।१

७. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० २४-२७

८. अजातशत्रु, पृ० ३१

९. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० २५

१०. अजातशत्रु, पृ० ६६

११. वही, पृ० ६६, स्कन्दगुप्त, पृ० १५

होने से रोकना[१], राजा पर लगाये गये आरोपों को सुनना[२], युवराज्याभिषेक करना[३], राजा की मृत्यु पर नवीन राजा का चुनाव करना और उसे सिंहासनारूढ़ करना[४], तथा राजा द्वारा किये गये कृत्यों को सुनाना था। राजा को महत्वपूर्ण कार्य करने से पूर्व परिषद् की सम्मति लेना आवश्यक था। इसके लिए राजा परिषद् को बुलाता था[५]। परिषद् का कार्य राजा का मार्ग निर्देशन करना था। 'जनमेजय का नागयज्ञ' में तुरकावषेय राजा को बन्धजातियों द्वारा सभ्य और सुखी प्रजा पर अत्याचार करने, कन्याओं का अपहरण करने तथा व्यवसाय में बाधा पहुंचाने वाली दस्यु-जातियों के लिये युद्ध यात्रा में प्रयाण करने को ही राजधर्म बतलाता है[६]। परिषद् राजा को उदार और सहनशील होने की शिक्षा देती थी[७]। कौटिल्य के अनुसार परिषद् में राजा के अंतरंग मंत्री तथा विभागीय मंत्री होते थे[८]। शुक्रनीति में भी परिषद् के सभासदों का उल्लेख हुआ है[९]।

मंत्री

प्रसाद की रचनाओं में मंत्री का उल्लेख हुआ है। मंत्री का स्थान राज्य में प्रमुख था। राजाओं के सहायतार्थ तथा शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए राज्य में मंत्री का होना आवश्यक था। उसका राजकार्य की मंत्रणाओं में प्रमुख हाथ रहता था। उसका राजवंश से सम्बन्ध रहने के कारण राज्य की वंशावली से भी उसे परिचित रहना पड़ता था[१०]। मंत्री को राजसभा में सम्मान प्राप्त था। उसकी सम्मति राजसभा में माननीय समझी जाती थी। मंत्री अपने राज्य की नीति कों निर्धारित करता था। जनमेजय के नागयज्ञ में साम्राज्ञी वपुष्टमा को मन्त्री अपनी राष्ट्र नीति से अवगत करते हुए कहता है—'हम राष्ट्र की शीतल छाया में रहते हैं, इसलिए हमारा कर्त्तव्य था कि प्रजा-हितैषी विजयी राजा का ऐन्द्रमहाभिषेक करें[११]। अर्थशास्त्र, शुक्रनीति तथा मनुस्मृति में भी मंत्री को राजा के सहायतार्थ तथा शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक बतलाया है[१२]।

---

१. चन्द्रगुप्त, पृ० १७२
२. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६०-६१
३. स्कन्दगुप्त, पृ० ३२
४. चन्द्रगुप्त, पृ० १७२-७३
५. अजातशत्रु, पृ० ३२, स्कन्दगुप्त, पृ० ३२
६. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० २४
७. वही, पृ० ३२
८. जायसवाल, हिन्दू पोलिटीकल, पृ० १३०
९. शुक्रनीति, २।३
१०. चित्राधार, बभ्रुवाहन, पृ० ३७
११. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० २७
१२. अर्थशास्त्र १।१५, शुक्रनीति २।७१-७२, मनुस्मृति ६।५०

मन्त्री और राजा

मत्स्यपुराण में राज्य के लिए सहायकों की अत्यन्त आवश्यकता बतलाई गई है[1]। रामचरितमानस में भी राजा के साथ बुद्धि-सम्पन्न सचिव का होना बतलाया गया है[2]। राजा मंत्रियों की सलाह लेता था। महाराज दशरथ ने राम के राज्याभिषेक के समय प्रस्ताव को मंत्रियों द्वारा अनुमोदित कराया है[3]। प्रसाद ने भी मंत्री को राजा के साथ आवश्यक बतलाय है। सम्राट का अभिषेक आमात्य द्वारा ही होता था तथा वही उसे सिंहासनारूढ़ करता था[4]। राजा के सिंहासनारूढ़ होने पर राज्य को स्वेच्छाचारी शासन से बचाने के लिए उसे मन्त्रि-परिषद् की सम्मति लेना आवश्यक था, तभी राष्ट्र का कल्याण हो सकता था[5]। राजा पर विपत्ति आने पर उसका सहायक मंत्री ही होता था। वह राजा को धैर्य धारण करवाता हुआ उसे सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करता था। 'प्रायश्चित' नाटिका में मंत्री महाराज जयचन्द के हताश होने पर उसे धैर्य धारण कराता है[6]। राजा राजकार्य के अतिरिक्त मंत्री से अपने पारिवारिक नियमों के विषय में भी सलाह लेता है। मणिपुर के महाराज मंत्री से अपनी पुत्री चित्रांगदा के वरण करने तथा राज्य को उज्ज्वल करने वाले रत्न के सम्बन्ध में पूछते हुये उसकी इच्छा के अनुसारा अर्जुन से उसका विवाह कर देते हैं। अन्त में उसी का पुत्र वभ्रूवाहन राज्य का उत्तराधिकारी शासक होता है[7]।

पुरोहित

'ध्रुवस्वामिनी' में पुरोहित का स्थान सबसे ऊँचा माना गया है। वह धर्म का मुख[8] और परिषद् का एक सदस्य होता है। उसे धर्म-सम्बन्धी विषयों पर बोलने का अधिकार होता है। वह परिषद् में सम्राट रामगुप्त को एक गौरव से नष्ट, आचरण से पतित और कर्मों से राज-अभिलाषी क्लीव बतलाता है। ऐसी स्थिति में वह ध्रुवस्वामिनी को रामगुप्त के अधिकारों से च्युत समझता है। उसकी आज्ञा सर्वमान्य होती है। वह अन्त में रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की आज्ञा देता है राजा[9] को पुरो-

---

१. 'यदप्यत्पतरं कर्म तदप्येकेनदुष्करम्।
पुरुषेणां सहायेन किमु राज्यम् महोदयम्॥'
—मत्स्यपुराण २१५।३

२. 'नृपहित कारक सचिव समाना' —रामचरितमानस, बालकाण्ड, १५३।१-२

३. 'सेवक सचिव सुमंत्र बोलाये' —वही, अयोध्याकाण्ड ४।१-८

४. चन्द्रगुप्त, पृ० १७३

५. वही, पृ० १७३

६. चित्राधार, प्रायश्चित, पृ० ९३-९४

७. चित्राधार, वभ्रुवाहन, ३७

८. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६१

९. वही, पृ० ६१-६२

हित द्वारा दी गई भविष्यवाणी को मानना पड़ता है[1] । पुरोहित का स्थान परिषद् में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण ही राजा को परिषद् की इच्छानुसार उससे क्षमा मांगनी पड़ती है[2] । वायुपुराण में भी पुरोहित को राजा के सप्तरत्नों में से एक माना गया है[3] रामचरितमानस में उसकी आज्ञा सर्वमान्य बतलाई गई है[4] ।

राज्य-व्यवस्था

राजा को अपने देश की शासन-व्यवस्था सुचारु रूप से चलानी पड़ती थी । उसे राज्य को विधिवत् रूप से चलाने के लिए अनेक देश-विदेश की नीति का ध्यान रखना पड़ता था । प्रसाद-साहित्य में भी राज्य-व्यवस्था का उल्लेख हुआ है। उसे आन्तरिक एवं वैदेशिक नीति में वर्गीकृत कर सकते हैं ।

आन्तरिक व्यवस्था

देश की आन्तरिक व्यवस्था के अध्ययन के लिए उस देश की न्याय-व्यवस्था, दण्ड व्यवस्था तथा सैन्य-व्यवस्था का प्रमुख स्थान है । इन्हीं के द्वारा देश की नीति निर्धारित होती है । प्रसाद-साहित्य में इसका अवलोकन किया जा सकता है ।

न्याय-व्यवस्था

प्रसाद-साहित्य में शासक और शासित के बीच उचित सम्बन्ध स्थिर रखने के लिए न्याय एवं दण्ड-व्यवस्था का उल्लेख किया गया है । न्याय-व्यवस्था का उच्च अधिकारी राजा को बतलाया गया है। परन्तु कुछ स्थलों पर राजा के अतिरिक्त धर्माधिकारी तथा पुरोहित को न्यायकर्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है । 'अजातशत्रु' नाटक में कौशलनरेश प्रसेनजित राजसभा में अपने पुत्र विरुद्धक के देशद्रोही होने के अपराध में धर्माधिकारी से उसका दण्ड पूछता है[5] । इसी प्रकार 'ध्रुवस्वामिनी' में पुरोहित धर्मशास्त्र का मुख होने[6] के कारण इन शब्दों में रामगुप्त और ध्रुवस्वामिनी के सम्बन्ध में न्याय करता है—'यह रामगुप्त मृत और प्रव्रजित तो नहीं पर गौरव से भ्रष्ट, आचरण से पतित और कर्मों से राज-अभिलाषी क्लीव है । ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं[7] ।' कौटिल्यीय अर्थ-शास्त्र में न्यायकर्ता को धर्मस्त कहा गया है[8] । शुक्रनीति में कहा गया है कि धर्मज्ञाता का धर्मशास्त्र जानने तथा देववाणी बोलने के कारण उच्च स्थान होता है[9] । प्रसाद ने भी इसका

---

१. चित्राधार, बभ्रुवाहन पृ० ३७
२. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० २४
३. वायुपुराण, ५७।७०
४. रामचरितमानस, बालकाण्ड, २०६-८
५. अजातशत्रु पृ० १२९
६. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६३
७. वही, पृ० ६३
८. अर्थशास्त्र, ३।१
९. ······धर्मज्ञोवक्तुमर्हति ।
देवी वाचं स वदति यः शास्त्रमुपजीवति ।।५५०।। अध्याय ४

अनुमोदन 'अजातशत्रु' तथा 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में किया है।

न्ययाकर्त्ता-दण्ड

न्यायकर्त्ता का परमधर्म दण्ड के आधार पर न्याय करना है[१]। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रजा राजा के पास जाती है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' में सरमा सम्राट की दुहाई देती हुई अपने पुत्र को आर्य साथियों द्वारा अकारण पीटने पर न्याय करने को प्रोत्साहित करती है[२]। 'अजातशत्रु' में कौशलनरेश प्रसेनजित अपने पुत्र विरुद्धक तथा राजमहिषी शक्तिमती के प्रति पिता एवं पति के रूप में नहीं अपितु न्यायाधीश के रूप में अपने कर्त्तव्य का पालन करता है[३]। 'चन्द्रगुप्त' में चन्द्रगुप्त अपने पिता मौर्य का न्याय करना चाहता है[४]। मगध की राजसभा में नन्द शक्टार, वररुचि, मौर्य, चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त की मां को दण्ड देकर न्याय करता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए शासक सिंहासनारूढ़ होते समय दण्ड धारण करता है[५]। 'चन्द्रगुप्त' में राज दण्ड का अस्तित्व भेद-भाव की नीति से स्वतंत्र माना है। यह षड्यंत्रकारियों के लिये निष्ठुर, निर्मम और कठोर है। प्रसाद ने इस परम्परागत दण्ड-विधान का अनुमोदन मनुस्मृति तथा शुक्रनीति से किया है। मनुस्मृति में दण्ड का अस्तित्व राजा की प्रयोजन-सिद्धि तथा सब प्राणियों की रक्षा के लिए आवश्यक बतलाया है[६] और कहा गया है कि दण्द के अभाव में प्राणी-मात्र की दुर्दशा होती है[७]। शुक्रनीति में कहा गया है कि दण्ड के भय से प्रजा धर्म में रत रहती है, कोई असत्य आचरण नहीं करता, क्रूर मनुष्य कोमल हो जाता है तथा दुष्ट अपनी दुष्टता को त्याग देता है[८]। कौटिल्यीय अर्थशास्त्र के

---

१. अजातशत्रु, पृ० २५, चन्द्रगुप्त, पृ० २१८

२. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ३०

३. अजातशत्रु, पृ० १२८, १३०

४. चन्द्रगुप्त, पृ० २१८

५. स्कन्दगुप्त, पृ० ७४

६. तस्यार्थं सर्वभूतानां गोप्तारंमर्जनात्मकम्॥
ब्रह्मतेजोमयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः॥
—मनुस्मृति, ७।१४

७. तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च॥
भयाद्योगाय कल्पन्ते स्वधर्मान्न चलन्ति च॥
—मनुस्मृति ७।१५

८. जायन्ते धर्मनिरताः प्रजा दण्डभयेन च ॥४३॥
कुर्वन्त्यावरणं नैव तथाचासत्यभाषणम्।
क्रूराश्च मार्दवंयान्ति दुष्टा दौष्ट्यं स्यजन्ति च॥४४॥
—शुक्रनीति ४।४३-४४

अनुसार जो शासक प्रजा की रक्षा नहीं करता उसका दण्ड धारण करना व्यर्थ है[1] ।

न्यायाधिकरण

प्रसाद की रचनाओं में कुछ स्थलों पर न्यायाधिकरण[2] का प्रयोग हुआ है । न्यायाधिकरण का अर्थ न्याय करने के उस स्थान से है जहां न्यायाधीश अभियुक्तों पर लगाये गये अभियोगों को सुनता तथा उसके अनुसार दण्ड देता है । उस स्थान पर शासक के प्रति भी अभियोग लगाया जा सकता है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' में राजा द्वारा आस्तीक के पिता की हत्या होने पर व्यास का यह कथन उक्त बात की पुष्टि करता है—'आर्य न्यायाधिकरण ने समझा यह बालक तुम पर अभियोग न लगा कर केवल क्षतिपूर्ति चाहता है[3] । 'विशाख' में राजा न्यायाधीश के रूप में अन्य उपस्थित अभियुक्तों के अभियोग का निर्णय करता है। इसमें प्रजा भी सम्मिलित हो सकती है[4] । 'चन्द्रगुप्त' नाटक में मगध सम्राट नन्द के कर्त्तव्य-भ्रष्ट (जनहित-विमुख) हो जाने पर जनता उसे न्यायाधिकरण में बुला कर उससे प्रश्न पूछती है[5] तथा नन्द द्वारा बन्दी विद्रोहियों का न्याय राजनियमों में विश्वास प्राप्त करने तथा न्याय को गौरव देने के लिए इनके अपराधों को स्वयं सुनती है[6] । प्राचीन ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख मिलता है। शुक्रनीति में न्यायाधिकरण के स्थान पर धर्माधिकरण की व्यवस्था की गई है जिससे राजा राष्ट्रसभा में बैठ कर व्यवहारों और विवादों का निर्णय किया करता था[7] । न्यायाधिकरण न्यायकर्ता राजा को ही बतलाया गया है । कौटिल्यीय अर्थ-शास्त्र में भी न्यायकर्ता के लिए धर्मस्थ शब्द का प्रयोग किया गया है। उसका कार्य

---

१. राज्ञः स्वधर्म उन्नेया प्रजा धर्मेष रक्षितुः
अरक्षितुर्वा क्षेप्तुर्वा मिथ्वा दण्डयतोऽन्यथा ।
—अर्थशास्त्र ३।१।५३

२. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० १०४ ; विशाख, पृ० ८५ ; चन्द्रगुप्त, पृ० १६८ १७०, २१६ ; स्कन्दगुप्त, पृ० १११

३. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० १०४

४. विशाख, पृ० ८२-८५

५. चन्द्रगुप्त, पृ० १६२

६. वही, पृ० १७०

७. धर्मशास्त्रानुसारेण अर्थशास्त्र-विवेचनम् ।
यत्राधिक्रियते स्थाने धर्माधिकरणं हि तत् ॥५६५॥
—शुक्रनीति, ४।५६५

पक्षपात रहित होकर न्याय करना तथा प्रजा का विश्वास प्राप्त करना बतलाया गया है[1]।

दण्ड-व्यवस्था

प्रसाद की कुछ कृतियों में साम्राज्य को सुनियंत्रित रूप से चलाने के लिए दण्ड-व्यवस्था का वर्णन किया गया है, जिसमें अभियोक्ताओं पर दण्ड की व्यवस्था की गई है। राजद्रोही के लिए मृत्युदण्ड तथा कैद की व्यवस्था की गई है। यदि अपराधी अपने अपराध को स्वीकार कर लेता है तो उसे माफ भी किया जा सकता है। 'अजातशत्रु' में विरुद्धक को राजद्रोह के अपराध में मृत्युदण्ड दिया गया है, परन्तु उसके क्षमा-याचना करने पर उसके अपराध को क्षमा कर दिया गया है[2]। 'चन्द्रगुप्त' में वररुचि को देशद्रोह के अपराध में मगध सम्राट नन्द ने बन्दी बनाया है[3]। राक्षस को भी कुचक्री समझ कर वह अन्धकूप में जाने की सजा देता है[4] तथा अन्य विद्रोहियों को एक साथ बन्दी बनाने की आज्ञा देता है[5]।

किसी व्यक्ति का वध करने के अपराध में भी प्रसाद ने मृत्युदण्ड तथा ब्राह्मण को देश निकाला देने की व्यवस्था का वर्णन किया है। 'विशाख' में काश्मीर नरेश नरदेव विशाख को दुष्ट भिक्षु का वध करने के अपराध में देश निकाला देने का दण्ड देते हैं[6]। 'चन्द्रगुप्त' में चन्द्रगुप्त अपने पिता मौर्य को चाणक्य का वध करने के प्रयास के लिए प्राणदण्ड को राजव्यवस्था बतलाता है[7]।

महाभारत में इस व्यवस्था का वर्णन किया गया है। धर्म से विमुख को दण्डित करना आवश्यक बतलाया गया है[8]। परन्तु ब्राह्मण को कड़ा दण्ड देने की व्यवस्था का वर्णन कहीं उपलब्ध नहीं होता। महाभारत तथा रघुवंश में ब्राह्मण को अपराधी होने पर उसका वध न कर राज्य-सीमा से बहिष्कृत करना ही दण्ड माना गया है[9]।

---

१. एवं कार्याणि धर्मसाथः कुर्यु रच्छलदर्शिनः।
समाः सर्वेषु विश्वास्याः सर्वलोकजनप्रियाः ॥३१॥
—कौटिल्यीय अर्थशास्त्र, अधि० ३, अध्याय २०

२. अजातशत्रु, पृ० १३०
३. चन्द्रगुप्त, पृ० १६३
४. चन्द्रगुप्त, पृ० १६६
५. वही, पृ० १६६-७०
६. विशाख, पृ० ८४
७. चन्द्रगुप्त, पृ०

८. 'यश्च धर्मात्प्रविचलन् लोके कश्चन मानवः।
निग्राह्यः स स्ववाहुभ्यां शश्वद्धर्ममवेक्षता।'
—महाभारत—शान्तिपर्व, ५६।१०५

९. 'एवं चैव नरज्येष्ठ रक्ष्या एवं द्विजातयः।
सापराधनपि हितान् विषयान्ते समुत्सृवेत।'
—महाभारत, शान्तिपर्व, ५६, ३१, मृच्छकटिक—६, ३९

मनुस्मृति में अधर्म दण्ड देने पर राजा को दोषी बतलाया गया है तथा उसका नाश करने की व्यवस्था का वर्णन किया गया है[१]। मनुस्मृति में आगे यह भी कहा गया है कि राजा भी न्याय से मुक्त नहीं हो सकता। उस पर भी एक हजार गुना अर्थ-दण्ड लगाया जा सकता है[२]। प्रसाद ने भी इसी का अनुमोदन अपनी कृतियों में किया है तथा अत्याचारी शासक जो अधर्म से दण्ड देता है दोषी ठहराया है। 'विशाख', 'ध्रुवस्वामिनी' तथा 'चन्द्रगुप्त' में राजा नरदेव, रामगुप्त तथा नन्द के अत्याचारी होने पर इसी प्रकार का व्यवहार किया गया है। 'विशाख' में राजा द्वारा क्षमा मांगने पर उसे माफ कर दिया गया है[३] परन्तु रामगुप्त[४] और नन्द[५] का तो वध करना ही जनता के लिए हितकर रहा है।

सैन्य-व्यवस्था

प्रसाद ने युद्ध-व्यवस्था के लिए अपने साहित्य में सैन्य संचालन को स्थान दिया है। प्रसाद-साहित्य में नासीर-सेना[६], रक्षित-सेना[७], रक्षक-सेना[८] तथा दुर्ग-रक्षक सेना[९] के नाम प्रयुक्त किये गये हैं। यह सेनाएँ देश की रक्षा में सबसे आगे चलने वाली होती थीं तथा राजा और सेनापति के रक्षार्थ उनके निवास पर तैनात रहती थीं। प्रसाद ने चतुरंगिनी सेना का भी प्रयोग किया है[१०]। चतुरंगिनी सेना में रथ[११], हाथी[१२], घोड़े[१३] और पैदल होते थे। रामचरित में इसका उल्लेख मिलता है[१४]। प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' में सिकन्दर के बेड़े और मालवों की जल सेना के लिए नौ-बल सेना का वर्णन किया है[१५]। अर्थशास्त्र में जल सेना के लिए नौकाओं का भी उल्लेख मिलता है[१६]।

---

१. मनुस्मृति ७।२८

२. 'कार्षापणं भवेद्दण्डयो यत्रान्यप्रकृत्तोजनः
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा।
—मनुस्मृति ८।३३६

३. विशाख, पृ० ९२

४. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६४

५. चन्द्रगुप्त, पृ० १७१

६. स्कन्दगुप्त, पृ० ६, १२; चन्द्रगुप्त, पृ० २३५

७. चन्द्रगुप्त, ११९

८. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ६; स्कन्दगुप्त, पृ० ९३

९. राज्यश्री, पृ० २८

१०. चित्राधार, ब्रह्मर्षि, पृ० ११८

११. चन्द्रगुप्त, पृ० ११३

१२. वही, पृ० ११३; राज्यश्री, पृ० ५९

१३. वही, पृ० ११३; राज्यश्री, पृ० १९

१४. 'सेन संग चतुरंग अपारा'—रामचरित मानस, बालकाण्ड १५३।३

१५. चन्द्रगुप्त, पृ० १३०-३१

१६. अर्थशास्त्र, २।२८।२१

सेनापति

सेना का प्रधान सेनापति होता था। सेनापति को युद्ध कौशल में निपुण होना आवश्यक था[1]। चन्द्रगुप्त इसी कारण तक्षशिला में युद्ध-नीति सीखने भेजा गया था[2]। इसी कारण युद्ध-परिषद् चन्द्रगुप्त को उसके युद्ध कौशल के आधार पर उसे सेनापति बनाती है[3]। उसकी आजीविका युद्ध ही होती है[4]। इसी कारण सिंहरण अपने जीवन को जन्मभूमि के लिए मानता है[5]। उसमें सैन्य-संचालन के गुण हैं, इसी कारण चाणक्य उसे महाबलाधिकृत के पद पर सुशोभित करता है[6]। इसी प्रकार सेनापति की योग्यताएँ महाभारत[7] और कौटिल्य 'अर्थशास्त्र'[8] में वर्णित हैं।

युद्ध में राजा

सेना के प्रधान को सेनापति के नाम से सम्बोधित किया जाता है। सेनापति के रूप में चन्द्रगुप्त[9], सिंहरण[10], भट्टार्क[11], पर्णदत्त[12], बन्धुल[13], दीर्घकारायण[14], भण्डि[15] आदि ने सैन्य-संचालन का कार्य किया है। यहां राजा का काम युद्ध में सैन्य-संचालन करते हुए देश-रक्षा करना सिद्ध होता है। पर्वतेश्वर युद्धभूमि में गज-सेना का संचालन करते हुए यवनों को ललकारता है—'आज रणभूमि में पर्वतेश्वर पर्वत के समान अचल है। जय-पराजय की चिन्ता नहीं। इन्हें बतला देना होगा कि भारतीय लड़ना जानते हैं। बादलों में पानी बरसने की जगह बज्र बरसें, सारी गज-सेना छिन्न-भिन्न हो जाय, रथी विरथ हों, रक्त के नाले धमनियों से बहें, परन्तु एक पग भी पीछे हटना पर्वतेश्व के लिए असम्भव है। धर्म-युद्ध में प्राण-भिक्षा मांगने वाले भिखारी हम नहीं[16]।' इसी प्रकार चन्द्रगुप्त भी शासक होने के उपरान्त मगध पर संकट आने पर सेनापति का कार्य करते हुए कह उठता है—'आज से मैं ही बलाधिकृत हूं। मैं आज सम्राट् नहीं, सैनिक हूं[17]। इसी प्रकार प्रसाद की अन्य कृतियों में बभ्रूवाहन, अर्जुन, प्रसेनजित,

---

१. स्कन्दगुप्त, पृ० १७
२. चन्द्रगुप्त, पृ० ७६
३. चन्द्रगुप्त, पृ० १२७
४. वही, पृ० ११६; स्कन्दगुप्त, पृ० १२
५. स्कन्दगुप्त, पृ० ८०
६. स्कन्दगुप्त, पृ० २०९-११
७. महाभारत, उद्योग पर्व, अध्याय १६४।७-११
८. कौटिलीय अर्थशास्त्र, अधि० २, अ० ३३।१३-१४
९. चन्द्रगुप्त, पृ० २०२
१०. वही, पृ० २११
११. स्कन्दगुप्त, पृ० ३०
१२. वही, पृ० ११
१३. अजातशत्रु, पृ० ९३
१४. वही, पृ० ९३
१५. राज्यश्री, पृ० ३४
१६. चन्द्रगुप्त, पृ० १४४
१७. वही, पृ० २०२

अजातशत्रु, विरुद्धक, हर्ष आदि अवसर पड़ने पर युद्ध-क्षेत्र में सैन्य-यात्रा करते हुए दृष्टिगत होते हैं। राजा के युद्धभूमि में आने पर सेना में उमंग और जोश भर आता है[1]।

युद्ध में कुमार

युद्ध-क्षेत्र में कुमार भी सैन्य-संचालन करता है। 'स्कन्दगुप्त' में स्वयं स्कन्दगुप्त मालव सेना की रक्षा के लिए सन्नद्ध है। उसकी यह धारणा है कि उसके जीते-जो मालव का कुछ न विगाड़ सकेगा[2]। 'महाराणा का महत्व' में अमरसिंह[3], अजातशत्रु में विरुद्धक[4], 'ध्रुवस्वामिनी' में चन्द्रगुप्त[5], आदि कुमार रूप में युद्ध-संचालन करते हैं। श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी ने राजकुमार या कुमार का पद सेनापति से नीचा बतलाया है[6], परन्तु प्रसाद ने अपने साहित्य में युवराजों द्वारा स्वतंत्रता से सैन्य-संचालन करने का उल्लेख किया है। युद्धभूमि में युवराज के सैन्य-संचालन का प्रमुख ध्येय युद्ध का अनुभव कराना ही जान पड़ता है।

युद्ध

युद्ध के माध्यम से शत्रुओं का दमन किया जा सकता है। कौटिल्य ने युद्ध के तीन प्रकार माने हैं। प्रकाश, कूट और तृष्णीय। प्रकाश-युद्ध शत्रु को ललकार कर किया जाता है। कूट-युद्ध का अर्थ शत्रु को धोखा देकर युद्ध करना है। तृष्णीय युद्ध में विष या औषधि द्वारा या गुप्तचरों द्वारा बहकाने या धोखा देने आदि के प्रयोग होते हैं[7]। प्रसाद-साहित्य में वर्णित युद्धों में सांकेतिक रूप से प्रकाश और कूट-युद्ध के लक्षण दृष्टिगत होते हैं।

प्रकाश-युद्ध

प्रसाद-साहित्य में अनेक स्थलों पर इस प्रकार के युद्ध का वर्णन हुआ है।

---

१. चित्राधार, प्रेम-राज्य, पृ० ७५
२. स्कन्दगुप्त, पृ० १३
३. महाराणा का महत्व, पृ० ७
४. अजातशत्रु, पृ० ५६-५७
५. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ४८
६. अम्विकाप्रसाद वाजपेयी, हिन्दू राज्य
७. प्रकाशयुद्ध निर्दिष्टो देशे काले च विक्रमः।
विभीषणमवस्कन्दः प्रमादव्यसनार्दनम् ॥४६॥
एकत्र त्यागपातौ च कूटयुद्धस्य मातृका।
योगगूढौपचाराद्यं तृष्णी-युद्धस्य लक्षणम् ॥४७॥
—अर्थशास्त्र, अधि० ७, अ० ७

बभ्रूवाहन-अर्जुन[१], कुश-कुमुद[२], सत्यकेतु-यवन[३], कौरव-गन्धर्व[४], सिकन्दर-पर्वतेश्वर[५], चन्द्रगुप्त-सैल्यूकस[६], स्कन्द-हूण[७], हर्ष-पुलकेशिन[८] आदि के युद्ध इसी प्रकार के हैं। बभ्रूवाहन पाण्डवों के अश्वमेध-यज्ञ के घोड़े को पकड़ कर युद्धभूमि में अर्जुन को प्रणाम करने के उपरान्त धनुष टंकारता है[९]। कुमुद नाग द्वारा अवध को हस्तगत करने पर कुश अपने दूत यह संदेश लेकर भिजवाता है—

'बिनु बूझि तुम अधिकृत कियो
यह अवधि नगरि सुहावनी।
तेहि छोड़ि के चलि जाहु,
नहु संगर कर ले कै अनी[१०]।'

कुमुद इस संदेश को सुन कर युद्ध के लिए प्रयाण करता है। टालीकोट की युद्धभूमि में महाराज सत्यकेतु अपने प्रतिपक्षी यवनों के साथ युद्ध करते हैं। इसी प्रकार सिकन्दर-पर्वतेश्वर के युद्ध में पर्वतेश्वर की घायल अवस्था में सिकन्दर उसके साथ नरपति जैसा व्यवहार करता है[११]। इनमें रण-वाद्य की पूर्व घोषणा के उपरान्त दोनों सेनाओं में आपस में युद्ध होता है। इस प्रकार के युद्ध के विषय में प्रसाद ने एक स्थल पर कहा है—ये हमीं लोगों के युद्ध हैं जिनमें रण-भूमि के पास ही कृषक स्वच्छन्दता से हल चलाता है[१२]।'

इन युद्धों में किसी प्रकार की कूटनीतिज्ञता दृष्टिगत नहीं होती और न ये किसी के बहकाने पर ही हुए हैं। इन्हें हम धर्म-युद्ध भी कह सकते हैं। इस प्रकार के युद्ध का उद्देश्य अधर्म का नाश और धर्म का संस्थापन ही होता था, परन्तु अश्वमेध और रारसूय यज्ञ द्वारा या दिग्विजयी की उत्कट अभिलाषा का कारण भी युद्ध का प्रयोजन होता था[१३]।

कूट-युद्ध

कूट-युद्ध में छल या धोखे से शत्रु पर आक्रमण करना होता है। इसमें विजयी पक्ष वाले शत्रु-पक्ष को येन-केन प्रकारेण अपने पक्ष में करके उन पर अधिकार करना

---

१. चित्राधार, बभ्रुवाहन, पृ० ४६-४७
२. वही, अयोध्या का उद्धार, पृ० ५८-५९
३. वही, प्रेमराज्य, पृ० ७४-७७
४. वही, प्रायश्चित, पृ० १०६
५. चन्द्रगुप्त, पृ० ११५
६. वही, पृ० २१०
७. स्कन्दगुप्त, पृ० ९६-९८
८. राज्यश्री, पृ० ५७
९. चित्राधार, बभ्रुवाहन, पृ० ४५-४६
१०. वही, अयोध्या का उद्धार, पृ० ५८-५९
११. चन्द्रगुप्त, पृ० ११५
१२. चन्द्रगुप्त, पृ० १३१
१३. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, हिन्दू राजशास्त्र, पृ० २८५

चाहते हैं। प्रसाद साहित्य में इस प्रकार के युद्धों के उदाहरण मिल जाते हैं । 'महाराणा का महत्व' में एक राजपूत टुकड़ी छल से यवनों की एक टुकड़ी पर हमला करती है और अन्त में बचे हुए यवन सैनिकों तथा नबाब की पत्नी को शिविर में ले जाते हैं[१] । 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' में अंग्रेज-सिक्ख युद्ध में सिक्खों की पराजय हुई, उसी के परिणामस्वरूप से सिक्ख 'छल-बल वेदी पर आप सब सो गये[२] ।' 'प्रलय की छाया' में शत्रु के आक्रमण से हरा-भरा गुजरात युद्ध-भूमि बन गया, वहां की रानी कमला वन्दिनी बनी तथा चहुं ओर आर्त्तवाणी का स्वर सुनाई देने लगा—

'बालकों की करुण पुकारें, और वृद्धों की आर्त्तवाणी,
क्रन्दन रमणियों का,
भैरव संगीत घना, ताण्डव नृत्य-सा
होने लगा गुजर में[३] ।'

'प्रायश्चित' में जयचन्द द्वारा अपने जामाता पृथ्वीराज की हत्या 'प्रतिहिंसा', आत्मसम्मान और दुर्दमनीय-वृत्ति के वशीभूत होकर हुई है[४] । 'अजातशत्रु' में अजातशत्रु अनपी कूटनीति से कौशल सेनापति दीर्घकारायण और शत्रु राजकुमार विरुद्धक से मिल कर कौशल पर आक्रमण करता है[५] । चद्रन्गुप्त यवन सेना में धोखे से आतंक फैलता है[६] । चाणक्य मालविका, चर, नन्द, तथा राक्षस को असमंजस में डाल कर मगध में विद्रोह उत्पन्न करता है[७] । स्कन्दगुप्त, में सिंगल दुर्गपतियों को लोभ देकर धन-विद्रोह कराने का प्रयत्न करता है[८] । 'राज्यश्री' में देवगुप्त की सेना प्रजावेश में कान्यकुब्ज दुर्ग में प्रविष्ट होकर उस पर विजय प्राप्त कर लेती है[९] । 'ध्रुवस्वामिनी' में चन्द्रगुप्त का स्त्री वेश में शक-शिविर में विजय प्राप्ति की इच्छा से जाना भी उसकी कूटनीतिज्ञता का द्योतक है[१०] । 'सिकन्दर की शपथ' कहानी में सिकन्दर ने छल से अफगान सरदार को मार कर उसके वस्त्र पहनकर अपने साथियों के साथ दुर्ग पर अधिकार किया है[११] । 'गुलाम' कहानी में बादशाह शाहआलम का प्रिय गुलाम-कादिर उससे अपने बूढ़े पिता की सेवा के लिए विदा लेकर जाता है, परन्तु वहां जाकर रुहेलों से

१. महाराणा का महत्व, पृ० ५-६
२. लहर, शेरसिंह का शस्त्र समर्पण, पृ० ५४
३. लहर, प्रलय की छाया, पृ० ६५-६७
४. चित्राधार, प्रायश्चित, पृ० ९०
५. अजातशत्रु, पृ० १०८
६. चन्द्रगुप्त, पृ० १२८
७. वही, पृ० १७२
८. स्कन्दगुप्त, पृ० ९२
९. राज्यश्री, पृ० २८
१०. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ४६
११. छाया, सिकन्दर की शपथ, पृ० ५९-६०

मिल कर दिल्ली दुर्ग पर अधिकार करता है । बाद में वह लोभ से खजाना न प्राप्त करने के अपराध में शाहआलम की दोनों आंखें निकाल लेता है[1] ।

द्वन्द्व-युद्ध

प्रसाद-साहित्य में द्वन्द्व-युद्ध का उल्लेख मिलता है। यह युद्ध दो व्यक्तियों में लड़ा गया है। 'कुरुक्षेत्र' आख्यानक में भीम और शिशुपाल के मध्य हुए द्वन्द्व युद्ध का प्रसंग आया है[2] । 'सज्जन' नाटिका में अर्जुन और चित्रसेन के मध्य द्वन्द्व-युद्ध होता है[3] । इस युद्ध में आपस में द्वन्द्व-युद्ध करने का निमंत्रण नहीं दिया गया । चन्द्रगुप्त और फिलिप्स[4], स्कन्दगुप्त और भट्टार्क[5] तथा अजातशत्रु और कारायण[6] के मध्य हुए द्वन्द्व-युद्ध के प्रारम्भ में एक वीर अपने प्रतिद्वन्दी को निमंत्रण द्वारा द्वन्द-युद्ध के लिए आवाह्न करता है । दो व्यक्तियों के मध्य हुए द्वन्द-युद्ध की परम्परा अर्वाचीन न हो कर प्राचीन रही है। महाभारत में भीम और दुर्योधन के मध्य हुए द्वन्द-युद्ध का उल्लेख मिलता है[7] ।

अस्त्र-शस्त्र

शुक्रनीति में कहा गया है कि जो हथियार मंत्र, यन्त्र और अग्नि से चलाये ज़ाते हैं ये अस्त्र कहलाते हैं और जो हाथ में धारण किये जाते हैं वे शस्त्र कहलाते हैं। इनमें कमान और धनुष शस्त्र हैं, परन्तु वाण और तीर अस्त्र हैं । अस्त्र दो प्रकार के होते हैं—नालिका और यांत्रिक[8] । प्रसाद ने भी अपनी रचनाओं में अस्त्र-शस्त्र, दोनों का वर्णन किया है। उन्होंने दुर्ग-ध्वंस के लिए मंत्रों का वर्णन किया है, जो अस्त्र की श्रेणी में आते हैं। युद्ध में वाण का प्रयोग भी हुआ है। 'अजातशत्रु' में बंधुल की वाण विद्या का उल्लेख मिलता है[9] । चन्द्रगुप्त तक्षशिला में युद्ध-नीति की शिक्षा लेने जाता है[10] । वाण और धनुष के अतिरिक्त छुरी[11], तलवार[12], भाला[13], कटार, आदि

---

१. छाया, गुलाम, पृ० ९१-९५

२. कानन कुसुम, कुरुक्षेत्र, पृ० ११२

३. चित्राधार, सज्जन, पृ० १११

४. चन्द्रगुप्त, पृ० १५३

५. स्कन्दगुप्त, पृ० ६३

६. अजातशत्रु, पृ० ११६

७. महाभारत, सत्यपर्व, अध्याय ३१

८. 'अस्यतेक्षिप्यसेयतुमंत्रयंत्राग्निमिश्चतन् ।।
अस्त्रंतदन्यतः शस्त्रमसिकुंताविकंययत् ।
अस्त्रंसुत्रिविषशेयंनालिकंमामिकंतधा ।।
—शुक्रनीति, अध्याय ४।१०२४-५

९. अजातशत्रु, पृ० ७५

१०. चन्द्रगुप्त, पृ ६६

११. स्कन्दगुप्त, पृ० ३९; ध्रुवस्वामिनी, पृ० २९

१२. चित्राधार, बभ्रुवाहन, पृ० ४६; जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ६०

१३. चन्द्रगुप्त, पृ० १४९

शस्त्रों का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है।

रण-वाद्य

प्रसाद उन रणवाद्यों से भी सुपरिचित हैं जो प्राचीन भारत में प्रचलित थे। उनकी रचनाओं में रणभेरी[१], तुरही[२], तूर्य[३], शंख[४] आदि रण-वाद्यों का उल्लेख मिलता है। महाभारत में युद्ध के समय बजने वाले अनेक रण-वाद्यों का प्रयोग हुआ है[५]।

ध्वजा

ध्वजा प्राचीन राजवंशों का प्रमुख चिह्न थी। 'अयोध्या का उद्धार' आख्यानक में ध्वजा कुश के ऐश्वर्य का प्रतीक है—

'तुम छाइ रहे कुशवती
अरु सोये रघुवंश की ध्वजा[६]।'

ध्वजा के लिए प्रसाद ने कुछ स्थलों पर पताका[७] और गरुड़ध्वज[८] का प्रयोग किया है। इस प्रकार के राज-चिह्नों का प्रयोग रामायण में भी मिलता है[९]।

वैदेशिक-नीति

वैदेशिक-नीति का सम्बन्ध देश की वाह्य राजनीति से होता है। इसका प्रधान सन्धिविग्रहक होता है जो अमात्य की ही श्रेणी का व्यक्ति होता है। इसके संरक्षण में दूत और गुप्तचर कार्य करते हैं। वैदेशिक नीति में युद्ध और शान्ति-सम्बन्धी विषयों की प्रमुखता रहती है। अग्नि-पुराण में वैदेशिक नीति के छः गुण बतलाये गये हैं— सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वेवेदी-भाव और संश्रय[१०]।

प्रसाद-साहित्य में वर्णित वैदेशिक नीति के अन्तर्गत हम सन्धि-विग्रहक, दौत्यकर्म (दूत), गुप्तचर तथा सन्धि को ले सकते हैं।

संधि-विग्रहक

अन्य राष्ट्रों से सम्बन्ध रखने का कार्य राजा का है, परन्तु इस कार्य में जो

---

१. चन्द्रगुप्त, पृ० १२८
२. स्कन्दगुप्त, पृ० १०७
३. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ४८
४. स्कन्दगुप्त, पृ० ५२
५. महाभारत, पृ० ७।१०५
६. चित्राधार, पृ० ५५
७. अजातशत्रु, पृ० ४५; चन्द्रगुप्त, पृ० ९६, १२१
८. स्कन्दगुप्त, पृ० ६, ९२, १९३, ९५
९. रामायण, बालकाण्ड, ५।११ ; युद्धकाण्ड, ५५।२०
१०. 'सन्धिश्च विग्रहश्चैव यानमासनमेव च।
द्वैधी भावः संश्रयश्नषड् गुणाः प्रकीर्तिता ॥
—अग्निपुराण—२३४।१७

सबसे बड़ा सहायक होता है, वह महासन्धि-विग्रहक होता है, जो आजकल का परराष्ट्र-मन्त्री कहलाता है । इसका कार्य युद्ध वा शान्ति-सम्बन्धी विषयों से होता है[1] । यह अमात्य की श्रेणी में आता है । प्रसाद ने सिंहरण के लिए संधि-विग्रहक अमात्य का प्रयोग किया है[2] । सिकन्दर ने अपने यवन दूत द्वारा उससे मिलने तथा अपने लिए जल-यात्रा की सुविधा का प्रवन्ध करने का संदेश भेजा है । मालव का संधि-विग्रहक-अमात्य सिंहरण यवन दूत को यह सन्देश देता है—'सिकन्दर से मालवा की ऐसी कोई संधि नहीं हुई है, जिसे इस कार्य के लिए वाध्य हों । हां, भेंट करने के लिए मालव सदैव प्रस्तुत है—चाहे संधि-परिषद् में या रणभूमि में[3] । 'स्कन्दगुप्त' नाटक में पृथ्वीसेन संधि-विग्रहक है जो युद्ध एवं संधि-सम्बन्धी कार्यों का अधिपति है । वह महाराज कुमारगुप्त से युद्ध-सम्बन्धी विषयों पर वार्तालाप करता है । शक-आक्रमण को रोकने के लिए वह युवराज और महावलाधिकृत भट्टार्क को भेजने का अनुरोध करता है । इस प्रकार पृथ्वीसेन परराष्ट्र सम्बन्धी विषयों में निपुण दिखाई देता है । महाराज को भी उसकी बात का समर्थन करना पड़ता है[4] ।

संधि-विग्रहक परराष्ट्र विभाग का अध्यक्ष होता है । अतः दूत और गुप्तचर उसी के संरक्षण में रहते हैं ।

दौत्य-कर्म

विदेश-नीति में दौत्य-कर्म आवश्यक वतलाया गया है । अन्य राष्ट्र की आन्तरिक स्थिति का ज्ञान, स्वकीया नीति की स्पष्टता, संदेश प्राप्ति आदि कर्म दूतों द्वारा किये जाते हैं । अग्निपुराण[5] में दूतों के तीन प्रकार बतलाये हैं—निःसृष्टार्थ, मितार्थ तथा शासनहारक । निःसृष्टार्थ दूत में संधि निर्वाह, युद्ध-घोषणा, शान्तिस्थापन आदि का कार्य-क्षेत्र रहता है । मितार्थ—किसी विशेष कार्य के लिए विशेष सभा में भेजा जाता है । उसके अधिकार सीमित होते हैं । शासन-हारक का कार्य संदेश-वाहक का होता है । इसी प्रकार दूतों के भेद कौटिल्य ने भी किये हैं[6] ।

प्रसाद-साहित्य में अनेक स्थलों पर दूतों का उल्लेख हुआ है । दूत को प्रसाद

---

१. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, हिन्दू राजशास्त्र, पृ० ३०२

२. चन्द्रगुप्त, पृ० १३१

३. वही, पृ० १३१

४. स्कन्दगुप्त, पृ० १७

५. निसृष्टार्थो नितार्थश्च तथा शासन हारकः ।
सामर्थ्यात्पादतो हीनां दूतस्तु त्रिविधः स्मृतः ।।
—अग्निपुराण २४१।८

६. अमात्य सम्पदोर्येतो निसृष्टार्थः ।।२।।
पादगुणहीनः परिमितार्थः ।।३।। अर्थगुणहीनः शासनहरः ।।४।। अधि० १ अ० १६

ने एक सम्मानित व्यक्ति बताया है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में सिंहरण अपने शत्रु यवन के दूत की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखता है। इसी कारण वह यवन-दूत के साथ अपने सैनिकों को भेजता है जो उसे सीमा तक सुरक्षित छोड़ आते हैं[१]। प्रसाद द्वारा वर्णित दूत शासनहारक हैं जिनका प्रमुख कार्य है—संदेश देना। यवनदूत सिंहरण को यह संदेश देता है—'मालव-नेता मुझ से (सिकन्दर) आकर भेंट करें और मेरी जल-यात्रा की सुविधा का प्रबन्ध करें[२]। इसके साथ ही वह दूत शत्रु का यह संदेश ले जाता है—'हाँ भेंट करने के लिये मालव सदैव प्रस्तुत हैं—चाहे संधि-परिषद् में या रणभूमि में[३]। 'ध्रुवस्वामिनी' में शकराज का दूत रामगुप्त से शकराज के लिए ध्रुवस्वामिनी तथा अन्य सामन्तों के लिए स्त्रियों की मांग प्रस्तुत करता है। शत्रुपक्ष की इस संधि-संदेश को न स्वीकार करने पर युद्ध करना आवश्यक है[४]। सिकन्दर का दूत पर्वतेश्वर के पास आकर रावी तट पर सेना-सहित मिलने का संदेश लेकर आता है[५]। इसी प्रकार कुश का दूत कुमुद नाग के पास नगरी त्यागने या सेना लेकर आने का संदेश लेकर आता है[६]।

इस प्रकार के संदेशों को पहुंचाने के अतिरिक्त दूत का एक और कार्य है—सैन्य सहायता सम्बन्धी संदेश ले जाना। मालवेश बन्धुवर्मा का दूत स्कन्दगुप्त के पास सैन्य सहायता सम्बम्धी संदेश लेकर आता है[७]।

प्रसाद ने एक स्थल पर निसृष्टिार्थ दूत का उल्लेख भी किया है। सिंहल का दूत अनन्ददेवी के पास उपहार लेकर आया है। वह अपनी कुशलता से गुप्तसन्धि का पालन कराता है साथ ही साथ अपने शौर्य को प्रदर्शित करते हुए भट्टार्क को भय से हूणों की सहायता देने को वाध्य करता है[८]।

गुप्तचर

प्रसाद-साहित्य में, प्रमुख रूप से उनके नाटकों में, गुप्तचर का उल्लेख हुआ है। प्रसाद ने गुप्तचर के लिए चर[९], और गुप्त अनुचर[१०] नाम का सम्बोंधन किया है। प्रसाद ने गुप्तचर और चर में किसी प्रकार का भेद नहीं किया। गुप्तचर का प्रमुख कार्य शत्रु के गुप्त रहस्यों का पता लगाना तथा गुप्त-संदेश भिजवाना है।

---

१. चन्द्रगुप्त, पृ० १३१
२. वही, पृ० १३१
३. वही, पृ० १३१
४. ध्रुवस्वामिनी, पृ० २३-२४
५. चन्द्रगुप्त, पृ० १२८
६. चित्राधार, पृ० ५८
७. स्कन्दगुप्त, पृ० १२-१३
८. वही, पृ० ८७-८८
९. चित्राधार, प्रायश्चित, पृ० ९७; चन्द्रगुप्त, पृ० १३९, १५१; राज्यश्री, पृ० २६
१०. अजातशत्रु, पृ० ६४

गुप्तचर के भेद

'अर्थशास्त्र' में गुप्तचर के दो भेद किये गये हैं—संस्था और संचार । एक स्थान पर कापटिक या सन्यासी गुप्त वेष में रहकर जो रहस्यों की शोध करते हैं उन्हें संस्था कहा जाता है और जो देश-देशान्तर में गुप्त रहस्यों का पता लगाते हैं उन्हें संचार कहा जाता है[१] । प्रसाद के नाटकों में इस प्रकार का कोई भेद नहीं किया गया है, फिर भी सुविधा की दृष्टि से हम उन्हें संचार की श्रेणी में रख सकते हैं।

संचार-गुप्तचर

'प्रायश्चित' नाटिका में चर मंत्री को यवनों की सेना का कन्नौज में एक-दो पहर के अन्दर पहुंचने की बात कहता है[२] । यह गुप्तचर छद्मवेश में रह कर गुप्त-रहस्यों की खोज किया करते थे । चन्द्रगुप्त कभी इन्द्रजाली रूप धारण करता है और कभी कुछ । इसका रहस्य गोपनीय है । इसी कारण चन्द्रगुप्त मालविका से कहता है—'तुम इन बातों को पूछ कर क्या करोगी[३] ?' सिंहरण के बन्दीगृह में चाणक्य का चर क्षपणक-वेश में गीत गाता हुआ, भीख मांगता हुआ सिकन्दर की सेना के रावी पार होने, पंचनद-संधि तथा यवन लोगों के आगे बढ़ने का गुप्त-संदेश सुना जाता है[४] ।

नारी-गुप्तचर

प्रसाद के नाटकों में गुप्तचर का कार्य पुरुष ही नहीं नारियां भी करती हैं । मालविका नन्द के पास नर्तकी के वेष में राक्षस का जाली पत्र तथा उसकी मुद्रा लेकर जाती है[५] । सुवासिनी गुप्तचर होने के कारण ही ग्रीक-शिविर में बन्दिनी बना ली जाती है, बाद में उसे कार्नेलिया के पास भिजवा दिया जाता है[६] ।

प्रसाद द्वारा वर्णित गुप्तचरों के कार्यों को देखने से विदित होता है कि ये अपने स्वामी के विश्वासपात्र होते हैं । ये गुप्तचर अपने जीवन को हथेली पर रख कर कार्य करते हैं । ये एक प्रकार से शासक की आंखें होती हैं । कामन्द ने अपने नीतिसार में चर के गुण भी यही बतलाये हैं[७] ।

---

१. अर्थशास्त्र, १।११।८-९

२. चित्राधार, पृ० ९७

३. चन्द्रगुप्त, पृ० १२०

४. वही, पृ० १२१

५. वही, पृ० १५७

६. वही, पृ० २०४

७. चारचक्षुनरेन्द्रस्तु सम्पतेत् तैन मूयसा ।
अनेमासम्पतन् भार्गात् पतस्यन्थः समे मिहि ॥३१॥
चरेण प्रचरेत्प्राज्ञः सूत्रेणर्त्विगिधाध्वरे ।
दूतै सन्धानमायतं चरै चर्या प्रतिष्ठिता ॥३४॥
—नीतिसार, सर्ग १३

संधि

वैदेशिक नीति में संधि का प्रमुख स्थान है । शुक्रनीति में कहा गया है कि बलवान् राजा से दबाया हुआ निर्बल राजा उससे प्रतिशोध न ले सके तो वह भेंट दे कर शत्रु के साथ संधि करे । वह शत्रु की सेवा को स्वीकार करे और कन्या, भूमि, धन देकर अपने समीप के राजा या सामन्तों से सन्धि करे[१] ।

सन्धि-कर्म कन्या-सम्प्रदान के द्वारा भी सम्पन्न किया जाता था । प्रसाद ने ऐसी परिस्थितियों का आयोजन प्रस्तुत किया है । अजातशत्रु और वाजिरा[२], चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया[३], जनमेजय और मणिमाला[४] को विवाह-सूत्र में बांधने में मैत्री-सम्बन्ध स्थापन की भावना रही है । देवसेना और स्कन्दगुप्त के विवाह द्वारा बन्धुवर्मा की इच्छा मालव और गुप्तों में मैत्री-स्थापन की थी; परन्तु इनका विवाह नहीं हुआ है[५] । ध्रुवस्वामिनी भी मैत्री रूप में समुद्रगुप्त की विजय यात्रा में उपहार स्वरूप गुप्त साम्राज्य के लिए आई है[६] । मालवों से सन्धि करने के लिए आम्भीक ने बहिन अलका का सिंहरण से विवाह कराया है[७] । गांधार-नरेश ने सन्धि की शर्तों को पूरा करने के लिए अपने पुत्र आम्भीक के लिये पर्वतेश्वर से उसकी कन्या की मांग प्रस्तुत की है[८] । सिकन्दर-पर्वतेश्वर मैत्री के उपरान्त सिकन्दर पर्वतेश्वर और आम्भीक में संधि-स्थापन के लिए पर्वतेश्वर की कन्या का विवाह आम्भीक से करा देता है[९] ।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि प्रसाद ने अपने साहित्य में राजनीति के जिस स्वरूप का चित्रण किया है, वह प्राचीन संस्कृति की पीठिका पर आधारित है । प्रसाद राजनीति में आदर्श की स्थापना करना चाहते थे । इस आदर्श की उपलब्धि उन्हें प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में हुई, इसलिए उन्होंने अपने

---

१. वलीयसामियुक्तस्तुमृपोनान्यप्रतिक्रियः ।।
आपन्नः संधिमन्धिच्छेत्कुर्वाणः कालपालनम् ।
एकएवोपहारस्तुसंघिरैषमतोहिनः ।।७१।।
सर्वांवापिचस्वीकुर्याद्धयात्कन्यांमुवेधनम् ।
स्वसामंतांश्चसंधीयान्मत्रेषान्यजयाय वै ।।७४।।
—शुक्रनीति ४।१०७१, १०७४

२. अजातशत्रु, पृ० १३४
३. चन्द्रगुप्त, पृ० २२२
४. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० १०४-५
५. स्कन्दगुप्त, पृ० १४०
६. ध्रुवस्वामिनी, पृ० २३
७. चन्द्रगुप्त, पृ० १५६
८. वही, पृ० ९४
९. वही, पृ० १२२

ग्रन्थों में राज-व्यवस्था का सम्पूर्ण ढांचा प्रायः भारतीय संस्कृति से अनुमोदित ही रखा। चाहे राज-परिषद् का वर्णन हो अथवा शासन-व्यवस्था का, न्याय-व्यवस्था का वर्णन हो या दन्ड व्यवस्था का सैन्य संचालन की नीति का वर्णन हो या वैदेशिक-नीति का— सर्वत्र उन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृति का अनुसरण किया है। यद्यपि कहीं-कहीं विदेशी संस्कृति पर आधारित राज-व्यवस्था भी दीख पड़ती है पर प्रायः सर्वत्र ही विदेशी-राजनीतिक-व्यवस्था पर भारतीय राजनीतिक-व्यवस्था की विजय करा कर प्रसाद ने भारतीय राजनीति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। अनेक द्वन्द्वों में, मानसिक और राजनीतिक उथल-पुथल में और राजनीतिक दांव-पेच में प्रसाद द्वारा प्रतिपादित राजनीति और कूटनीति (जो मुख्यतया भारतीय संस्कृति पर आधारित है) विदेशियों पर हावी हुई है और उसे अन्त में उज्ज्वल सफलता मिली है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रसाद की राजनीति का उद्भव भारतीय संस्कृति के अंचल में ही हुआ है और उसी की शीतल छाया में उसे पनपने और फलने-फूलने का अवसर मिला है।

अध्याय ६

धार्मिक एवं नैतिक पृष्ठभूमि

साहित्य और धर्म

धर्म भारतीय संस्कृति का प्राण है। उसमें नैतिकता और आस्तिकता का सच्चा स्वरूप दृष्टिगत होता है। इन दोनों के अभाव में जीवन की सरसता फीकी पड़ जाती है। मानव-हृदय को मृदुल एवं पावन बनाने की क्षमता धर्म ही में होती है। मानव-हृदय उदार और विशाल धर्म से ही बनता है। इसी कारण साहित्यकार का धार्मिक होना अत्यन्त वांछनीय है। साहित्यकार की धार्मिक प्रवृत्ति साहित्य को विश्व-कल्याणकारी बनाती है। प्रत्येक साहित्य में कुछ धार्मिक आस्थाएँ और विश्वास होते हैं। उन्हीं के माध्यम से वह साहित्य सृजन करता है, जिससे उसकी कृति प्रौढ़ और महान् बनती है। साहित्य जब धर्म से पोषित होता है तब उसमें मानव-आग्रह और आदर्श सुरक्षित रहते हैं।

धर्म

धर्म के आश्रय में प्राणीमात्र भौतिक सुख तथा अभौतिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता हुआ सुख से जीवन-यापन करता है। प्रसाद का कहना है 'धर्म मानवीय स्वभाव पर शासन करता है, न कर सके तो मनुष्य और पशु में भेद क्या रह जाय[1] ? धर्म में संस्कार और सहविचारों की प्रमुखता रहती है। सहविचार के अभाव में मनुष्य का कोई अस्तित्व नहीं रहता और बिना धर्म संस्कार के सद्विचार स्थिर नहीं रह सकते[2]।

धर्म के रूप

प्रसाद-साहित्य धर्म को अनेक सारणियों में प्रस्तुत करता है। उनमें से प्रमुख हैं— ईश्वर का स्वरूप, ईश्वर का अस्तित्व, ईश्वर की एकता, ईश्वर-भक्ति, उपासना, यज्ञ-कर्म,

१. कंकाल, पृ० ११०   २. कंकाल, पृ० ४०

देवस्वरूप तथा धार्मिक-विश्वास। धर्म के इन रूपों पर ब्राह्मण-धर्म और बौद्ध-धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है। ब्राह्मण-धर्म की प्रधानता 'जनमेजय का नागयज्ञ' और 'चन्द्रगुप्त' में प्रमुख रही है। दाण्ड्यायन, व्यास और चाणक्य इसके प्रतीक हैं। ब्राह्मण का स्थान अन्य वर्णों की अपेक्षा उच्च है। उनके शूद्र सेवक, वैश्य पोषक तथा क्षत्रिय रक्षक हैं। दूसरी ओर प्रसाद बौद्ध-धर्म से प्रभावित हैं। संसार में प्रत्येक प्राणी सुखी रह कर जीवन-यापन करना चाहता है। वह स्वयं को सुखी देखने के लिए मनोवांछित फलों की कामना करता है। परिणाम में सुख प्राप्ति के स्थान पर दुःख का अनुभव करने लगता है। वह इस संसार में जन्म, मरण और बुढ़ापे को दुखमय समझता है[१]। 'अजातशत्रु' नाटक में प्रसाद संसार की इसी अवस्था को वाजिरा के शब्दों में व्यक्त करते हुए कहते हैं—'प्रकृति से विद्रोह करके नये साधनों के लिए कितना प्रयास होता है। अन्धी जनता अन्धेरे में दौड़ रही है। इतनी छीना झपटी, इतना स्वार्थ-साधन कि सहज-प्राप्य अन्तरात्मा की सुख-शान्ति को भी लोग खो बैठते हैं। भाई-भाई से लड़ रहा है, पुत्र पिता से विद्रोह कर रहा है। स्त्रियों पतियों पर प्रेम नहीं, किन्तु शासन करना चाहती हैं। मनुष्य-मनुष्य के प्राण लेने के लिए शस्त्र-कला को प्रधान गुण समझने लगा है और उन गाथाओं को लेकर कवि कविता करते हैं! बर्बर रक्त में और भी उष्णता उत्पन्न करते हैं[२]।' प्रसाद इसका अन्त करुणा में मानते हैं—'विश्व भर में यदि कुछ कर सकती है तो वह करुणा है, जो प्राणिमात्र में सम दृष्टि रखती है[३]।

ईश्वर का स्वरूप

प्रसाद परम आस्तिक साहित्यकार हैं। हृदय में ईश्वर-प्रेम का वैभव संचित होने पर लोक-वंधन टूट जाते हैं। उनकी मान्यता है कि 'वैभव की जितनी कड़ियां टूटती हैं, उतना ही मनुष्य बन्धनों से छूटता है, और तुम्हारी (ईश्वर की) ओर अग्रसर होतो है[४]।' वे 'नीरा' कहानी में ईश्वर के स्वरूप को व्यक्त करते हुए कहते हैं—'सुख और सम्पत्ति में क्या ईश्वर का विश्वास अधिक होने लगता है? क्या मनुष्य ईश्वर को पहचान लेता है? उसकी व्यापक सत्ता को मलिनवेश में देख कर दुरदुराता नहीं—ठुकराता नहीं[५]।' परमात्मा में विश्वास मनुष्य का कल्याण करता है। दुख का एकमात्र कारण ईश्वर के प्रति अविश्वास है[६]।

दुःखी अवस्था में भक्त ईश्वर का समर्थन करता है। उसके अस्तित्व के लिए वह एक ऐसी युक्ति का समर्थन करता है, जो समय-समय पर उपस्थित हो कर हमें

---

१. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० १५८
२. अजातशत्रु, पृ० ११३ ३. वही, पृ० ९१-९३
४. स्कन्दगुप्त, पृ० १२३ ५. आंधी, नीरा, पृ० १३१ ६. वही, पृ० ११३

जगत और जीवन से हटा कर ईश्वर की ओर उन्मुख कर देती है। यह युक्ति संहार के दृश्यों में निहित है। पराजय, पराभव, वध, विवशता, असहायावस्था आदि इस युक्ति के अचूक अस्त्र हैं, जिनके द्वारा वेध कर यह हमें जगत् और जीवन में छिपे हुए अज्ञात ईश्वर के अस्तित्व को मानने के लिए बाध्य कर देती है[१]।

ईश्वर का अस्तित्व

आस्तिक होने के कारण ईश्वर की सत्ता प्रसाद के हृदय में प्रतिष्ठित है। उनका कहना है—'ईश्वर है, और वह सबके कर्म देखता है। अच्छे कर्मो का पारितोषिक और अपराधी को दण्ड देता है। वह न्याय करता है, अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा[२]। ईश्वर के कृपापात्र दुःखी व्यक्ति हुआ करते हैं। मनुष्य दुःखी अवस्था में ही ईश्वर का स्मरण करता है। 'गूदड़साई'' कहानी में बतलाया गया है कि भगवान चीथड़ों पर ही दया करता है[३]। ईश्वर के अस्तित्व की आस्था को व्यक्त करने के लिए 'स्कन्दगुप्त' में देवकी कहती है—'नरक के असंख्य दुर्दान्त प्रेत और क्रूर पिशाचों का त्रास और उनकी ज्वाला, दयामय (ईश्वर) की कृपा-दृष्टि के एक बिन्दु से शान्त हो जाती है[४]।'

ईश्वर की एकता

प्रसाद ईश्वर की अनेकता स्वीकार नहीं करते, किन्तु वह अनेक रूपों में व्यक्त होता है, यह भी उन्हें अस्वीकार्य नहीं है। इस ईश्वरीय एकता की अनेक अभिव्यक्तियों को 'कंकाल' में मंगल का निम्न कथन अधिक स्पष्टता प्रदान कर देता है—'हमारा धर्म मुख्यतः एकेश्वरवादी है, विजय बाबू! वह ज्ञान प्रधान है। परन्तु अद्वैतवाद की दार्शनिक युक्तियों को स्वीकार करते हुए कोई भी वर्णमाला का विरोधी बन जाय, ऐसा तो कारण नहीं दीख पड़ता। मूर्ति पूजा इत्यादि उसी रूप में हैं। पाठशाला में सबके लिए एक कक्षा नहीं होती, इसलिए अधिकारी-भेद है। हम लोग सर्वव्यापी भगवान की सत्ता को नदियों के जल में, वृक्षों में, पत्थरों में सर्वत्र स्वीकार करने की परीक्षा देते हैं[५]।' वस्तुतः भारतीय मनीषा की यही परम्परा है। 'भारतीय मनीषा अनेक देवताओं में एक ही परमदेव के दर्शन करती रही है। उसने ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि देवों को एक ही ईश्वर की विभिन्न शक्तियों का रूप माना है[६]। ईश्वर

---

१. डा० मुंशीराम शर्मा, भक्ति का विकास, पृ० ३८
२. कामना, पृ० १-५
३. प्रतिध्वनि, 'गूदड़गुसाई'', पृ० १४
४. स्कन्दगुप्त, पृ० ६१
५. कंकाल, पृ० १०५
६. डा० मुंशीराम शर्मा, भक्ति का विकास, पृ० ४८

एक है। उसकी अनेक नामों से स्तुति की गई है। मनुस्मृति में भी एक ईश्वर की सत्ता बतलाई गई है[1]। प्रसाद ने उस एक सत्ता को अनेक नामों से संबोधन करते हुए उस परम सत्ता की स्तुति गाई है। प्रसाद का ईश्वर की एकता सम्बन्धी एक उदाहरण देखिये…

पिता सबका वही है एक,
पतित पद्पद्म में होवे
तो पावन हो ही जाता है[2]।

ईश्वर-भक्ति

ईश्वर के प्रति गहन आस्था होने पर मनुष्य ईश्वर को याद करता है। उसके हृदय में ईश्वर के प्रति अनुराग होता है। उसका गुणगान भक्ति का ही स्वरूप है।

प्रार्थना

प्रभु अपने भक्त की प्रार्थना सुनते हैं, यह प्रसाद की दृढ़ धारणा है। भक्तिमार्ग में ईश्वर के प्रति दृढ़ निष्ठा बनाये रखने के लिए ही प्रार्थना का अनुष्ठान रखा गया है। नियमित रूप से परमात्मा की कृपा का लाभ उठाने के लिए प्रार्थना करनी आवश्यक है। मानव-स्वभाव दुर्बलताओं का संकलन है, सत्कर्म विशेष होने पाते नहीं। क्योंकि नित्य-क्रियाओं द्वारा उनका अभ्यास नहीं, दूसरी ओर ज्ञान की कमी से ईश्वर-निष्ठा भी नहीं। इसी अवस्था को देखते हुए ऋषि ने यह सुगम आर्य्य पथ बनाया है। प्रार्थना को नियमित रूप से करना, ईश्वर में विश्वास करना, यही तो आर्य-समाज का संदेश है। यह स्वावलम्बपूर्ण है, यह दृढ़ विश्वास दिलाता है कि हम सत्कर्म करेंगे तो परमात्मा की कृपा अवश्य होगी[3]।'

ईश्वरगुण और उनके गान के साथ प्रार्थना

प्रार्थना में अमोघ शक्ति है। ईश्वर का गुणगान भक्त में सद्गुणों को पैदा करता है। दीन-बधु, पतित-पावन, अलख अनूप, जगत्पति, कर्णधार, नियन्ता, दाता तथा नाथ आदि संबोधनों का प्रयोग किया है। ईश्वर का स्वरूप करुणा से प्लावित है। इसी कारण कवि 'करुणा-क्रन्दन' कविता में जीवन के झंझटों से त्रस्त हो कर ईश्वर से करुणा की याचना करता है। वह मानसिक क्लेशों से मुक्ति चाहता है। स्वयं को अधर्म और पापी बतलाते हुए अपना एक मात्र सहारा ईश्वर को ही मानता

---

१. मनुस्मृति, पृ० १२।१२३
२. कानन-कुसम, (पतितपावन), पृ० ६४
३. कंकाल, पृ० ४१-४२

हुआ करुण-क्रन्दन करता है[1]।

'करुणालय' में भगवान् के विशेषणों की झांकी प्रसाद इन शब्दों में देते हैं—

'इस अनाथ को, जो असहाय पुकारता
पड़ा दुख के गर्त बीच अति दीन हो
हाय ! तुम्हारी करुणा को भी क्या हुआ
जो न दिखाती स्नेह पिता का पुत्र से।
जगत्पिता ! हे जगद्बन्धु, हे प्रभो,
तुम तो हो, फिर क्यों दुख होता है हमें ?
त्राहि त्राहि करुणामय ! करुणा-सद्म में
रखो बचालो ! विनती है पद्पद्म में[2]।'

प्रभु दीन-दुखियों का सहायक है। वह इसी कारण दीनबन्धु कहलाता है। 'विशाख' में चन्द्रलेखा विपत्ति में उसे पुकारती हुई कहती है—'प्रभो ! एक तुम्हीं इस दुःख से उबारने में समर्थ हो। दीनों की पुकार पर तुम्हीं तो आते हो। आओगे, बचाओगे नाथ ! कितना ही दुःख दो, फिर भी मुझे विश्वास है कि तुम्हीं मुझे उनसे उबारोगे, तुम्हीं सुधारोगे[3]' वह विपत्ति काल में 'निर्बलों का बल' और 'दीनों का सम्बल' है[4]। असहाय अवस्था में उसकी प्रार्थना करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं[5]।

ईश्वर महिमा की अनुभूति

जब तक मनुष्य अपने चारों ओर ईश्वर के ऐश्वर्य, उसके वैभव और चमत्कार को नहीं देखता है, ईश्वर-गुणानुभूति नहीं होती। गुणों के साथ ईश्वर की शक्ति की अनुभूति ही उसकी महिमा की अनुभूति है। उसकी सत्ता भानु, चन्द्रमा, मलियानिल, जलनिधि तथा सुमन में विराजमान है। वह संसार का पोषण करने वाला है, अतः उसकी वन्दना करना हमारा धर्म है[6]। ईश्वर की महिमा से अभिभूत जीव ही उसकी

---

१. 'करुणा-निधे, यह करुण क्रन्दन भी जरा सुन लीजिये
कुछ भी दया हो चित्त में तो नाथ रक्षा कीजिये
हम मानते, हम हैं अधम, दुष्कर्म के भी छात्र हैं
हम हैं तुम्हारे, इसलिये फिर भी दया के पात्र हैं।'
—कानन कुसुम, करुण-क्रन्दन, पृ० ७

२. करुणालय, पृ० २५-२६
३. विशाख, पृ० ५८-५९
४. स्कन्दगुप्त, पृ० ३९
५. वही, पृ० ३८
६. 'संसार को सदयपालत जौन स्वामी।
वा शक्तिमान परमेश्वर को नमामी।' चित्राधार, विनय, पृ० १५५

शरण में जाता है । घोर पतित भी उसकी गोद में शरण पाकर वात्सल्य-लाभ करता है । वह उसकी गोद में निष्कलुष हो जाता है—

'पतित हो जन्म से, या कर्म से क्यों नहीं होवे
पिता सबका वही है एक, उसकी गोद में रोवे
पतित पद्पद्म में होवे
तो पावन हो ही जाता है[1]'

प्रसाद के भक्त हृदय में भागवत की परंपरा में उठती हुई भक्ति की अनेक लहरें दृष्टिगोचर होती हैं[2] ।

मन्दिर

भगवान का मन्दिर सबके लिये सदैव खुला रहता है । भक्त उसके दर्शन करने जाते हैं[3] । ईश्वर सर्वव्यापी है । इस देह-मन्दिर में आत्मा-परमात्मा स्थित है । देव-मंदिर भी वही है । प्रसाद मस्जिद, पैंगौडा, गिरजा आदि को भक्त-भावना के नमूने मानते हैं—

'मस्जिद, पैंगोडा, गिरजा, किसको बनाया तूने
सब भक्त-भावना के छोटे-बड़े नमूने[4] ।'

इन देव-मन्दिरों में उस भगवान की मूर्ति है, जो सर्वत्र व्याप्त है । उसकी आवृत्ति के अनेक रूप हैं । वह लीलामय है । यह विश्व ही उसका अनन्त मन्दिर है । 'प्रतिमा' कहानी में प्रसाद शिव मन्दिर की आकृत्ति का वर्णन करते हैं—'वट-वृक्ष के नीचे उसी की जड़ में पत्थर का छोटा-सा जीर्ण मन्दिर है । उसी में शिवमूर्ति है, वट की जटा से लटकता हुआ मिट्टी का वर्तन अपने छिद्र से जल-विन्दु गिराकर जाह्नवी और जटा की कल्पना को सार्थक कर रहा है[5] ।'

पूजा

प्रसाद मूर्ति-पूजा का भी आदर करते हैं, किन्तु वे मूर्ति-पूजा को अनिवार्य नहीं मानते[6] । परन्तु वह हिन्दू समाज में 'शारदीय-महापूजन' नामक कविता में ज्ञान-विज्ञान की अधिष्ठात्री शारदा की वन्दना करते हैं । वे उसे विश्व-धारिणी, विश्व-पालिनी, विश्वेश्वरि नाम से पुकारते हुए उस मनोहर मूर्ति की प्रशस्ति इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

---

१. कानन-कुसुम, पतित-पावन, पृ० ६४
२. परिशिष्ट में देखिये ।
३. इन्द्रजाल, विरामचिह्न, पृ० १०९
४. कानन-कुसुम, मन्दिर, पृ० ९
५. प्रतिध्वनि, प्रतिमा, पृ० ७६
६. कंकाल, पृ० ८०

देखिये यह विश्व-व्याप्त महा मनोहर मूर्ति ।
चितरंजन करती आनन्द भरति है धरि स्फूर्ति[1] ।।

प्रसाद 'अष्ट मूर्ति' नामक कविता में परमात्मा के आठ स्वरूपों को व्यक्त करते हैं । वे स्वरूप हैं—धरा, कीलाल, वैश्वानर, आकाश, समीर, दिनेश, और सज्जन[2] ।'

पूजा के उपकरण

प्रसाद ने पूजा में प्रसाद, दीपदान, माला फेरना, शंख, घंटा, वीणा वंशी, मृदंग की ध्वनि का वर्णन किया है । पूजा में मूर्ति की सज्जा के लिये केसर, कस्तूरी, पुष्पमालाओं का वर्णन भी हुआ है[3] ।

यज्ञ-कर्म

प्राचीनकाल से भारत के धर्मों में यज्ञों का प्रमुख स्थान रहा है। इन यज्ञों का सम्बन्ध मानव के सामाजिक जीवन से रहा है । याज्ञिक-कर्मकाण्ड के अन्तर्गत दैनिक जीवन के पंच-महायज्ञ, हिंसात्मक-यज्ञ तथा अश्वमेघ-यज्ञ को रख सकते हैं।

पंच-महायज्ञ

गृहस्थ-जीवन में दैनिक कार्यक्रम में महायज्ञ—(ब्रह्म, पितृ, देव, भूत तथा नृ यज्ञ) का विधान है[4] । प्रसाद ने 'कामायनी' में इन यज्ञों में से ब्रह्म, देव और भूतयज्ञ का उल्लेख किया है। मनु यज्ञ के पश्चात् प्रज्जवलित अग्नि के समीप बैठे हुए मनन करते हैं। उनके हृदय में जीवन और जगत सम्बन्धी अनेक प्रश्न उठते हैं[5] । मनु की इस मननावस्था में ब्रह्म-यज्ञ की ओर संकेत है । आगे वे देवतुष्टि हेतु अग्निहोत्र[6] तथा मैत्रावरुण यज्ञ[7] करते हैं। नये अन्न की आहुति देते हैं[8] । यह यज्ञ विराट सत्ता की तुष्टि हेतु किया गया है। अतः यह देव यज्ञ है । 'ब्रह्मर्षि' कथा में ऋषि वसिष्ठ

---

१. चित्राधार, शारदीय महापूजन, पृ० १५६
२. कानन-कुसुम, अष्ठभूर्ति, पृ० १४१-४२
३. 'इन्द्रजाल', सलीम, पृ० १२, आंधी, व्रतभंग, पृ० ६७, प्रतिध्वनि, प्रतिमा, पृ० ७४
४. तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः ।।
पन्च लुप्ता महाय ज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ।।
अध्यायनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।।
होमो दै वो बलिर्भौतो नृपज्ञोऽतिथिपूजनम् ।।
—मनुस्मृति ३।६९-७०
५. कामायनी, पृ० ३३
६. वही, पृ० ३१
७. वही, पृ० ११४
८. वही, पृ० ३२

भी अग्निहोत्र शाला कोआलोकमय करते हैं[1] । इसी प्रकार मनु पाक-यज्ञ के अवशिष्ट अन्न को किसी जीवित प्राणी के लिये तृप्ति हेतु गुफा से कुछ दूर रख देते हैं[2] । इसी अन्न को देखकर श्रद्धा मनु के पास आती है[3] । इस यज्ञ में भूत-यज्ञ की ओर संकेत है ।

यज्ञ: बलि

प्रसाद को भारत के सांस्कृतिक इतिहास में कुछ विकृतियों का दर्शन होता है और उनका निवारण वे संस्कृति के उज्ज्वल प्रतीक के लिए आवश्यक मानते हैं। ऋग्वेद में शुनः शेप की बलि[4] मनुष्य-बलि की ओर संकेत करती है । प्रसाद ने भी 'करुणालय' गीति-नाट्य में मनुष्य-बलि की ओर संकेत किया है । महाराज हरिश्चन्द्र ने वरुण देवता से अपने पुत्र को बलि चढ़ाने की प्रतिज्ञा की थी । आकाशवाणी द्वारा उनको प्रतिज्ञा पूरी करने की स्मृति दिलाने पर महाराज उन्हें आश्वासन देते हैं । महाराज का पुत्र रोहित व्यर्थ ही अपना जीवन नहीं देना चाहता । वह वन से अजीगर्त के पुत्र शुनःशेप को, सौ गायों के बदले नर-मेघ को ले जाता है। बलि के आयोजन में शुनःशेप यज्ञ-यूप से बांधा जाता है । अन्त में अजीगर्त स्वयं पुत्र का वध करने को तैयार हो जाता है । बलि के समय ही शुनःशेप प्रार्थना करता है। नर-बलि की समाप्ति की घोषणा की जाती है[5] ।

'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक में जनमेजय के हृदय में, नागों द्वारा की गई परीक्षित की हत्या के परिणाम स्वरूप, नागों के प्रति तीव्र घृणाभाव है । वह नागों की दस्यु-वृत्ति के कारण उन्हें चण्डभार्गव की अध्यक्षता में एक ओर ढकेल कर फूस से घेर कर आग लगाकर आहुति कर देता है। 'स्वाहा' कीध्वनि गूंजने लगती हैं[6] । उत्तंक अग्नि में घी डालता है। अनूचर नागों को लेकर उसमें डालते हैं[7] ।'

कामायनी के 'कर्म सर्ग' में पशु-बलि का उल्लेख भी हुआ है। वहां मनु असुर पुरोहितों के सहयोग से पशु-बलि करते हैं[8] । ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखने से विदित होता है कि पशु-बलि का उल्लेख अत्यन्त अल्प मात्रा में मिलता है। मनुस्मृति में कहा गया है कि यज्ञ में की गई पशु-बलि से वह पशु उच्च योनि को प्राप्त होता था[9] ।

अश्वमेघ यज्ञ

प्राचीन काल में राजा महाराजा अपने एकछत्र साम्राज्य के लिए अश्वमेघ यज्ञ किया करते थे। यह उनका राजधर्म था। उसी पृष्ठभूमि पर अश्वमेघ यज्ञ का

---

१. चित्राधार, ब्रह्मर्षि, पृ० ११७
२. कामायनी, पृ० ३२
३. वही, पृ० ५२
४. ऋग्वेद, १।२४।३०
५. करुणालय, पृ० २५-२६
६. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० १०३
७. कामायनी, पृ० ११४-११६
८. मनुस्मृति, ५।४०
९. चित्राधार, बभ्रुवाहन, पृ० ४३

उल्लेख प्रसाद ने भी किया है। 'बभ्रुवाहन' चम्पू में पांडवों के अश्वमेघ-यज्ञ का घोड़ा दूसरे राज्य (मणिपुर) के समीप पहुंच जाता है। यह धर्मराज का घोड़ा है, जो अश्वमेघ-यज्ञ कर रहे हैं।

जन्मेजय ने ब्रह्म-हत्या के प्रायश्चित में अश्वमेघ यज्ञ किया है। प्रसाद ने प्राचीन संस्कृति की पीठिका में जनमेजय से हुई ब्रह्म-हत्या के स्वरूप धर्म के शासन का उल्लंघन न कराने के लिए यज्ञ को आवश्यक माना है। यज्ञ का आयोजन ब्रह्म-हत्या के प्रायश्चित में कुछ ब्राह्मण बड़े अनुनय और विनय करने पर यज्ञ करने के लिये उद्यत हुए हैं। शोनप ने इस यज्ञ का आचार्यत्व ग्रहण किया है। इस यज्ञ का एकमात्र उद्देश्य राष्ट्र और समाज के शासन को दृढ़ करना ही रहा है। अन्त में आस्तीक जरत्कारु ऋषि का पुत्र, दो जातियों के बीच शान्ति स्थापन चाहता है। जनमेजय उसकी बात मानकर शांति की घोषणा एवं बंदी नागों को छोड़ता है[1]।

संस्कार

भारतीय संस्कृति में पारिवारिक विकास के लिए सोलह संस्कारों का बड़ा महत्व था। जो व्यक्ति इन संस्कारों से च्युत रहता था, उसका समाज से बहिष्कार कर दिया जाता था[2]। ये संस्कार इस प्रकार थे—गर्भाधान, पुन्सवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णबिंध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास तथा अन्त्येष्टि। प्रसाद ने अपनी रचनाओं में सम्पूर्ण संस्कारों को स्थान न देते हुए, गर्भाधान, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास तथा अन्त्येष्टि संस्कारों को सांकेतिक रूप से स्थान दिया है। गर्भाधान संस्कार के अन्तर्गत 'कामायनी' में मनु-श्रद्धा का कर्मसर्ग के मिलन में इस संस्कार की ओर संकेत है[3]। 'कंकाल' में तारा और मंगल के मिलन[4] के उपरांत तारा के इस संकेत—'गर्भ में कुछ है, वह क्या है कौन जाने[5]। में गर्भाधान संस्कार की ओर संकेत है। अन्तेष्टि संस्कार का उल्लेख 'स्कन्दगुप्त' नाटक में हुआ है, जहाँ स्कन्दगुप्त विजया की मृत्यु के उपरान्त भटार्क से कहता है—'इसके शव का संस्कार करो[6]।' विवाह, वानप्रस्थ तथा संन्यास संस्कार का उल्लेख सामाजिक पृष्ठभूमि के अध्याय में हुआ है। पुनरावृत्ति के कारण यहाँ देना उचित नहीं समझा है।

देवरूप

प्रसाद-साहित्य में आये हुए देवों को दो वर्गों में विभक्त कर लेना उचित है—

---

१. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० १०३-१०४
२. मनुस्मृति, २।३९-४०
३. कामायनी, पृ० १३६
४. कंकाल, पृ० ४६
५. कंकाल, पृ० ५८
६. स्कन्दगुप्त, पृ० १३४

प्रमुख और अप्रमुख । प्रमुख देवों में शिव, वरुण और इन्द्र का स्थान है, जबकि ब्रह्मा, विष्णु, सविता आदि देवों का उल्लेख अप्रमुख रूप से हुआ है ।

प्रमुख देवता वरुण

प्रसाद ने वरुण शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया है[1] । वे वरुण को वैदिक-काल में एकेश्वरवाद का प्रतीक मानते हैं । वे (वरुण) न्यायपति राजा और विवेक पक्ष के आदर्श थे । आर्यों की उपासना में वरुण का स्थान गौण रहा । इसी कारण उन्हें देवताओं के अधिपति पद से हटना पड़ा; परन्तु वे असुर के रूप में असीरिया आदि अन्य देशों में प्रतिष्ठित हुए[2] । 'कामायनी' में वरुण अन्तरिक्ष में हलचल उत्पन्न करते हैं[3] । ऋग्वेद में वरुण को आकाश, पृथ्वी और सूर्य का निर्माता माना है[4] । सम्पूर्ण संसार उस असुर माया से व्याप्त है । उसी माया से सृष्टि का संचालन होता है[5] । 'कामायनी' में वरुण को 'मित्र वरुण' कहा गया है[6] । 'मित्र वरुण' में असुरत्व और विशुद्ध देवत्व दोनो ही हैं, अतः वह अन्धकारयुक्त और प्रकाशवान है । 'अथर्ववेद' में इसी कारण मित्र का सम्बन्ध दिन से तथा रात्रि का सम्बन्ध वरुण से स्थापित किया है[7] ।

शिव

प्रसाद ने शिव के संहारकारी स्वरूप को वर्णित किया है । उस भूतनाथ से प्रकृति त्रस्त रहती है । उनका रोष भयंकर है[8] । वे युद्धभूमि में धूमकेतु के समान नाराच चलाते हुए दिखाई देते हैं—

'धूमकेतु-सा चला रुद्र नाराच भयंकर,
लिए पूँछ में ज्वाला अपनी अति प्रलयंकर ।
अन्तरिक्ष में महाशक्ति हुंकार कर उठी,
सब शस्त्रों की धारें भीषण वेग भर उठीं[9] ।'

'दर्शन सर्ग' में वे 'नटराज' के रूप में दिखाई देते हैं—

'नट-राज स्वयं थे नृत्य नरित,
था अन्तरिक्ष प्रहसित मुखरित[10],

---

१. कामायनी, पृ० १४, २५ व ३६ २. आकाशदीप, पृ० ११,१०७, पृ० १२

३. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, रहस्यवाद, पृ० ४९-५०

४. ऋग्वेद, ७।८६।१ ५. वही, ५।८५।२-५

६. कामायनी, कर्म सर्ग, पृ० ११४ ७. अथर्ववेद, ९।३।१८,१३।३।११

८. कामायनी, पृ० २४१ ९. वही, पृ० २०२ १०. वही, पृ० २५२

ऋग्वेद में रुद्र को ही विशेष महत्व मिला है। परन्तु अथर्ववेद और यजुर्वेद में आकर शिव ने भी महत्व प्राप्त कर लिया है। परवर्ती धर्मकाव्य में शिव रुद्र का ही एक रूप है[१]। प्रसाद शिव के उपासक हैं। उन्होंने शिव को जगपालक बतलाते हुए[२] उसकी स्तुति कराई है[३]। अथर्ववेद में भी रुद्र की स्तुति का उल्लेख मिलता है[४]।

इन्द्र

प्रसाद की रचनाओं में इन्द्र का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है[५]। यह आनंद और उल्लास के प्रतीक हैं[६]। प्रसाद ने 'रहस्यवाद' नामक लेख में इन्द्र के बारे में विस्तृत विवेचन किया है। उनका कहना है कि 'वरुण' को देवताओं के अधिपति—पद से हटना पड़ा, इन्द्र के आत्मवाद की प्रेरणा ने आर्यों में आनन्द की विचारधारा उत्पन्न की। फिर तो इन्द्र ही देवराज पद पर प्रतिष्ठित हुए[७]। इन्द्र स्वत्व के उपासक होने से सप्तसिन्धु के प्रबुद्ध वरुण आर्यों ने इन्द्र की इस आनन्दवादी धारा का स्वागत किया। इसी कारण वैदिक धारा में वे आत्मवाद के प्रतिनिधि हैं[८]। 'कामायनी' में कहा गया है[९] कि इन्द्र ने वृत्त का वध किया है। इसका आधार ऋग्वेद है। वहाँ इसे आंधी, तूफान, बिजली और वर्षा का देवता माना गया है। इसकी शक्ति सर्वमान्य और सर्वाधिक है। वह आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी से भी बड़ा है। उसने वृत का वध करके प्रकाश, सूर्य तथा उषा को जन्म दिया है[१०]। प्रसाद इन्द्र को आर्यावर्त का प्रथम सम्राट के स्थान पर अभिषिक्त करते हैं[११]। उन्होंने 'करुणालय' में रोहित के शब्दों में इन्द्र के पुरुषार्थ की तथा स्वयं को कर्मपथ के विचलित न होने की स्तुति करवाई है—

---

१. ऋग्वेद, १।११४।५

२. चित्राधार, प्रेमराज्य, पृ० ७३

३. वही, बभ्रुवाहन, पृ० ३६

४. अथर्ववेद, ११ में काण्ड का द्वितीय सूक्त

५. कामायनी, इड़ा सर्ग, पृ० १६०, करुणालय, पृ० १५; अजातशत्रु, पृ० ८३, चन्द्रगुप्त, पृ० २२०, चित्राधार, बभ्रुवाहन, ब्रह्मर्षि, काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, 'रहस्यवाद,' पृ० ४६-५०,

६. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, नाटकों का आरम्भ, पृ० ८६

७. काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, रहस्यवाद, पृ० ५०

८. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, रहस्यवाद, पृ० ४६-५०

९. कामायनी, इड़ा सर्ग, पृ० १६०

१०. ऋग्वेद ३।४६।३, १।३२।४, ६।३०।५, १।३२।१, १०।१३८।१-२

११. आर्यावर्त का प्रथम सम्राट, नागरी प्रचारिणी पत्रिका

'अरे ! कौन ! यह ? छाया-सी है इन्द्र की
कायरता का अरि, प्रतिमा पुरुषार्थ की
बड़ी कृपा आकाश-विहारी देव की
हुई, दीन करता प्रणाम है भक्ति से
देव ! आप यदि हैं प्रसन्न, तो भाग्य है ?
प्रभो ! सदा आदेश आपका ध्यान से
पालन करता रहे दास, वर दीजिए,
रुके कर्म-पथ में न कभी यह मीत हो'[1]

ऋग्वेद में आर्यों के विजेता इन्द्र की स्तुतियों का वर्णन मिलता है[2] ।

इतर देव-देवियां

प्रसाद-साहित्य के इतर देव विष्णु ब्रह्मा और सविता हैं । विष्णु के अवतार राम और कृष्ण का उल्लेख अनेक स्थलों पर आया है । 'ध्रुवस्वामिनी' में कुबड़े के लिए 'बावन वीर'[3] शब्द का प्रयोग चाहे हास्य में ही सही, किन्तु वह पौराणिक संकेत से विरहित नहीं है । विष्णु के बावनावतार की ओर संकेत किया है । ब्रह्मा का उल्लेख भी अनेक स्थलों पर हुआ है[4] । 'चन्द्रगुप्त' नाटक में भगवान सविता से उसके आलोक द्वारा जगत को मंगलमय बनाने की बात कही गई है[5] । 'कामायनी' में भी सविता का वर्णन आया है[6] । ऋग्वेद में सविता से देवों के प्रति जो अपराध हुए हैं, उनके उद्धार के लिए आराधना करने का उल्लेख हुआ है[7] ।

देवियों में सरस्वती का उल्लेख प्रमुख रूप से हुआ है । शारदीय महापूजन में शारदा को विश्वधारिणी, विश्वपालिनी और विश्वेशी नाम से संबोधित किया है[8] । इसके अतिरिक्त 'चन्द्रगुप्त' नाटक में शारदा का उल्लेख 'सरस्वती के मन्दिर' के प्रसंग में आया है[9] । यह ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी है । ऋग्वेद में इसका उल्लेख मिलता है[10] ।'

---

१. करुणालय, पृ० १५

२. यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो
यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव
यो अच्युच्युत स जनास इन्द्रः ।। —ऋग्वेद० २।१२।९

३. ध्रुवस्वामिनी, पृ० २१

४. अजातशत्रु, पृ० १३४, तितली, पृ० २५३, चित्राधार, पंचायत, पृ० १२५

५. चन्द्रगुप्त, पृ० २१७

६. कामायनी, पृ० २५

७. ऋग्वेद, ४।५४।३

८. चित्राधार, शारदीय महापूजन, पृ० १५६

९. चन्द्रगुप्त, पृ० ६९

१०. ऋग्वेद, १०।६१।२१

विश्वास और आस्थायें

प्रसाद ने अपनी कृतियों में उन अनेक विश्वासों और आस्थाओं का चित्रण किया है जो भारतीय संस्कृति की थाती रही हैं। धूमकेतु का प्रयोग लाक्षणिक रूप में हुआ है[१] उसका स्वरूप 'लील लोहित रंग का' मायावनी पूंछवाला है[२]। अमावस्या के दिन नील गगन में भयानक उल्कापात की सूचना दी गई है[३] वह भयंकर स्थिति का द्योतक है। प्रतिमाओं का हँसना तथा आकाश से राजा के घोर दुष्कर्म की याद दिलाने में राज्यश्री[४] और जयचन्द का मूर्छित होना बतलाया है[५]। जयचन्द इसी समय अपने जामातृ-वध के लिये प्रायश्चित करने की वात सोचता है। उस आकाशभाषित प्रतिमा को देवदूत बतलाता है[६]। सिकन्दर दाण्डयायन के शब्दों में, जो चन्द्रगुप्त को आर्यावर्त का भावी सम्राट होने की भविष्यवाणी करता है, विश्वास कर लेता है[७]। इसी प्रकार नन्द वंश के विनाश के लिए बादलों में दिग्दाह की धूम का प्रयोग हुआ है[८]। यह धार्मिक विश्वास भारतीय संस्कृति में प्रचलित है। वाल्मीकि रामायण में अनेक लोक विश्वास और आस्थाओं का उल्लेख मिलता है[९]।

नीति

उचित व्यवहारों की संज्ञा नीति है। परन्तु सर्वसाधारण के व्यवहार का निर्णय करना कठिन कार्य है। मानव-समाज में दो प्रकार के प्राणी उपलब्ध हैं—सज्जन और दुर्जन। सज्जन पुरुष सदा यह चाहते हैं कि संसार के सभी व्यक्ति सदाचारी, परोपकारी और सत्य भाषी हों, परन्तु दुर्जन दूसरों के हितों की उपेक्षा करते हुए स्वयं सिद्धि करना ही अपना ध्येय समझते हैं। मनुष्य ज्योंही गृहस्थ में प्रवेश करता है त्योंही उसे कर्तव्य आ घेरते हैं, वह उसे जीवन पर्यन्त तक नहीं छोड़ते। प्रसाद इन अनैतिक कृत्यों को त्यागते हुए यह कामना करते हैं—'दूर हों दुर्बलता के जाल, दीर्घ निःश्वासों का हो अन्त[१०]।' इन दुर्बलताओं और दीर्घ निःश्वासों का अन्त करने में आचार-नीति, पारिवारिक नीति, सामाजिक-नीति तथा राजनीति सहायक होती हैं। इन्हीं का उल्लेख प्रसाद-साहित्य में अनेक स्थलों पर मिलता है।

आचार नीति

भारतीय परम्परा में आचार नीति धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसका सम्बन्ध

---

१. स्कन्दगुप्त, पृ० ८६
२. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ४४
३. स्कन्दगुप्त, पृ० २६,३३
४. राज्यश्री, पृ० २७
५. चित्राधार, प्रायश्चित, पृ० ६३
६. वही, पृ० ६३
७. चन्द्रगुप्त, पृ० १११
८. वही, पृ० १७४
९. वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, ६६।८-२१, ४।१७-१८, अरण्यकाण्ड ५७।२-३
१०. कानन-कुसुम, धर्मनीति, पृ० ८८-८९

मनुष्य के वैयक्तिक कर्तव्यों से होता है। इसके अन्तर्गत सत्य, अहिंसा, परोपकार और इन्द्रियदमन जैसे समाजोचित गुण आते हैं। यह व्यक्ति की आध्यात्मिक एवं भौतिक उन्नति के लिए सहायक होते हैं। प्राचीन स्मृतिकारों ने इन गुणों को धर्म का अंग माना है[1]। प्रसाद ने अपनी कृतियों में आचार नीति के गुणों को प्रमुख स्थान दिया है। उनका कहना है—'जितनी अन्तःकरण की वृत्तियों का विकास सदाचार का ध्यान करके होता है—उन्हीं को जनता कर्तव्य का रूप देती है[2]।' प्रसाद आचार-नीति के अन्तर्गत सत्य, अहिंसा और परोपकार तथा जगत पर सत् की विजय को प्रमुखता देते हैं।

सत्य

प्रसाद सत्य को उच्च स्थान प्रदान करते हुए उसे धर्म की कोटि में रखते हैं। उनका मत है कि—'सत्य महान् धर्म है। इतर धर्म क्षुद्र हैं और उसी के अंग हैं। वह तप से भी उच्च है; क्योंकि वह दम्भविहीन है। वह शुद्ध-बुद्धि की आकाशवाणी, वह अन्तराल की सत्ता है[3]। जो बात कहीं जाय, सुनी जाय और सोची जाय उसे उसी रूप में व्यक्त करना ही सत्य कहलाता है। 'सत्य भाषण से स्वयं की आत्मा भी निष्कलुष रहती है तथा अन्य व्यक्ति की धारणा भी हमारे प्रति सहानुभूतिपूर्ण होती है। शास्त्रों में भी सत्य की महत्ता का गुणगान किया गया है[4]। सत्य का स्थान उच्च होने से ही मनुष्य उसे ग्रहण करने का प्रयत्न करता है। 'आँधी' कहानी में प्रज्ञासारथि के शब्दों में—'सुख और दुःख, आकाश और पृथ्वी, स्वर्ग और नरक के बीच में ही वह सत्य है, जिसे मनुष्य प्राप्त कर सकता है[5]।' परन्तु मनुष्य सत्य को पहिचानने में अपूर्ण है। सत्य के साथ प्रसाद असत्य को भी आवश्यक मानते हैं। प्रख्यात कीर्ति के शब्दों में—'मनुष्य अपूर्ण है। इसलिये सत्य का विकास जो उसके द्वारा होता है, अपूर्ण होता है। यही विकास का रहस्य है। यदि ऐसा न हो तो ज्ञान की वृद्धि असम्भव हो जाय। प्रत्येक प्रचारक को कुछ-न-कुछ प्राचीन असत्य परम्पराओं का आश्रय इसी से ग्रहण करना पड़ता है। सभी धर्म, समय और देश की स्थिति के अनुसार विकृत हो रहे हैं और होंगे। हम और लोगों को हठधर्मी से उन आगन्तुक क्रमिक पूर्णता प्राप्त करने वाले

---

१. (i) 'धृतिः क्षमा दमो स्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्। मनु० ६।९२
(ii) याज्ञवल्क्य स्मृति १।१२२ (iii) भागवत्, ७।११, ८।११

२. अजातशत्रु, पृ० १२५ ३. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ९४

४. सत्येन धयते पृथ्वी सत्येन तपते रविः
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्य-सत्य प्रतिष्ठितं। (—चाणक्य नीति ५।१९)

५. आंधी, पृ० ३६

ज्ञानों से मुँह न फेरना चाहिये[१] ।'

सत्य एक महान् धर्म होने से प्राचीन ऋषियों ने उसका अन्वेषण करते हुए जीवन के लिए उसे आवश्यक वतलाया है । सत्य गहनतम है इसे पकड़ना अत्यन्त कठिन कार्य है । सत्य को पहिचानने में बुद्धि का सहयोग आवश्यक है । बुद्धि की तर्कशीलता द्वारा ही सत्य को पकड़ा जा सकता है । तर्क एक ऐसा बुद्धि वैभव है जो सत्य का पता लगा सकता है—सत्य के सम्बन्ध में प्रसाद ने कामायनी में व्याख्या की है—

'और सत्य ! यह एक शब्द तू
कितना गहन हुआ है;
मेधा के क्रीड़ा-पंजर का
पालां हुआ सुआ है ।
सब बातों में खोज तुम्हारी
रट-सी लगी हुई है;
किन्तु स्पर्श से तर्क करों के
बनता 'छुई मुई' है[२] ।'

मनुष्य को हमेशा सत्य का सहारा लेकर सत्कर्म करने चाहियें । 'सत्कर्म हृदय को विमल बनाता है और हृदय में उच्च वृत्तियां स्थान पाने लगती हैं[३] ।' सत्कर्म करने में भी बुद्धि सहायक होती है इसीलिए प्रसाद का कहना है कि—'जब तक शुद्ध बुद्धि का उदय न हो, तब तक स्वार्थ-प्रेरित होकर भी सत्कर्म करणीय है[४] ।'

अहिंसा

प्रसाद ने गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित होकर कर्म की अहिंसात्मक प्रवृत्ति को महत्व दिया है । प्रसाद के अनुसार अहिंसा का अर्थ हिंसा न करने से ही नहीं है, अपितु अनाचारी, बुराई करने वाले व्यक्ति को सन्मार्ग की ओर प्रवृत करने से है । 'कामायनी' में मनु की हिंसात्मक, अनाचारी एवं विलासी प्रवृतियों का बहिष्कार करने में श्रद्धा सहयोग देती है । अन्त में वह मनु की पाशवी वृत्तियों पर विजय प्राप्त करती हुई उसे सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करती है । 'विशाख' नाटक में नरदेव, मानव-हृदय की दुर्बलता रूप-मोह के वशीभूत हो कर नैतिक पतन की ओर उन्मुख होता है । वह अपने कर्तव्य-पालन एवं न्याय-भावना आदि राजोचित गुणों से विहीन होकर कामान्ध एवं अविवेकी दिखाई देता है परन्तु प्रेमानन्द के हितोपदेश से वह अन्त में सजग हो जाता है । अपने कृत्यों को स्वीकार करते हुए कह उठता है—'हाय-हाय ! मैंने क्या किया—

---

१. स्कन्दगुप्त, पृ० ११९
२. कामायनी, कर्म सर्ग, पृ० १२१
३. विशाख, पृ० ३७
४. वही, पृ० ३७

एक पिशाच-ग्रस्त मनुष्य की तरह मैंने प्रमाद की धारा बहा दी । मैंने सोचा था कि नदी को अपने बाहुबल से सन्तरण कर जाऊँगा, पर मैं स्वयं बह गया । सत्य है, परमात्मा की सुन्दर सृष्टि को, व्यक्तिगत मानापमान, द्वेष और हिंसा से किसी को भी ग्रालोड़ित करने का ग्रधिकार नहीं है । प्राय: देखा जाता है कि दूसरों के दोष दिखाने के लिए, घटनाचक्र से जब हम स्वयं किसी अन्याय को करने लगते हैं, तो पशु से भी भयानक हो जाते हैं । न्याय ग्रौर स्वतंत्रता के बदले घोर, 'अनावश्यक' बहाने वाले परतन्त्रता के बन्धन का पाश ग्रपने हाथ में लेकर मानव-समाज के सामने प्रकट होते हैं, इसीलिए प्रकृति के दास मनुष्य की—ग्रात्मसंयम, ग्रात्मशासन की पहली आवश्यकता है । नहीं तो वह प्रमादवश अनर्थ ही करता है[१] ।' विशाख नरदेव की पाशवी वृत्ति को देखकर हत्या करना चाहता है । इस पर प्रेमानन्द उपदेश देता हुग्रा प्रतिहिंसा को पाशवी वृत्तिवतलाता है तथा नरदेव को क्षमा करने की बात कहता है[२] ।

'ग्रजातशत्रु' में महात्मा गौतम के प्रभाव से प्रसेनजित् ग्रपनी परित्यक्ता पत्नी शक्तिमती ग्रौर विद्रोही पुत्र विरुद्धक को पुनः ग्रपनाता है[३] । राज्यश्री द्वारा स्वयं की ग्रात्महत्या करने के प्रयत्न पर दिवाकर मित्र उसे उपदेश देता है—'देवि, ग्रात्महत्या या स्वेच्छा से मरने के लिए प्रस्तुत होना—भगवान की अवज्ञा है । जिस प्रकार सुख-दु:ख उसके दान हैं—उन्हें मनुष्य झेलता है, उसी प्रकार प्राण भी उसी की धरोहर है[४] ।

'ग्रशोक' कहानी में महाराज को ग्रपने भाई वीताशोक द्वारा जैनियों को शरण देने के ग्रपराध में हत्या का समाचार मिलते ही उसने, जीव-हिंसा बन्द कराकर ग्रहिंसावादी प्रवृत्तियों का निर्वाह किया है[५] ।

परोपकार

सामाजिक प्राणी होने के कारण अन्य मनुष्यों का हित-चिन्तन करना, ग्रापत्ति-काल में उनके कष्टों को सहन करते हुए उनका सहयोगी बनना ही प्रसाद के ग्रनुसार मानव के लिए मानव-धर्म है । गोस्वामी तुलसीदास ने 'ऋषि कह परम धरम उपकारा[६],' कह कर परोपकार पर बल दिया है ।

प्रसाद-साहित्य में महात्माग्रों का परोपकारी रूप देखने में ग्राता है, जिनका प्रमुख ध्येय संसार में रह कर विश्व-कल्याण करना है । ये महापुरुष संसार में भ्रमण करते हुए, गृहस्थों के सम्पर्क द्वारा ग्रपने ज्ञान, सेवा तथा उपदेश द्वारा मानव-मात्र

---

१. विशाख, पृ० ८९-९०
२. वही, पृ० ९२
३. ग्रजातशत्रु, पृ० १३१
४. राज्यश्री, पृ० ५६
५. छाया, ग्रशोक, पृ० ८४
६. मानस, बालकाण्ड दोहा ८४।१

का कल्याण करते हैं। इस प्रकार के महात्माओं में गौतम, प्रख्यातकीर्ति, दिवाकरमित्र तथा प्रेमानन्द हैं। विदुर नीति में सेवाधर्म करने वाले महापुरुषों को पुण्य का भागी बतलाया है[1]।

महात्मा गौतम सत्य, करुणा, अहिंसा और विश्वमैत्री के साकार रूप हैं। वे अपनी मधुर वाणी और सद्आचरणों द्वारा आदर्श की स्थापना करते हैं। उनका कर्म है गृहस्थों के संघर्षों को समाप्त कराना तथा सद्उपदेश देना। वे बिम्बसार को विश्व-मैत्री का मार्ग प्रदर्शित करते हैं—'शीतल वाणी-मधुर व्यवहार से क्या वन्य पशु भी वश में नहीं हो जाते? राजन्, संसार-भर के उपद्रवों का मूल त्याग है। हृदय में जितना वह घुसता है, उतनी कटार नहीं। वाक् संयम विश्वमैत्री की पहली सीढ़ी है[2]।' गौतम के प्रभाव में आकर बिम्बसार, उदयन और प्रसेनजित् जैसे नरेश उनकी पाद-सेवा करते हैं तथा उनके उपदेशों को ग्रहण करते हैं।

प्रख्यातकीर्ति त्यागशील और मानव-हित में संलग्न महात्मा हैं। ब्राह्मण और बौद्धों के अकारण पशु-बलि हेतु झगड़ने पर प्रख्यातकीर्ति अपने प्राणों का मूल्य त्याग कर उनके झगड़े का अन्त करते हैं। वे अन्यायी धर्म प्रचारकों के मध्य भारत के असत् कल्याण और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए उच्च आदर्श प्रस्तुत करते हैं[3]।

प्रेमानन्द जैसे परोपकारी और उच्च विचारक, विशाख, नरदेव, सत्यशील जैसे प्रमादी; लोभी और राग-द्वेष से प्लावित पात्रों में अपनी मधुरवाणी द्वारा उन्हें आदर्श पथ की ओर अग्रसर करते हैं। वे अपने शिष्य विशाख को जो प्रवंचक भिक्षु को मारने को तलवार उठाता है, समझाते हुए उपदेश देते हैं—'क्षमा सर्वोत्तम दण्ड है विशाख[4]।'

दिवाकरमित्र दुःखपूर्ण एक परोपकारी महात्मा है, जो राज्यश्री को आत्महत्या न करने का उपदेश देता है[5]। 'अशोक' कहानी में महात्मा अशोक से प्रताड़ित जैनियों को अपनी कुटिया में आश्रय देकर परोपकार का निर्वाह करता है[6]।

असत् पर सत् की विजय

प्रसाद ने अपनी रचनाओं में सत् की असत् पर विजय बतलाई है। उनका कहना है—जिस प्रकार 'पवित्रता का माप है मलिनता, सुख का आलोचक है दुख और पुण्य की कसौटी है 'पाप' उसी प्रकार सत् का मूल्य असत् के होने पर ही ज्ञात होता

१. विदुर नीति ३।७४, प्रका० काशी शारदा सदन, संस्क० १६००
२. अजातशत्रु, पृ० ३१
३. स्कन्दगुप्त, पृ० ११६-१२०
४. विशाख, पृ० ६७
५. राज्यश्री, पृ० ५६
६. छाया, अशोक, पृ० ८१

है[1]। प्रसाद ने या तो असत् पात्रों को समाप्त कर दिया है या उनमें सद्-प्रवृत्तियों का संचार कर दिया है । पुरगुप्त और रामगुप्त की विजय दिखाना उन्हें अभीष्ट नहीं। उन्होंने शकटार के हाथों नन्द की मृत्यु तथा कल्याणी द्वारा पर्वतेश्वर की हत्या कराई है। विजया अपने कृत्यों की ग्लानि से आत्म-हत्या करती है । छलना और नरदेव अपने कुकृत्यों की भूल स्वीकार करते हैं। शक्तिमती अपनी भूल पर मल्लिका से क्षमा मांगती है । विरुद्धक कारायण के समक्ष अपने कुकृत्यों का प्रायश्चित करता है। 'ध्रुवस्वामिनी' में पाप के गर्त में डूबे हुए शकराज और रामगुप्त की मृत्यु करा दी जाती है। 'सज्जन' नाटिका में युधिष्ठिर की उदारता के समक्ष धर्म की विजय होती है। 'प्रायश्चित' में जयचन्द आत्मग्लानि के कारण गंगा में डूब मरता है। 'राज्यश्री' और 'कामना' में भी पाप की पराजय दिखाई गई है । 'राज्यश्री' में विकटघोष और सुरमा को पतन की चरम सीमा पर पहुंचा कर अन्त में उनसे राज्यश्री और सुवेन्चांग से क्षमा याचना कराई है । 'कामना' में संतोष और विवेक की जय दिखाकर कामना और विलास की पराजय दिखाई है । इस प्रकार प्रसाद असत् पर सत् की विजय दिखाने के पक्षपाती रहे हैं । विदुरनीति में बतलाया गया है कि कपटशील मनुष्य की पापों से मुक्ति नहीं होती[2] । मनुष्य जैसे-जैसे कल्याणकारी कामों में लग जाता है वैसे-वैसे उसके सब प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं[3] ।

पारिवारिक नीति

प्रत्येक व्यक्ति परिवार में जन्म लेता है । उसका पालन-पोषण भी परिवार में होता है। वहीं पर वह माता-पिता, गुरुजनों, भाई-बहनों तथा अन्य सम्बन्धियों से उचित व्यवहार करने की शिक्षा ग्रहण करता है । गृहस्थी होकर वह अपने परिवार का निर्माण करता है। इसके उपरान्त उसका सम्बन्ध पत्नी और सन्तान से होता है। इनके सहयोग से वह अपनी जीवन-यात्रा को सफल बनाता है । जीवन को सुखी बनाना परिवार की शान्ति पर अवलम्बित है । पारिवारिक वैमनस्य से गृहस्थ नरक तुल्य हो जाता है। इसीलिये प्रसाद पारिवारिक-शान्ति पर बल देते हैं—

बच्चे बच्चों से खेलें, हो स्नेह बढ़ा उनके मन में,
कुल-लक्ष्मी हो मुदित, भरा हो मंगल उनके जीवन में।
बन्धुवर्ग हो सम्मानित, हों सेवक सुखी, प्रणत अनुचर,
शान्ति पूर्ण हो स्वामी का मन, तो स्पृहणीय न हो क्यों घर[4] ?

---

१. स्कन्दगुप्त, पृ० ४५
२. विदुरनीति, ३।४२
३. वही, ३।४१
४. अजातशत्रु, पृ० २६

वेदों में भी पारिवारिक-नीति का इसी प्रकार प्रतिपादन किया गया है। उसमें बतलाया गया है कि पारिवारिक-प्रेम गाय के नवजात वत्स तुल्य हो। पुत्र पिता का अनुवर्ती तथा माता का सामंजस्य रखने वाला हो। पत्नी पति के साथ मधुर संभाषण करने वाली हो। भाई-बहिन में किसी प्रकार का द्वेष न हो[१]। विदुरनीति में जलती हुई लकड़ी का उदाहरण देते हुए कहा है जिस प्रकार जलती हुई लकड़ी अलग-अलग होने पर धुंआ देती है तथा एक होने पर जल उठती हैं उसी प्रकार भेद दृष्टिवाले कुटुम्बी सदा दुःख के भागी होते हैं परन्तु एकता आने पर वे सुखी हो जाते हैं[२]। प्रसाद ने परिवार के सदस्यों के साथ व्यक्ति के जो कर्त्तव्य होते हैं उन्हीं कर्त्तव्यों को उन्होंने विभिन्न चरित्रों द्वारा अच्छी तरह से अभिव्यक्त किया है। प्रसाद ने माता-पिता और पुत्र-पुत्री, भाई-बहिन, पत्नि-पति के सम्बन्धों को प्रस्तुत किया है।

माता-पिता और पुत्र

माता का प्रमुख कर्तव्य यही निर्देशित किया गया है कि वह अपने पुत्र में सद्गुणों का संचार करे। स्कन्दगुप्त की माता देवकी अपने पुत्र से यह कामना करती है कि उसका शासन-दण्ड क्षमा के संकेत पर चले। कोई भी माता यह नहीं चाहती कि उसका पुत्र डरपोक और कायर बने। शक्तिमती अपने पुत्र विरुद्धक का मानसिक दुर्बलता के गर्त से निकाल कर 'महत्वाकांक्षा के प्रदीप्त अग्नि-कुण्ड में कूदने को प्रस्तुत' करती है[३]। वह उसे पौरुषवान् बनने का उपदेश देती हुई कहती है—'वालक ! मानव अपनी इच्छा-शक्ति से और पौरुष से ही कुछ होता है। जन्मसिद्ध तो कोई भी अधिकार दूसरों के समर्थन का सहारा चाहता है। विश्व भर में छोटे से बड़ा होना, यही प्रत्यक्ष नियम है[४]। माता अपने पुत्र के अमानवीय कृत्यों को नहीं देख सकती। वह अपने पुत्र के वास्तविक कल्याण और कीर्ति की अभिलाषा करती है।' 'स्कन्दगुप्त' की कमला अपने पुत्र के वास्तविक कल्याण और कीर्ति की अभिलाषा करती है कि—'पुत्र देश का सेवक होगा, म्लेच्छों से पददलित भारत भूमि का उद्धार करके मेरा कलंक धो डालेगा[५]।' उसके कुमार्ग की ओर अग्रसर होने पर उसके कृत्यों की भर्त्सना करते हुए कह उठती है—'तू राजकुल की शांति का प्रलय मेघ बन गया; और तू साम्राज्य के कुचक्रियों में से एक। ओह ! नीच ! कृतघ्न !! कमला कलंकिनी हो सकती है परन्तु यह नीचता, कृतघ्नता उसके रक्त में नहीं[६]। 'अनन्तदेवी चाहे कितनी ही कुटिल, मह-

---

१. अथर्ववेद, ३।३०।१-३

२. धुमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च।
धृतराष्ट्रोल्युकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ॥ (नीतिसार ४।६०)

३. अजातशत्रु, पृ० ७८

४. अजातशत्रु, पृ० ५६

५. स्कन्दगुप्त, पृ० ६८

६. वही, पृ० ६८

त्वाकांक्षिणी और विलासिनी हो, परन्तु वह अपने पुत्र पुरगुप्त के निकम्मेपन पर क्रोधित होती हुई भर्त्सना करती है—'निर्वीर्य निरीह बालक ! तुम्हें भी इसकी प्रसन्नता ? लज्ता के गर्त में डूब ही जाते[१] ।'

पुत्र का अपनी माता के प्रति यह कर्तव्य है कि वह उसकी रक्षा तथा आज्ञा पालन करे । 'जनमेजय का नागयज्ञ' में माणवक अपनी माता सरमा के, जनमेजय के द्वारा किये हुए अपमान को नहीं देख सकता। वह गुप्त रूप से हत्या करना चाहता है; परन्तु माता का आज्ञापालन उसका परम धर्म है । माता यह कभी नहीं चाहेगी कि उसका पुत्र गुप्त रूप से प्रतिशोध ले । सरमा अपने पुत्र से कहती है—'तू सरमा का पुत्र होकर गुप्त रूप से हत्या करना चाहता था, पर यह कलंक मैं नहीं सह सकती थी । तू उनसे लड़ कर वहीं मर जाता या उन्हें मार डालता, यह मुझे स्वीकार था[२] ।'

पिता-पुत्र का रक्त-सम्बन्ध होता है । 'करुणालय' में पिता की आज्ञा पालन हितकर धर्म बतलाया गया है—

पिता परम गुरु होता है; आदेश भी
उसका पालन करना हितकर धर्म है[३] ।

पिता से भी पुत्र को शिक्षा मिलती है । 'बभ्रूवाहन' चम्पू में अर्जुन अपने पुत्र बभ्रूवाहन को क्षात्र-धर्म का उपदेश देता है—

'क्षात्रधर्म मंह होय गुरुहुंसों करी लड़ाई ।
देवव्रत से गये जौन कुल लही बड़ाई ।।
तेरो पितु ही सोई धर्म महं दिक्षित ह्वै कै ।
करी लड़ाई महारुद्र सौं साहस कै कै[४] ।'

पुत्र अपने माता-पिता के व्यवहारों से ही अपनी जीवन-यात्रा प्रारम्भ करता है । अजातशत्रु के क्रूर और दुर्विनीत चरित्र का विकास उसकी माता छलना के संसर्ग से ही हुआ है । इसका स्पष्टीकरण वह अपने पिता बिम्बसार से करता है—'नहीं पिता, मुझे भ्रम हो गया था । मुझे अच्छी शिक्षा नहीं मिली थी । मिला था, केवल जंगलीपन की स्वतंत्रता का अभिमान—अपने को विश्वभर से स्वतन्त्र जीव समझने का झूठा आत्म-सम्मान[५] ।'

बुढ़ापे में पिता का एकमात्र सहारा पुत्र ही होता है । पुत्र का यह धर्म है कि वह उसकी सेवा करे । 'बेड़ी' कहानी में जीवन के अन्तिम क्षणों में अंधा, बूढ़ा पिता

---

१. स्कन्दगुप्त, पृ० ८७
२. जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ३३
३. करुणालय, पृ० १२
४. चित्राधार, बभ्रुवाहन, पृ० ४६
५. अजातशत्रु, पृ० १४३

अपने ९-१० वर्ष के पुत्र के सहारे भीख मांग कर अपना जीविकोपार्जन करता है। यदि पिता पुत्र का हित नहीं चाह सकता और वह देवता को प्रसन्न रखने के लिए उसकी बलि देने तक को आबद्ध हो जाये तो पुत्र का भी यह कर्तव्य है कि वह उसकी आज्ञापालन न करे। 'करुणालय' में रोहित अपने पिता महाराज हरिश्चन्द्र की आज्ञा को ठुकराता हुआ कहता है—

किन्तु निरर्थक मरने की आज्ञा कड़ी
कैसे पालन करने के है योग्य यों[1]।

इस प्रकार आचार-नीति में योग्य पुत्र को माता-पिता की आज्ञा पालन तथा कुल की मर्यादा का आचरण करना चाहिए। उसे पिता से योग्य तथा कुल की उन्नति करने वाला होना चाहिए।

पुत्री

पुत्री के सम्बन्ध में पिता का यह मत है कि उसके सयानी होने पर उसे अविवाहित न रखा जाय। प्रसाद ने इसी कारण 'चितौड़ उद्धार' में मालदेव द्वारा उसकी विधवा पुत्री का (जो कि आठ वर्ष की अपरिपक्वावस्था में ही विधवा हो गई थी) विवाह हम्मीर से कराया है[2]। वाल्मीकि रामायण में कन्या के पिता का स्थान समाज में नीचा बतलाया है[3]।

पुत्री का भी पिता के प्रति यह धर्म है कि वह अपने पिता की विपत्तिकालीन स्थिति में सेवा करे। 'जहांनारा' अपने पिता शाहजहां की रुग्णावस्था में प्राण-प्रण से सेवा करती है[4]।

भाई-भाई

परिवार में भाई का स्थान उच्च है। यह बात सत्य है कि भाई जैसा मित्र और शत्रु संसार में नहीं है। वह समय के साथ दोनों रुप धारण कर लेता है।

'ध्रुवस्वामिनी' में चन्द्रगुप्त, अपने भाई रामगुप्त के प्रति, राज्य पद और अपनी वाग्दत्ता पत्नी की उपेक्षा करते हुए, सद् व्यवहार का परिचय देता है। परन्तु जब वह यह देखता है कि उसके भाई द्वारा कुल कीर्ति अस्थिर होने जा रही है तो वह कुल गौरव एवं नारी-सम्मान के लिये सजग हो जाता है। वह ध्रुवस्वामिनी को पूर्ण विश्वास के साथ कह उठता है—'यह नहीं हो सकता! महादेवि! जिस मर्यादा के

---

१. करुणालय, पृ० १२ २. छाया, चितौड़-उद्धार, पृ० ६६

३. सदृशाच्चापकृष्टाच्च, लोके कन्या पिता जनात्।
प्रधर्षणभवाप्नोति, शक्रेणापि समो भुवि ॥ (वाल्मीकि रामायण, २।११८।३५)

४. छाया, जहांनारा, पृ० ६६-१०४

लिए जिस महत्त्व को स्थिर रखने के लिए, मैंने राज-दण्ड ग्रहण न करके अपना मिला हुग्रा ग्रधिकार छोड़ दिया; उसका यह ग्रपमान। मेरे जीवित रहते ग्रार्य समुद्रगुप्त के स्वर्गीय गर्व को इस तरह पददलित होना न पड़ेगा[1]। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में भीमवर्मा ग्रपने बड़े भाई बन्धुवर्मा के सम्मुख स्वयं को उसका ग्रनुचर समझता है। वह बन्धुवर्मा द्वारा स्कन्दगुप्त के लिए मालव देश को त्यागने की बात सुनकर विचिलित होता है, परन्तु भाई की—बड़े भाई की इच्छा के सम्मुख नतमस्तक होकर उसका ग्रनुसरण करता है[2]। 'ग्रशोक' कहानी में महाराज ग्रशोक ग्रपने भाई वीताशोक की जैनियों को शरण देने के कारण हत्या हो जाने पर बन्धु-शोक में हत्या की ग्राज्ञा बन्द करा देते हैं तथा स्थान-स्थान पर जीव हिंसा न करने की ग्राज्ञा पत्थरों पर खुदवा देते हैं[3]।

भाई-बहिन

परिवार में भाई-बहिन का सम्बन्ध घनिष्ट होता है। प्रसाद ने बहिन के ग्रादर्श को प्रस्तुत किया है। 'स्कन्दगुप्त' की देवसेना ग्रपने भाई बन्धुवर्मा के मान का ध्यान रखती है। वह इस प्रकार का कोई व्यवहार नहीं करना चाहती जिससे उसके भाई पर कलंक लगे। देवसेना के भाई बन्धुवर्मा ने स्कन्दगुप्त को मालव का राज्य सर्मापित किया है। देवसेना का स्कन्दगुप्त से प्रणय-भाव गम्भीर है; परन्तु वह ग्रपनी दूरदर्शिता का ग्रनुभव करती हुई कहती है—'लोग कहेंगे कि मालव देकर देवसेना का व्याह किया जा रहा है[4]।' ग्रतः वह स्कन्दगुप्त से व्याह नहीं करती। वह कहती है—'मालव ने जो देश के लिए उत्सर्ग किया है, उसका प्रतिदान लेकर मृत ग्रात्मा का अपमान न करूँगी[5]।' बहिन की विपत्तिकाल में रक्षा करना भाई का धर्म है। राज्यश्री ग्रपने पति ग्रहवर्मा की युद्ध में हत्या होने पर, देवगुप्त की बन्दिनी बनती है। उसका भाई राज्यवर्धन उसके उद्धार का प्रयत्न करता हुग्रा देवगुप्त से युद्ध करता है। लेकिन युद्ध में राज्यवर्धन की मृत्यु हो जाती है[6]। परन्तु राज्यश्री का दूसरा भाई हर्षवर्धन उसकी रक्षा करता हुग्रा उसे पुनः शक्तिशाली ग्रौर वैभवपूर्ण बना कर आदर्श भ्रातृत्व का निर्वाह करता है[7]। इसी प्रकार 'करुणा की विजय' नामक कहानी में ग्रसहाय मोहन चने बेच कर ग्रपनी बहिन रामकली का जीवन-निर्वाह करते हुए भाई के कर्तव्य का पालन करता है[8]।

---

१. ध्रुवस्वामिनी, पृ० २९ २. स्कन्दगुप्त, पृ० ६६-६७ ३. छाया, ग्रशोक पृ० ८४
४. छाया, ग्रशोक, पृ० ११४ ५. वही, पृ० ६४-६६
६. स्कन्दगुप्त, ७. राज्यश्री, पृ० ४५-४९ तथा ५८
८. प्रतिध्वनि, करुणा की विजय, पृ० ५२-५४

पति और पत्नी

प्रसाद की रचनाओं में जयमाला, वपुष्टमा, सरमा, शीला वासवी, मालती, कलावती, तितली आदि नारियां पति परायणा हैं। यह नारियाँ अपने पति की आज्ञा के सम्मुख नतमस्तक रहती हैं। पति को विपत्तिकाल में देख कर अपने जीवन की तनिक भी परवाह न करते हुए उन्हें बचाने का प्रयत्न करती हैं। इन नारियों के अतिरिक्त प्रसाद ने पतिव्रत धर्म के कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जिनमें पुरुष या नारी के कुमार्ग की ओर जाने पर उन्हें सन्मार्ग की ओर लाने का प्रयत्न किया है। 'कामायनी' की श्रद्धा मनु को तथा 'स्कन्दगुप्त' की रामा शर्वनाग को कुमार्ग से सन्मार्ग की ओर प्रवृत करती हैं। 'जनमेजय का नागयज्ञ' की दामिनी तथा 'अजातशत्रु' की छलना में ज्ञान और विवेक का प्रादुर्भाव होने पर वे अपने पति से क्षमायाचना करती हैं। वाल्मीकि रामायण में पति की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि स्त्री के लिए पति ही देवता, बन्धु और गुरु होता है, अतः पत्नी को अपने पति की अभीष्ट-सिद्धि के लिए प्राणोत्सर्ग करने में भी संकोच नहीं करना चाहिये[1]। दुःशील, व्यभिचारी तथा दरिद्र पति भी आर्य नारियों के लिए परम देवता होता है[2]।

सामाजिक नीति

प्रत्येक परिवार मानव-समाज का एक अंग होता है। वह मानव समाज अनेक धर्म तथा वर्ग में विभक्त होता है। समाजिक जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए अनेक नियम बनते रहते हैं। सामाजिक नीति में उन्हीं व्यवहारों (नियमों) का वर्णन होता है। प्रसाद-साहित्य की सामाजिक नीति को नारी, वर्ण, आश्रम, प्रवृत्ति-निवृत्ति में वर्गीकृत कर सकते हैं। सामाजिक नीति के विषय में सामाजिक पृष्ठभूमि वाले अध्याय में विस्तृत विवेचन हुआ है। यहां उसकी पुनरावृत्ति करना ठीक नहीं। अतः यहां सामाजिक क्षेत्र में मानव-जीवन के दो पथ—प्रवृत्ति और निवृत्ति का विवेचन किया जा रहा है।

प्रवृत्ति और निवृत्ति

भारतीय संस्कृति में मानव-जीवन के प्रति दो दृष्टिकोण माने गये हैं—प्रवृति और निवृत्ति। प्रवृत्ति का अर्थ है जीवन के कर्मों में प्रवृत्त रहना तथा निवृति का अर्थ जीवन के कर्मों से विरत रहना है। प्रवृत्ति का पथ एकांगी न होकर अनेकांगी होता

---

१. पतिर्हि देवता नार्याः, पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः।
प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः॥ (वाल्मीकि रामायण ७।४८।१७,१८)

२. दुःशीलः कामवृत्तो वा, धनैर्वा परिवर्जितः।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां, परमं दैवतं पतिः॥ (वाल्मीकि रामायण २।११७।२४

है। अनेकांगी मार्ग पर चलने वाला पथिक संसार के प्रत्येक क्षेत्र में रत रह कर अपना जीवन निर्वाह करता है। निवृत्ति मार्ग का पथ एकांगी होता है। इसमें संसार से विरत रह कर संघर्ष सहित जीवन-यापन करने की भावना प्रमुख रहती है[1]।

प्रवृत्ति मार्ग

'दुखियों की सहायता करना, सुखी लोगों को देख कर प्रसन्न होना, सबकी मंगल कामना करना, यह साकार उपासना के प्रवृत्ति मार्ग के ही साध्य हैं[2]। प्रसाद-साहित्य में प्रवृति और निवृति परायण पात्रों का उल्लेख हुआ है। प्रवृत्ति मार्ग पर प्रायः सभी पात्र चलते हैं। इस मार्ग पर चलने वाले पात्र प्रमुख रूप से जीवन के विभिन्न मार्गों में रत रहने पर भी सामान्य रूप से जीवन निर्वाह करते हैं। श्रद्धा, चन्द्रगुप्त, चाणक्य, देवगुप्त और छलना अपने जीवन में परिस्थितिवश अनेक मार्गों को ग्रहण करते हुए जीवन-यापन करते हैं। ये राजनीतिक कुचक्रों के कारण कभी ऊपर उठते हैं और कभी नीचे गिरते हैं। इन्हें देश की शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए अनेक मार्ग अपनाने पड़ते हैं। काश्यप और प्रपंचबुद्धि विद्वेष, धार्मिक वितंडावाद तथा निजी स्वार्थ को लेकर जीवन पथ की ओर अग्रसर होते हैं। मनु में भी विलासिता, स्वार्थ परयणता, अहम्-भावना और आत्म-मोह की प्रवृत्ति प्रमुख है। रामगुप्त, नन्द, शकराज और नरदेव ऐसे पात्र हैं जो तामसिक प्रवृत्ति द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। इनमें विलासिता और क्रूरता की प्रवृत्ति की प्रधानता है। ये पात्र अनैतिक आचरण करने में भी नहीं चूकते। इनके अतिरिक्त सत्यशील, फिलिप्स, भिक्षु और देवगुप्त ऐसे पात्र हैं जिनमें नारी की मान-मर्यादा का अपहरण करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

नारी पात्रों में वासनात्मक प्रवृत्ति प्रमुख दिखाई देती है। इन नारियों में रूप सौन्दर्य के कारण स्वार्थपरता, वासना और ईर्ष्या की प्रमुखता है। विजया जैसी नारी धनी होने पर भी उठ नहीं सकती। वह अपने स्वार्थी प्रेम के लिए देवसेना की बलि देना भी स्वीकार कर लेती है। अपनी प्रेम-पिपासा के कारण जीवन में स्कन्दगुप्त, भट्टार्क और पुरुगुप्त की ओर अनुरक्त होती है। सुरमा और सुवासिनी की भी यही प्रवृत्ति है। सुवासिनी अपने जीवन में चाणक्य, राक्षस और नन्द के सम्पर्क में आती हैं। अन्त में राक्षस में ही अपने को आत्मसात् कर लेती है। सुरमा अपनी अतृप्त वासनात्मक प्रवृत्ति के कारण इधर-उधर घूमती है। वेद जैसे महान् विद्वान् की पत्नी दामनी वासना की भूख में वेद के शिष्य उत्तंक की ओर अग्रसर होती है। अन्त में वह पश्चाताप करती हुई सन्मार्ग में प्रविष्ट होती है। मागंधी अपनी इस प्रवृत्ति के कारण

१. बलदेव उपाध्याय, आर्य संस्कृति के मूलाधार, पृ० ४२७ २. कंकाल पृ० ६८-६६

पहिले गौतम को आकर्षित करना चाहती है परन्तु अपनी कुचेष्टाओं में असफल होने पर राजरानी बनती है। बाद में विरुद्धक द्वारा छली जाने पर वेश्या बनती है। इस प्रकार वह अन्य नारियों के समान जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवृत्त होते हुए भी अपने जीवन में एकरूपता लाने का प्रयास करती हुई कह उठती है—'वाह री नियति ! कैसे-कैसे दृश्य देखने में आये—कभी बैलों को चारा देते-देते हाथ नहीं थकते थे, कभी अपने हाथ से जल का पात्र तक उठाकर पीने में संकोच होता था, कभी शील का बोझ एक पैर भी महल के बाहर चलने में रोकता था और कभी निर्लज्ज गणिका का आमोद मनोनीत हुआ। इस बुद्धिमत्ता का क्या ठिकाना है ? वास्तविक रूप के परिवर्तन की इच्छा मुझे इतनी विषमता में ले आई। अपनी परिस्थिति को संयत न रखकर व्यर्थ महत्व का ढोंग मेरे हृदय ने किया, काल्पनिक सुख-लिप्सा ही में पड़ी—उसी का यह परिणाम है। स्त्री-सुलभ एक स्निग्धता, सरलता की मात्रा कम हो जाने से जीवन में कैसे बनावटी भाव आ गए ! जो अब केवल एक संकोचदायिनी स्मृति के रूप में अवशिष्ट रह गए[१]।'

निवृत्ति मार्ग

प्रसाद-साहित्य में निवृत्ति मार्ग की ओर चलनें वाले प्रमुख पात्रों में श्रद्धा, अशोक, हर्ष, बिम्बसार, राज्यश्री और स्कन्दगुप्त हैं। 'अशोक की चिन्ता' में अशोक कलिंग युद्ध के भीषण नर-संहार को देखकर संसार से विरक्त हो जाता है[२]। बिम्बसार और स्कन्दगुप्त में भी यह प्रवृत्ति घर कर गई है। बिम्बसार संसार में निवृत्ति-मार्ग की ओर अग्रसर होने से पूर्व संसार की निस्सारता का विचार करते हैं—'आह, जीवन की क्षणभंगुरता देखकर भी मानव इतनी गहरी नींव देना चाहता है। आकाश के नीले पत्र पर उज्ज्वल अक्षरों से लिखे अदृष्ट के लेख जब धीरे-धीरे लुप्त होने लगते हैं तभी तो मनुष्य प्रभात समझने लगता है और जीवन संग्राम में प्रवृत्त होकर अनेक अकांड-तांडव करता है। फिर भी प्रकृति उसे अन्धकार की गुफा में ले जाकर उसका शांतिमय, रहस्यपूर्ण भाग्य पर चिट्ठा समझाने का प्रयत्न करती है। किन्तु वह कब मानता है ? मनुष्य व्यर्थ महत्व की आकांक्षा में मरता है; अपनी नीची किन्तु सुदृढ़ परिस्थिति में उसे संतोष नहीं होता, नीचे से ऊँचे चढ़ना ही चाहता है, चाहे फिर गिरे तो भी क्या[३] ?' बिम्बसार के हृदय में विरक्ति की भावना प्रबल होते हुए भी, वह अपने मन को समझाता हुआ कहता है—'पुत्र को समस्त अधिकार देकर वीतराग हो जाने से असंतोष नहीं जाता; क्योंकि मनुष्य अपनी ही आत्मा का भोग उसे भी

१. अजातशत्रु, पृ० १३६ २. लहर, अशोक की चिंता, पृ० ४६

१. अजातशत्रु, पृ० २९

समझता हैं[१] ।' बिम्बसार वामप्रस्थ ग्रहण करने पर अपने परिवार से विरक्त नहीं होते । वे छलना के कृत्यों की भर्त्सना करते हैं[२] । बिम्बसार को सांसारिक वैभव और विलास से विरक्ति हो गई है । वह 'सम्राट् न होकर किसी विनम्र लता के कोमल किसलयों के झुरमुट में एक अधखिला फूल'[३] होने की इच्छा करते हैं ।

स्कन्दगुप्त निवृत्ति परायण पात्र है । उसके हृदय में निराशा का साम्राज्य है । वह राष्ट्र का हितचिंतक है । वह पराक्रमी, शालीन, विनीत, धैर्यवान तथा दृढ़-संकल्पवान व्यक्ति है । वह विराग की भावना में भी देश के संगठन और रक्षा के लिए प्रवृत्त होता है । वह दूसरी ओर निवृत्ति पथ पर अधिकार सुख को मादक और सार-हीन समझता है[४] । वह अपने जीवन की संकटमय स्थिति में यह कामना करता है— 'बौद्धों का निर्वाण, योगियों की समाधि और पागलों की सी सम्पूर्ण विस्मृति मुझे एक साथ चाहिए'[५] । अधिकार सुख के प्रति उदासीन स्कन्दगुप्त मालव सिंहासन पर बैठ-कर स्वदेश-सेवा में विचलित न होने की प्रतिज्ञा करता है[६] । योगियों की समाधि ग्रहण करने को कामना करने वाला स्कन्दगुप्त एकान्त में देवसेना के साथ जीवन व्यतीत करने की इच्छा प्रकट करता है[७] । इस प्रकार स्कन्दगुप्त का चरित्र निवृत्ति मार्ग के साथ-साथ प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होता है परन्तु उसमें प्रमुखता निवृत्ति की ओर अग्रसर होने की ही रही है ।

नारी पात्रों में राज्यश्री एक अबला नारी है जो त्याग और क्षमा की मूर्ति है । वह अपने पति ग्रहवर्मा की मृत्यु के उपरांत वैधव्य जीवन व्यतीत करती है । ऐसी परिस्थिति में वह बौद्धमतावलम्बी होकर राज्य कार्यों में सहायता देती है । वह पूर्ण रूप से जीवन-पथ से विरक्त नहीं होती । परन्तु अपने पति तथा भाई राज्यवर्धन की मृत्यु तथा राज्य के संघर्षों के परिणामस्वरूप उसके हृदय में उदासीनता और विरक्ति की भवना घर कर जाती है । वह निवृत्ति परायण हो जाती है । कौशल सेनापति बंधुल की पत्नी मल्लिका भी अपने पति की मृत्यु के उपरान्त बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेती है और जीवन को क्षणभंगुर समझती है ।

राजनीति

जब एक साधारण गृहस्थ को सुचारु रूप से चलाने के लिये पर्याप्त कौशल का ध्यान रखा जाता है तो एक शासक को भी समस्त देश पर सुशासन करने तथा अन्य देशों से सम्बन्ध बनाये रखने के लिये कितनी निपुणता की आवश्यकता होती है, यह

---

१. अजातशत्रु, पृ० ३६
२. वही, पृ० ८८
३. वही, पृ० १४२
४. स्कन्दगुप्त, पृ० ९
५. वही, पृ० २२
६. वही, पृ० ७४-७५
७. वही, पृ० १३४

कहना अनावश्यक है । शासक को अपनी प्रजा तथा सहयोगियों से सम्बन्ध निर्वाह करने तथा स्वदेश की रक्षा करने में पग-पग पर नीति-निर्धारण की आवश्यकता पड़ती है । एक सामान्य मानव की नीति की भूल से प्रायः उसी व्यक्ति या परिवार का अनिष्ट हो सकता है परन्तु राजनीति की भूल द्वारा सारे देश का अनिष्ट हो सकता है । अतः उसे साम, दाम दण्ड और भेद नामक उपायों द्वारा संधि, विग्रह, यान, वासन संशय, द्वैषीभाव नामक षड्गुणों द्वारा नीति निर्धारण करनी पड़ती है । राजनीति का विस्तृत विवेचन राजनीतिक पृष्ठभूमि नामक अध्याय में किया गया है यहां शासक-वर्ग की सात्विक, राजसिक, और तामसिक मनोवृत्तियों का चित्रण किया जा रहा है ।

शासक-वर्ग में सात्विक गुणों का होना आवश्यक है । प्रसाद के सात्विक पात्रों में राजसिक गुणों का समागम हुआ है । राजसिक गुणों में फल की इच्छा तथा हर्ष और शोक में लिप्त रहना है । चन्द्रगुप्त मौर्य, स्कन्दगुप्त, तथा चाणक्य राजसिक पात्र हैं । मूल रूप में वे सात्विक हैं परन्तु परिस्थिति-वश राजनीतिक क्षेत्र में उन्होंने राजसिक गुणों को अपनाया है । राजसिक गुणों को ग्रहण करना भी किन्हीं अर्थों में उचित है । यदि उन राजसिक गुणों से जनता का हनन न होकर उन्हें सुख की प्राप्ति होती है तो वह राजसिक कार्य माननीय हैं । शासक वर्ग को कर्म क्षेत्र में उतर कर दण्ड-ग्रहण करना, शस्त्र-संचालन, कुचक्र निवारण आदि कार्य करने पड़ते हैं । न्याय की विजय में धर्म की प्रतिष्ठा है ।

सत्तारूढ़ सम्राट् अधिकार और पदयश के आकांक्षी होते हैं । भट्टार्क और देवगुप्त सत् के साथ तामस गुणों को ग्रहण किये हुए हैं । भट्टार्क अनन्त देवी का खिलौना है। वह उसके द्वारा राज्य प्राप्त करना चाहती है। भट्टार्क मां रामा से प्रेरित होकर सत् कार्य की ओर अग्रसर होता है ।

प्रसाद ने कुछ ऐसे पात्रों का चित्रण किया है जिनमें राजसिक गुणों की प्रधानता है । वे अपनी चंचलगति द्वारा इधर-उधर घूमते हुए राजनीति को गंदला करते हैं । 'चन्द्रगुप्त' में राक्षस, सिकन्दर, सिल्यूकस, पर्वतेश्वर, आंभीक, सुवासिनी, 'स्कन्दगुप्त' में भट्टार्क, शर्वनाग, मातृगुप्त और धातुसेन, 'अजातशत्रु' में अजातशत्रु, विरुद्धक, उदयन, प्रसेनजित और दीर्घकारायण, वसन्तक, जीवक, शक्तिमती, 'राज्यश्री' में शान्तिदेव और सरमा, 'जनमेजय का नागयज्ञ' में सरमा, उत्तंक, सोमश्रवा और पुरोहित हैं । परन्तु इन पात्रों में अजातशत्रु, विरुद्धक, प्रसेनजित् और राक्षस पहिले सत् वृत्ति के होते हैं, बाद में यह विषयगामी और महत्वाकांक्षी बनकर षड्यन्त्रों का सृजन करते हैं और अन्त में यह सुधर जाते हैं। सुरमा और शान्तिदेव पहले तामसिक वृत्ति से कुचक्र

करते हैं परन्तु अन्त में आदर्श आत्माओं के समक्ष झुक जाते हैं।

सत्तारूढ़ शासक-वर्ग अधिकार और पदयश का आकांक्षी होता है। शासक-वर्ग के साथ कुछ ऐसे पात्र भी इस वर्ग में सम्मिलित हो जाते हैं जो राजनीति को दूषित बनाने में पूर्ण सहयोग देते हैं। इनमें तामस गुणों की प्रमुखता रहती है। भटार्क, और देवगुप्त सत् के साथ तामस गुणों को ग्रहण किये हुए हैं। भट्टार्क, अनन्तदेवी का खिलौना है, वह उसके द्वारा राज्य प्राप्त करना चाहती हैं। भट्टार्क अपनी मां से प्रेरित होकर सत् कार्य की ओर अग्रसर होता है, परन्तु पुनः अनन्तदेवी के इशारे पर नाचता है। इसी प्रकार राक्षस भी एक ओर तो सुवासिनी और नन्द से प्रभावित है तथा दूसरी ओर चाणक्य से। देवगुप्त, छलना के हाथ का पुतला है। वह न्यायोचित अधिकार के विरुद्ध कुचक्र की सर्जना करता हुआ राजनीति को दूषित करता है।

प्रसाद की रचनाओं में कुछ ऐसे पात्र हैं जिनसे राजनीति दूषित होती है। 'चन्द्रगुप्त' में नन्द और फिलिप्स, 'स्कन्दगुप्त' में अनन्तदेवी, विजया और प्रपंचबुद्धि, 'अजातशत्रु' में छलना, मागन्धी और देवगुप्त, 'ध्रुवस्वामनी' में रामगुप्त, शकराज और शिखर स्वामी, 'विशाख' में नरेन्द्रदेव, महापिंगल, सत्यशील और भिक्षु, 'जनमेजय का नागयज्ञ' में काश्यप, तक्षक, मनसा और वासुकि ऐसे पात्र हैं जिनमें क्रूरता और उच्छृंखलता की भरमार है। ये अपने कुचक्रों से राजनीति को दूषित बनाते हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि प्रसाद ने आर्य-सम्मत 'ब्रह्म' का प्रतिपादन किया है, जो सगुण और साकार है तथा अपने भक्तों के दुःख को दूर करने के लिये भूतल पर अवतीर्ण होता है। सगुण ब्रह्म के प्रतिपादन में वे प्राचीन परम्परा का आश्रय लेते हैं और मन्दिर, तथा पूजा के विविध उपकरणों को भी ग्रहण करते हैं, जो प्राचीन भारतीय संस्कृति की भित्ति पर खड़े हैं। वे आचार नीति को व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति के लिए सहायक मानते हैं। परिवार नीति में वे माता-पिता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन, पति-पत्नी के कर्तव्यों को बतलाते हुए उन्हें उचित व्यवहार करने का सुझाव देते हैं। सामाजिक नीति में सामाजिक जीवन को सुव्यवस्थित रखने के लिये मार्ग-दर्शन करते हैं। राजनीति के अन्तर्गत राजा के सुशासन पर जोर देते हैं। शासक को अपने देश की सुरक्षा के लिये समय-समय पर नीति निर्धारण करनी पड़ती है। यह वह उसी समय कर सकता है जब उसमें सद्वृत्तियाँ कार्य करें। यदि शासक राजसिक-वृत्तियों में लीन रहेगा तो सारे राष्ट्र को धूल में मिला सकता है। इसलिए इसे साम, दाम, दंड और भेद से अपने देश की शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप से

चलाना पड़ता है । इस प्रकार प्रसाद उक्त सभी नैतिक आदर्शों का निर्वाह धार्मिक आधार पर करते हैं । मूलतः उनके नैतिक आदर्श प्राचीन धर्म-ग्रंथों का आश्रय लेकर आगे बढ़े हैं, फिर भी सम सामयिक नैतिक विचारधारा की वे अपेक्षा नहीं कर सके हैं । इसीलिये उनके नैतिक आदर्शों में महात्मा गांधी के नैतिक आदर्शों का समावेश परिलक्षित है । फलस्वरूप उनके नैतिक आदर्श रूढ़िबद्ध परम्पराओं की लकीर मात्र ही नहीं पीटते, अपितु वे जीवन्त और चिरन्तन प्रतीत होते हैं । उनके द्वारा प्रस्तुत किये गये आदर्शों को इसी कारण जीवन में उतारा जा सकता है ।

अध्याय ७

दार्शनिक पृष्ठभूमि

प्रसाद मूलतः कवि थे। उन्हें भावुक हृदय मिला था, किन्तु उनकी भावोर्मियों का बौद्धिक तल विस्मृत नहीं किया जा सकता। वे जिस संस्कृति के उपासक थे उसके पोषक भी थे, अतएव उनके अन्तर को हृदय और बुद्धि, दोनों के प्रकाश में परखना अत्यावश्यक है। प्रश्न यह है—क्या प्रसाद दार्शनिक भी थे ? कवि सदैव दार्शनिक का विरोधी नहीं होता। दर्शन कभी-कभी काव्य को वह धरातल प्रदान करता है जिस पर उसको फूलने-फलने का अवसर मिलता है। प्रसाद की सांस्कृतिक पीठिका में उनका 'कवि' उनके 'दार्शनिक' से छत्तीस की स्थिति में नहीं है। प्रसाद का 'कवि' दार्शनिक का अधीन नहीं है। वह स्थूलतः स्वतन्त्र है किन्तु विचारों के सूक्ष्म तन्त्र में 'कवि' 'दार्शनिक' का पल्ला पकड़लेता है।

प्रसाद के काव्य या साहित्य का दार्शनिक परिपार्श्व उनके कवि की स्वतंत्रता का अपहरण नहीं कर लेता। उनकी कविता में घिसा-पिटा दर्शन भी नई आभा द्योतित करता है। यही कारण है कि शैवागम और बौद्ध दर्शन, दोनों के सूत्रों से उनके भावों का विचारतल परिपुष्ट हुआ है। समरसतावाद, आनन्दवाद, नियतिवाद, आभासवाद और स्वतंत्रतावाद, जिनका संबंध शैव-दर्शन से है, बौद्धों के दुःखवाद, क्षणिकवाद और करुणावाद से मिल कर हतप्रभ नहीं हुए। इनमें कर्मवाद और परिमाणुवाद की धाराएं भी उद्वेलित हो रही हैं। इन धाराओं में कहीं प्रत्यभिज्ञा दर्शन, कहीं गीता के दर्शन और कहीं न्यायवैशेषिक की झांकियाँ पा लेना कठिन नहीं है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन

प्रत्यभिज्ञा दर्शन शैवमत की अद्वैतवादी शाखा है। इसका उदय काश्मीर से हुआ। प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है जानी हुई वस्तु को पुनः पहिचानना। जिस प्रकार एक विवाहित युवती अपने प्रियतम को जानते हुए भी उसके पास जाने पर आनन्दित नहीं

होती, किसा दूती या सेविका के पुनः परिचय देने पर वह आनन्दित होती है, उसी प्रकार मनुष्य विभिन्न साधनों द्वारा 'अहंमेश्वरः' का ज्ञान प्राप्त करने पर उस अवतीर्ण आनन्द को प्राप्त करता है[1]। इस दर्शन में पति, पशु और पाश का विवेचन होने से इसे त्रिक् या स्पंद दर्शन भी कहते हैं[2]। इस मत में चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान, क्रिया आदि पांच शक्तियों का सामरस्य है। चित् शक्ति प्रकाश-स्वरूप है, जिसमें परमशिव का स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता है। आनन्द शक्ति द्वारा, हर्ष का निरपेक्ष अनुभव होता है। ज्ञानशक्ति द्वारा स्वयं को स्वतन्त्र इच्छा-सम्पन्न समझना है। ज्ञानशक्ति अनंत ज्ञान संपन्न है। क्रियाशक्ति में सर्व आकार ग्रहण करने की क्षमता रहती है। इन पांच शक्तियों से परमशिव अपनी स्वतंत्र इच्छा मात्र से जगत् रूप में परिणत होते हैं[3]। सृष्टि की उत्पत्ति में शिव और शक्ति दो ईश्वर के स्वरूप कार्य करते हैं। शिव प्रकाशवान माना गया है और शक्ति विमर्शरूपिणी। दोनों के सामरस्य का वर्णन तन्त्रालोक[4] और तन्त्रसार[5] में मिलता है, यही आनन्द की अवस्था है। समरसतावाद और आनन्दवाद प्रत्यभिज्ञा दर्शन के दो रूप हैं।

समरसतावाद

समरसता का सिद्धान्त एक सांस्कृतिक पक्ष है, जिसमें मेरे और तेरे की भावना की समाप्ति होने पर मन आनन्द में लीन होकर सामरस्य को प्राप्त होता है। इस प्रकार आत्मा और परमात्मा का यह मिलन दम्पत्ति-मिलन के सदृश है[6]। प्रसाद समरसतावाद के सिद्धान्त से प्रभावित हैं। वे अपने साहित्य में इच्छा, कर्म और ज्ञान का सामरस्य, दुःख-सुख का सामरस्य, नर-नारी और अधिकारी-अधिकृत का सामरस्य तथा विश्व-पीड़ितों के प्रति समरसता का उपचार चाहते हैं।

इच्छा कर्म और ज्ञान की समरसता

'कामायनी' में मनु श्रद्धा को प्राप्त कर उसे उस स्थान पर ले जाने के लिये वाध्य करते हैं जहाँ मनुष्य पाप और पुण्य की स्थिति से ऊँचा उठ कर आत्मनिष्ठ एवं समदर्शी हो जाता है तथा असत्य और लेशमात्र (सीमित) ज्ञान दूर हो जाते हैं। वह स्थल है समरसता का जहाँ अखण्ड आनन्द का निवास है—

---

१. रामकृष्ण गोपाल भंडारकर, विष्णुइज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजियस सिप्टम्स, पृ० १८७
२. पं० बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ० ५६१-५६२   ३. वही, पृ० ५६०
४. अभिनवगुप्त, तन्त्रालोक, आह्निक, ९   ५. अभिनवगुप्त, तंत्रासार, आह्निक, ८
६. पं० बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ० ५६७

'यह क्या ! श्रद्धे ! बस तू ले चल,
उन चरणों तक, दे निज संबल,
सब पाप-पुण्य जिसमें जल जल,
पावन बन जाते हैं निर्मल,
मिटते असत्य से ज्ञान लेश,
समरस अखंड आनन्द वेश[1] !'

प्रसाद समरसता का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत करते हुए इच्छा, कर्म और ज्ञान के अस्तित्व को प्रतिपादित करते हैं—

इच्छा—

'वह देखो रागारुण है जो
ऊषा के कंदुक सा सुन्दर,
छायामय कमनीय कलेवर
भावमयी प्रतिमा का मन्दिर[2] ।'

कर्म—

'मनु यह श्यामल कर्म लोक है
धुंधला कुछ कुछ अंधकार सा,
सघन हो रहा अविज्ञान यह
देश मलिन है धूमधार सा[3] ।'

ज्ञान—

प्रियतम यह तो ज्ञान क्षेत्र है
सुख दुःख से है उदासीनता,
यहां न्याय निर्मम चलता है
बुद्धि चक्र, जिसमें न दीनता[4] ।'

समरसता की अवस्था आत्मा और परमात्मा के भेद को समाप्त करती है। प्रसाद ने इच्छा, कर्म और ज्ञान की भिन्नता को बतलाते हुए तीनों की एकता के अभाव में आनन्द की प्राप्ति असम्भव बतलाई है—

'ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की[5] ।'

१. कामायनी, दर्शन सर्ग, पृ० २५४
२. वही, रहस्य सर्ग, पृ० २६२
३. वही, पृ० २६६
४. वही, पृ० २६६
५. कामायनी, रहस्य सर्ग, पृ० २७२

भारतीय संस्कृति में इच्छा, कर्म और ज्ञान के अलग रहने से इस संसार में विषमता बढ़ती है । इन तीनों के ऐक्य के अभाव में सामरस्य की प्राप्ति अर्थात् शिवत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती[1] । सत्व, तम और रज के त्रिगुणात्म प्रवाह में कहीं किसी ओर से एकात्मकता दृष्टिगोचर नहीं होती । अत्यन्त ऊँची भूमि से ये गोलक अलग-अलग दिखाई देते हैं । इनका विच्छेद चिरंतन और शास्वत है । इच्छा या भावना रजोगुण वृत्ति है, ज्ञान सात्विक व्यापार है और कर्म तामस का परिणाम है । सृष्टि के ये प्रबलतम तथ्य परस्पर विच्छिन्न होकर एक-दूसरे से टूट कर अत्यन्त वैषम्य की सृष्टि करते हैं[2] ।' श्रद्धा अपने प्रयत्न से इच्छा, कर्म और ज्ञान के त्रिकोण को मिला देती है । तभी सुख और आनन्द की सृष्टि होती है—

'स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे,
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे[3] ।'

इस प्रकार, इन तीनों (इच्छा, कर्म और ज्ञान) के सामरस्य स्थिति पर आते ही एक दिव्य स्वर-लहर का संचार हो जाता है । मनु योगियों की परमानन्द दशा अनाहत नाद में लीन हो मुक्ति-सुख में विचरण करने लगते हैं । योगियों को निर्विशेष या निर्विकल्प समाधि में स्थित होने पर जैसी विशुद्ध अनुभूति होती है, वैसी ही अनुभूति इस सामरस्य-दशा में होती है । ध्याता, ध्येय और ध्यान तीनों एक होकर जैसे योगी को अखण्ड आनन्द पहुंचा देते हैं, वैसे ही इच्छा, क्रिया और ज्ञान में समत्व आने पर भेद-बुद्धि निःशेष हो जाती है । शैवागमों में इस स्थिति को चित्तानन्द-प्राप्ति कहते हैं । यह समरसता के मार्ग से ही उपलब्ध होती है[4] ।

सुख-दुःख का समन्वय

प्रसाद इच्छा, ज्ञान और कर्म के अतिरिक्त जीवन में सुख-दुःख का सामरस्य

---

१. 'इच्छा ज्ञानं क्रिया चेति यत्पृथकपृथगंज्यते ।
तदैव शक्तिमत्स्वैः स्वैरियमाणादिकैः स्फुटम् ।
एतत्त्रितथमैवयेन यदा तु प्रस्फुरेत्तदा ।
न केनचिदुपाधेयं स्त्र स्व विप्रतिषेधतः ।
लोली भूतमतः शक्ति त्रितयं तत्त्रि शूलकं ।।

—तंत्रालोक, ३।१०६-८

२. आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, पृ० ६२-६३
३. कामायनी, रहस्य सर्ग, पृ० २७३
४. डा० विजयेन्द्र स्नातक, कामायनी दर्शन, पृ० ११२

भी स्थापित करना चाहते हैं। 'आंसू' में वे सुख-दुःख का मेल कराने को उद्यत हैं—

'हो उदासीन दोनों से
दुःख सुख का मेल करायें[1]'

प्रसाद पीड़ामयी विषमता में विश्व-स्पन्दन देखते हैं। स्पन्दन ही वरदान है। यदि दुःख-सुख में समरसता न हो तो पीड़ा की कटुता उग्र होकर मानव को निष्क्रिय अथवा हताश कर देती है।

'विषमता की पीड़ा से व्यस्त
हो रहा स्पन्दित विश्व महान्[2],'

दुःख से ही सुख का आविर्भाव होता है—

'व्यथा से नीली लहरों बीच
बिखरते सुख मणि गण पुतिमान[3]।'

प्रसाद दुख-सुख के वास्तविक रहस्य को भूमा का वरदान मानते हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में भूमा के सुख को अमृत बतलाया है।[4] 'चन्द्रगुप्त' नाटक मे दांड्यायन भूमा के सुख को महत्ता प्रदान करता हुआ कहता है—'भूमा का सुख और उस की महत्ता का जिसको आभासमात्र हो जाता है, उसको ये नश्वरचमकीले प्रदर्शन अभिभूत नहीं कर सकते[5]।'

'एक घूंट' एकाँकी में प्रसाद दुःख का एकमात्र सहारा दुःख-सुख का समन्वय मानते हैं। वे आनन्द के शब्दों में उस दुःख और जीवन की विभीषिकाओं के निवारण हेतु समन्वयात्मक कदम उठाते हुए कहते हैं—'उन्हें पुचकार दो, सहला दो, तव भी न मानें तो किसी एक का पक्ष न लो। बहुत सम्भव है कि वे आपस में लड़ जाएं और तुम तटस्थ दर्शक मात्र बन जाओ[6]।'

नर-नारी और अधिकारी-अधिकृत की समरसता

प्रसाद सभी क्षेत्रों में समरसता चाहते हैं। उनकी धारणा है कि समरसता के अभाव में नर-नारी, अधिकारी-अधिकृत, शासक-शासित में विद्रोह उत्पन्न हो जायेगा। आज का मानव नारी को वासना-तुष्टि का साधन मानता है। वह स्त्री को अपने से हीन समझता है। इसी कारण प्रसाद नर-नारी तथा अधिकारी-अधिकृत में समरसता चाहते हैं—

'तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की
समरसता है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की[7]',

१. आँसू, पृ० ५०
२. कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० ५४
३. वही, पृ० ५४
४. छान्दोग्योपनिषद्, ६।२३-२५
५. चन्द्रगुप्त, पृ० ६५
६. एक घूँट, पृ० १३
७. कामायनी, इड़ा सर्ग, पृ० १६२

युद्ध के उपरान्त मनु को श्रद्धा का संबल प्राप्त हुआ है, वही नर-नारी के मिलन की सामरस्य अवस्था है—

'संगीत मनोहर उठता
मुरली बजती जीवन की,
संकेत कामना बन कर
बतलाती दिशा मिलन की[1] ।'

अधिकारी और अधिकृत तथा शासक और शासित के मध्य सामरस्य स्थापित करने के संबंध में आचार्य वाजपेयी जी का कथन है—'अधिकारी और अधिकृत, शासक और शासित के बीच सदा से एक दुर्भेद्य खाई रही है, जिससे संसार में महान् उत्पीड़न होते आये हैं। इन दोनों में अनियन्त्रित सम्बन्ध रहने के कारण ही इतिहास के पृष्ठ अतिरंजित हुए हैं। यद्यपि प्रसादजी ने इस द्वैत के निर्मूलन के लिए अधिकारी या सत्ताधारी को ही समाप्त कर देने का संदेश नहीं दिया है परन्तु इस ऐतिहासिक द्वन्द्व को भी समरसता द्वारा शान्त करने का मार्ग-निर्देश किया है[2] ।'

विश्व पीड़ितों के प्रति समरसता का उपचार

'कामायनी' में श्रद्धा अपने पुत्र मानव को इड़ा के सम्पर्क से समरसता का प्रचार करते हुए भेद-विभेद का अन्त करके समानता और आत्मीयता से युक्त घनिष्ट संबंध स्थापित करने का संदेश देती है। वह इड़ा ही मानव के सामरस्य से मानव-समाज के भाग्योदय की कामना करती है—

'यह तर्कमयी तू श्रद्धामय,
तू मननशील कर कर्म अभय,
इसका तू सब संताप निषय,
हर ले, हो मानव भाग्य उदय,
सब की समरसता का प्रचार,
मेरे सुत ! सुन मां की पुकार[3] ।'

अन्त में हम यही कहेंगे कि 'प्रसाद की 'समरसता' का प्रयोग आधुनिक असंतुलित जीवन का एक हल है। शिव कल्याणमय पुरुष तत्व है, जो भोक्ता है, शक्ति स्त्री है, भोग्य है। दोनों की समरसता होनी चाहिए ! साथ ही प्रसादजी समरसता से योग व भोग दोनों का ही समर्थन करते हैं[4] ।'

---

२. कामायनी, आनन्द सर्ग पृ० २९३
१. आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, पृ० ६१
२. कामायनी, दर्शनसर्ग, पृ० २४४
३. डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, —पृ० २६० (सं० १९६१)

आनन्दवाद

समरसता की क्रोड आनन्द की क्रोड है। आनन्द ही से सृष्टि का विकास और अन्त होता है। उपनिषद् में आनन्द की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए बतलाया गया है कि आनन्द ब्रह्म है[1]। आनन्द से ही प्राणीमात्र की उत्पत्ति होती है, उसी के द्वारा वह जीवित रहता है और प्रयाण के समय वह आनन्द में ही समाहित हो जाता है। 'इरावती' में आनन्द के उल्लास की मात्रा को ही जीवन बतलाया है[2]। 'आनन्द का अन्तरंग सरलता और बहिरंग सौंदर्य है, इसी में वह स्वच्छ रहता है[3]।

'कामायनी' में मनु अर्थात् मन को आनन्द की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील बतलाया है[4]। श्रद्धा अर्थात् हृदय के सम्पर्क से उसको आनन्द की प्राप्ति का प्रयत्न होता है, परन्तु श्रद्धा को त्याग कर इड़ा की ओर अग्रसर होना आनन्द का ह्रास होना है। अन्त में पुनः मनु श्रद्धा के सहयोग से आनन्द लोक में जाते हैं। वहीं उन्हें आनन्द की प्राप्ति होती है—

'शापित न यहां है कोई
तापित पापी न यहां है
जीवन वसुधा समतल है
समरस है जो कि जहां है[5]।'

प्रसाद जी आनन्द की अवस्था का चित्र प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं—

'समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था,
चेतना एक विलसती
आनन्द अखंड घना था[6]।'

इस प्रकार विश्वात्मा में मिलन की अवस्था ही आनन्दवाद है[7]। 'एक घूँट' में भी प्रसाद ने आनन्द की स्थिति का संकेत किया है—'जैसे उजली धूप सब को हंसाती

---

१. 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयान्त्यभिसंविशन्तीवि।'
तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगुवल्ली ३।६

२. इरावती, पृ० ५८

३. एक घूँट, पृ० १५

४. कामायनी, पृ० ५६-५७

५. कामायनी, पृ० २८८

६. कामायनी, पृ० २९४

७. 'आत्म समर्पण करो उसी विश्वात्मा को पुलकित होकर
प्रकृति मिला दो विश्वप्रेम में विश्व स्वयं ही ईश्वर है।' —प्रेमपथिक, पृ० २४

हुई आलोक फैला देती है, जैसे उल्लास की मुक्त प्रेरणा फूलों की पंखड़ियों को गद्-गद् कर देती है, जैसे सुरभि का शीतल झोंका सब का आलिंगन करने के लिए विव्हल रहता है, वैसे ही जीवन की निरन्तर परिस्थिति होनी चाहिए[1]।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि 'प्रसाद का आनन्दवाद सर्ववाद के सिद्धान्त पर आधारित है जो वैदिक, अद्वैत सिद्धान्त भी कहा जा सकता है। यह सर्ववाद शंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित अद्वैत सिद्धान्त से जिसमें माया की भी सत्ता स्वीकार की गई है, भिन्न है। सर्ववाद प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों को आत्मसात् करता है, जबकि शंकर का मायावाद केवल निवृति पर आश्रित है। भारतीय दर्शन की वह धारा जो वेदों में समस्त दृश्य जगत् को ब्रह्म से अभिन्न मानकर चली है, क्रमशः शैवागम ग्रन्थों में प्रतिष्ठित हुई। प्रसाद ने शैवागम से ही इस सर्ववादमूलक आनन्दवाद को ग्रहण किया[2]।'

नियतिवाद

नियतिवाद भारतीय दर्शन की प्रमुख विचारधारा है। यह शैवागमों के प्रत्यभिज्ञा दर्शन से प्रभावित है। प्रत्यभिज्ञादर्शन के छत्तीस तत्वों में इसका स्थान ग्यारहवां है[3]। महेश्वराचार्य अभिनवगुप्त ने नियति को प्रमुख-प्रमुख कार्यों की योजना करने वाली शक्ति वतलाया है[4]। योग-वाशिष्ठ में नियति को सर्वत्र समरूप में व्यापक ब्रह्म की व्यापक सत्ता वतलाया है। वह कारण और कार्य की नियामिका शक्ति है[5]।

---

१. एक घूँट, पृ० १२-१३
२. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, पृ० १०६
३. पं० वलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ० ५६१
४. 'नियतिर्योजना धते विशिष्टे कार्यमंडले। —तन्त्रालोक, भाग ६, पृ० १६०
५. यथास्थितं ब्रह्मतत्वं सत्ता नियतिरुच्चते।
सा विनेतुर्विनेतृत्वं सा विनेय्र विनेयता ॥ —प्रक० २, सर्ग १० श्लोक १
आदिसर्गे हि नियतिभविवेचित्र्यभक्षयम्।
अनेनेत्थं सदा भाव्यमिति संपथते परम ॥ ६ ॥
महासतेति कथिता महाचिरित स्मृता।
महाशक्तिरिति ख्याता, महादृष्टिरिति स्थिता ॥ १० ॥
महाक्रियेति गदिता महाद्भव इति स्मृता।
महास्पन्द इति प्रौढ़ा महात्थैकतयोदिता ॥ ११ ॥
तृष्णानीव जगंत्येवभिति दैत्याः सुरा इति।
इति नागा इति नागा इत्याकल्पं कृता स्थितिः ॥ १२ ॥
—योगवाशिष्ठ प्रकरण २, सर्ग ६२

नियतिवाद प्रसाद-साहित्य की प्रमुख दार्शनिक भूमिका प्रस्तुत करता है। इसका संनिवेश अपने काव्य, नाटक, कहानी और उपन्यासों में उन्होंने बहुलता से किया है। उनकी रचनाओं में नियति का प्रमुख कार्य घटनाओं के उतार-चढ़ाव में सहयोग देना रहा है। प्रसाद की नियतिवादिता मानव को अकर्मण्य नहीं बनाती अपितु मानव को कार्य करने की प्रेरणा देती है। मानव के दुःख को घटाती है। जो होना है वह तो होकर ही रहेगा उसके लिए चिन्ता करना व्यर्थ है ? जब मानव यह सोच लेता है, तो वह दुःखी नहीं रह सकता। तितली में कहा गया है—'नियति दुस्तर समुद्र को पार करती है, चिरकाल के अतीत को वर्तमान से क्षण-भर में जोड़ देती है, और अपरिचित मानवता सिन्धु में से उसी एक से परिचय करा देती है, जिससे जीवन की अग्रगामिनी धारा अपना पथ निर्दिष्ट करती है[१] । मनुष्य चाहे कितना ही सोचे परन्तु वह नियति के विधान को तोड़ नहीं सकता। यही विधाता का निष्ठुर विधान है। इससे छुटकारा नहीं। जीवन नियति के कठोर आदेश पर चलेगा ही[२]। 'कामायनी' में नियति भाग्य को न लेकर कर्मचक्र का संचालन करती है—

'इस नियति-नटी के अति भीषण अभिनय की छाया नाच रही
खोखली शून्यता में प्रतिपद असफलता अधिक कुलांच रही[३]।'

'अजातशत्रु' में जीवक के शब्दों में प्रसाद कहलाते हैं—'अदृष्ट तो मेरा सहारा है। नियति की डोरी पकड़ कर मैं निर्भय कर्मकूप में कूद सकता हूं। क्योंकि मुझे विश्वास है कि जो होना है वह तो होगा ही, फिर कायर क्यों बनूँ—कर्म से क्यों विरक्त रहूं[४]।'

प्रसाद के गीतों में भी इसी प्रकार का स्वर गूंजता हुआ दिखाई देता है—

'मचलता है यह मन, जो प्राण।
सम्हालूंगा मैं इसे नहीं,
कहे देता हूं दूँगा छोड़,
भाग्य पर, इसको जाए कहीं[५]।'

नियति मानव पर नियमिका शक्ति होने से अपना शासन करती है—

'कर्म-चक्र सा घूम रहा है
यह गोलक, बन नियति-प्रेरणा,
सब के पीछे लगी हुई है
कोई व्याकुल नई एषणा[६]।'

---

१. तितली, पृ० ७४
२. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ३३
३. कामायनी, इड़ा सर्ग, पृ० १५८
४. अजातशत्रु पृ० ३८
५. झरना, सुधा चिंतन, पृ० ४७
६. कामायनी, रहस्य सर्ग, पृ० २६६

योग-वासिष्ठ में भी नियति को विराट् नृत्य करती हुई सत्ता बतलाया गया है[1]। यह भयानक वेग से चलती रही है । आंधी की तरह उसमें असंख्य प्राणी तृण-तूलिका के समान इधर-उधर बिखर जाते हैं[2]। वह इस ससार में अपनी कन्दुक-क्रीड़ा करती हुई, अपने अतृप्त मन को भरती है[3]।

यह नियति अखण्ड कर्मलिपि है । यह अदृष्ट की लिपि होने से सब कुछ कराती है—'दम्भ और अहंकार से पूर्ण मनुष्य अदृष्ट शक्ति के क्रीड़ा-कन्दुक हैं । अन्ध नियति कर्तव्य मद से मत्त मनुष्यों की कर्मशक्ति को अनुचरी बनाकर अपना कार्य कराती है[4]' यह 'परमात्मशक्ति' सदा उत्थान का पतन और पतन का उत्थान किया करती है । इसी का नाम है दम्भ और दमन । स्वयं प्रकृति की नियामिका शक्ति कृत्रिम स्वार्थ-सिद्धि में रुकावट उत्पन्न करती है। ऐसे कार्य कोई जान-बूझ कर नहीं करता और न उनका प्रत्यक्ष में कोई ऐसा कारण दिखाई पड़ता है। उलट-फेर को शान्त और विचारशील महापुरुष ही समझते हैं, पर उसे रोकना उनके वश की भी बात नहीं है, क्योंकि उसमें विश्वभर के हित का रहस्य है[5]।

नियति के शासन को प्रामुख्य तो कामायनी में भी मिला है । मनु से श्रद्धा का मिलन तथा मनु का मूर्छित होकर पड़ा रहना नियति का ही खेल है। 'अजातशत्रु' में बिम्बसार, जीवन और मागंधी 'जनमेजय का नागयज्ञ' में जरत्कारु, जनमेजय, व्यास, उत्तंक, वेद माणवक और सरमा, 'चन्द्रगुप्त' में चन्द्रगुप्त, चाणक्य, सिंहरण, शकटार और अलका, 'ध्रुवस्वामिनी' में ध्रुवस्वामिनी, 'राज्यश्री' में देवगुप्त, शान्तिदेव और मधुकर, 'स्कंदगुप्त' में स्कन्दगुप्त, चक्रपालित, प्रपंचबुद्धि, मातृगुप्त, खिगल, अनन्तदेवी और विजया, 'कामना' में विलास आदि सभी पात्र नियति, अदृष्ट लिपि और भाग्यलिपि की सत्ता को स्वीकार करते हुए उसके खेल से चकित हुए दिखाई देते हैं। वे नियति नियामिका शक्ति होने से उसका एकान्त शासन प्राणी मात्र को मान्य होता है[6]। मानव लघु रूपों में प्रकृति के कार्यों को परिवर्तित कर सकता है, परन्तु वह उसे बदल नहीं सकता[7]। यही आधार प्रसाद के नियतिवाद का है। वह नियामिका शक्ति के रूप में दिखाई देती है।

---

१. नियतिर्नित्यमुद्वेगवर्जिता ।
एषा नृत्यतिवै नृत्यं जगज्जालकनाटकम् ।।'
—प्रकरण ६, सर्ग ३७, श्लोक २३

२. आँधी, पृ० ४१

३. आंसू, पृ० ५१

४. जनमेजय का नाग यज्ञ, पृ०७३

५. वही, पृ० ७३-७४

६. कामायनी, आशासर्ग, पृ० ३४

७. किंगस् लैण्ड, रेशनल मिस्टिसिज्म, पृ० ३५४

आभासवाद

अन्यत्र यह कहा ही जा चुका है कि प्रसाद साहित्य पर शैवगामीय प्रत्यभिज्ञा-दर्शन का प्रभाव है। प्रत्यभिज्ञादर्शन में उस चित् शक्ति द्वारा अपने दर्पण में समस्त पदार्थों के प्रतिबिंबित होने से उसे आभासवाद की संज्ञा दी गई है[1]। इस आभासवाद में शिव की अभेद सत्ता का ही रूप बतलाया गया है, जिसमें संसार के प्रत्येक पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं परन्तु उनका आधार प्रकाशवान है। इसमें जड़ और चेतन को उसी एक चेतन सत्ता का रूप माना गया है। शिव की शक्तियों में इच्छा, ज्ञान और कर्म की प्रधानता रहने से इसे महाचित् भी कहा जाता है। महाचित् की सत्ता सर्वोपरि है। विश्व का मनोरम विकास इसी पर निर्भर है। यह सत्ता स्वतन्त्र रूप से विश्व का उन्मीलन करती है[2]। उन्मीलन का अर्थ अन्तः स्थिति को प्रकटित या आभासित करना है, अतः विश्व के जड़ चेतन पदार्थ आभास रूप हैं[3]।

प्रसाद ने इच्छा को सम्पूर्ण संसार की चित् शक्ति कहा है। उसका प्रभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। इच्छा, कर्म, जीवन और जगत का रहस्य होने से ही श्रद्धा मनु को काम की अनिवार्यता और जीवन एवं जगत् के रहस्य को समझाकर कर्म में प्रवृत्त करती है। इस प्रकार काम की समस्त कामनाएँ इच्छाओं का घनीभूत रूप है—

'काम मंगल से मंडित श्रेय
सर्ग इच्छा का ही परिणाम
तिरस्कृत और उसको तुम भूल,
बनाते हो असफल भवधाम[4]।'

इस विश्व में सर्वत्र शिव की अभेद सत्ता का रूप दृष्टिगोचर होता है। जड़ और चेतन उसी एक चित् सत्ता के रूप हैं। प्रसाद इसी विचारधारा को 'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक में व्यक्त करते हैं—'यह पूर्ण सत्य है कि जड़ के रूप में चेतन प्रकाशित होता है। अखिल विश्व एक सम्पूर्ण सत्य है। असत्य का भ्रम दूर करना होगा,

---

१. पं० बलदेव उपाध्याय, भारतीय संस्कृति, पृ० ५९०-९१

२. डा० शम्भूसिंह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ५९९-६०१

३. कर रही लीलामय आनन्द,
महाचिति सजग हुई-सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम,
इसी में सब होते अनुरक्त।
—कामायनी, श्रद्धासर्ग, पृ० ५३

४. कामायनी, श्रद्धासर्ग, पृ० ५३

मानवता की घोषणा करनी होगी, सबको अपनी समता में ले आना होगा[1] ।' इसी प्रकार 'कामायनी' से भी उसी एक तत्त्व की प्रधानता बतलाते हैं—

एक तत्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन'[2]

यहाँ उस महाचित् सत्ता की सत्ता को सर्वोपरि बतलाते हुए कवि ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि जड़ और चेतन का विभेद दृष्टि भ्रम है । यह भ्रम केवल नाम-मात्र का ही है । जिस प्रकार जल में लहर और बुद्बुदा अपनी आकृति के कारण विभिन्न संज्ञाओं से अभिहित किए जाते हैं किन्तु अपने बुद्धि विवेक से दृष्टिगत करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उसके मूल में जल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है । इसी प्रकार इस विश्व की समस्त वस्तुएँ चाहे जड़ मालूम पड़ें या चेतन सब उसी महाचित् के रूप हैं उसके अतिरिक्त कुछ नहीं हैं । श्रीमद्भागवतगीता में भी इसी मत की पुष्टि की गई है[3] ।

स्वातन्त्र्यवाद

प्रत्यभिज्ञादर्शन में ईश्वर की चित् सत्ता को स्वातन्त्र्य बतलाया है, जो फल की आशा न करते हुए अपनी लीला द्वारा इस संसार का निर्माण करती है[4] । प्रसाद भी इस दर्शन से अत्यधिक प्रभावित हैं । उन्होंने कामायनी में इस चित् सत्ता के स्वरूप को स्वतंत्र्य बतलाया है । जो विश्व की सिद्धि के लिए अपना कार्य करती है—

'कर रही लीलामय आनन्द,
महा चिति सजग हुई सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम,
इसी में सब होते अनुरक्त[5] ।'

इस संसार में ईश्वर की परम सत्ता (महाकाल) उन्मत्त होकर नृत्य करती रहती है । इस परम सत्ता में गतिशील काल अपना स्थान खोजता रहता है—

'देश-कल्पना काल-परिधि में होता लय है,
काल खोजता महाचेतना में निज क्षय है ।

---

१. जनमेजय का नाग यज्ञ, पृ० १२-१३
२. कामायनी, चिन्तासर्ग, पृ० ३
३. 'इहेकस्थं जगत्कृत्नं पश्याच सचराचरम्
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद् दुष्टुमिच्छसि ।।
—श्रीमद्भागवत गीता, ११।७
४. स्वच्छन्दतन्त्र, भाग ६, पृ० ४
५. कायायनी, श्रद्धासर्ग, पृ० ५३

वह अनंत चेतन नचता है उन्मद गति से,
तुम भी नाचो अपनी द्वयता में विस्मृति में[१] ।'

प्रसाद स्वातन्त्र्यवाद में उस महाचेतना के साथ-साथ मनु को भी देश-काल की परिधि मिटाकर सहयोग प्रदान करने का परामर्श देते हैं—

क्षितिज पटी को उठा बढ़ो ब्रह्मांड विवर में
गुंजारित घन-नाद सुनो इस विश्व कुहर में[२] ।'

दुःखवाद

दुःखवाद बौद्ध दर्शन के चार आर्य सत्यों—दुःख, दुःघ समुदय, दुःख निरोध और दुख निरोध-मार्ग पर अवलम्बित है। यह सम्पूर्ण संसार दुःखमय है। इस संसार में जन्म, जरा, व्याधि और मरण दुःखमय है। इस संसार में प्राणी मात्र रिश्तेदारों के मरने पर तथा सम्पत्ति के विनाश होने पर, रोगी बनने पर, बार-बार जन्म लेने पर प्रिय-वियोग और अप्रिय के संयोग में आंसू वहाते हुए दुःखमय स्थिति में जीवन-यापन करते हैं[३] ।

प्रसाद पर भी बौद्धों के दुःखवाद का प्रभाव पड़ा। उन्होंने भी अपनी कृतियों मे इस संसार में जीवन को दुःखमय बतलाया है । 'विशाख' में इरावती के शब्दों में दुःख का कारण साधनों की विलीनता बतलाते हुए कहा है—'अहा स्नेह, वात्सल्य, सौहार्द, करुणा और दया सब विलीन हो गए—केवल क्रूरता, प्रतिहिंसा का आतंक रह गया[४] ।' इस दुःखी जीवन में सुख नहीं दिखाई देता । 'विशाख' की चन्द्रलेखा दुखित अवस्था में रहती है—

'सखी री ! सुख किसको हैं कहते ?
बीत रहा है जीवन सारा केवल दुख ही सहते ।
करुणा, कान्त कल्पना हैं बस, दया न पड़ी दिखाई,
निर्दय जगत, कठोर हृदय है, और नहीं चल रहते[५] ।'

दुःख सुख पर अपना अधिकार जमा लेता है । सुख क्षणिक दिखाई देने लग जाते हैं—

जलधर की माला
घुमड़ रही जीवन-घाटी पर

---

१. कामायनी, संघर्ष सर्ग, पृ० १९३
२. वही पृ० १९३
३. पं० बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ० १५२
४. विशाख पृ० ८८
५. विशाख पृ० १३

जलधर की माला ।
क्षणिक सुखों पर सतत झूमती
शोकमयी ज्वाला[1] ।'

वास्तव में जीवन एक विकट पहेली सदृश है । जहाँ सुख दिखाई नहीं पड़ता[2] । सुख पर दुःख अपना अधिकार जमा लेता है । दुःखी अवस्था में वेदना का अनुभव होता है । इस नीरव हृदय में पीड़ा की हाहाकार ध्वनि सुनाई देती है—

इस करुणा कलित हृदय में
अब विकल रागनी बनती
क्यों हाहाकार स्वरों मे
वेदना असीम गरजती[3] ?'

दुःखी मानव जीवन में अपना प्रबल स्थान ग्रहण कर लेता है, इसी कारण दुःख की सब रातें जाड़े की रात से भी लम्बी दिखाई देती हैं । इस दुःखी संसार में दुःख-समुद्र का अपार नाद गूँज रहा है[4] ।

क्षणिकवाद

क्षणिकवाद का सिद्धांत बौद्ध दर्शन के प्रतीत्यसमुत्पाद के अन्तर्गत आता है । इस सिद्धांत के अन्तर्गत जगत की सत्ता को कालगत बतलाया गया है । प्रत्येक वस्तु का विनाश आवश्यक है । वह अधिक समय तक नहीं ठहर सकती । प्रत्येक वस्तु की सत्ता क्षणभंगुर है । इस जगत में सब कुछ परिवर्तनशील है । यह संसार नदी की धारा की तरह प्रवाहवान है । अतः इस संसार में स्थायित्वता और ध्रुवता का अनुमान करना मन की मिथ्या कल्पना है[5] ।

संसार की क्षणिकता या क्षणभंगुरता एक विषमता है, जिसका आधार है संसार की अस्थायित्व । 'चन्द्रगुप्त' नाटक में संसार की इस क्षणभंगुरता के सम्बन्ध में चाणक्य कहता है—'समझदारी आने पर यौवन चला जाता है—जब तक माला गूँथी जाती है, जब तक फ़ल कुम्हला जाते हैं । जिससे मिलने के सम्भार की इतनी धूमधाम, सजावट, बनावट होती है उसके आने तक मनुष्य हृदय को सुन्दर और उपयुक्त नहीं बनाए रह सकता । मनुष्य की चंचल स्थिति तब तक, उस श्यामल कोमल हृदय को मरुभूमि बना देती है, यही तो विषमता है[6] । इस विषमता के कारण ही मनुष्य का

१. एक घूंट, पृ० २४-२५
२. कामायनी, निर्वेद सर्ग पृ० २२९
३. आंसू, पृ० ७
४. कामायनी, पृ० ८
५. डा० रामानन्द तिवारी, भारतीय दर्शन परिचय, पृ० १३२
६. चन्द्रगुप्त, पृ० १५८

जीवन क्षणिक दिखाई देता है। आपत्तियां वायु के सदृश आती हैं और निकल जाती हैं। सुख के दिन भी सूर्य के समान पश्चिम की ओर भागते दिखाई देते हैं। संसार में इस प्रकार दुःख और सुख दोनों का ही अस्तित्व नहीं है, वे क्षणभंगुर हैं। एक न एक दिन दोनों का अन्त अवश्यम्भावी है[1]। इस संसार में सुख-दुःख के अन्त के साथ-साथ जीवन का अन्त भी निश्चित है। यह जीवन धूप-छाँह के खेल सदृश है। जो अपनी क्षणभंगुरता के साथ दिन प्रतिदिन बीतता चला जाता है[2]।

इस क्षणिक संसार में समय का अस्तित्व क्षणिक है। समय पानी के बुलबुले के सदृश है जो लहर, हवा के झोंके, मेघ और बिजली के टोकने पर भी व्यतीत होता जाता है। किसी में इतनी शक्ति नहीं कि वह उसे रोक सके[3]। समय के क्षणिकभंगुर होने के कारण मनुष्य की स्थिति भी इस संसार में क्षणिक दिखाई देती है। 'मनुष्य की अदृष्ट लिपि वैसी ही है, जैसी अग्निरेखाओं से कृपणमेघ में बिजली की वर्णमाला—एक क्षण में प्रज्ज्वलित, दूसरे क्षण में विलीन होने वाली[4]'। प्रसाद ने 'आँसू' में मानव जीवन दो घड़ियों का बतलाया है[5]। 'कामायनी' में इस मानव जीवन का अस्तित्व बिजली के क्षणिक प्रकाश के सदृश बतलाया है[6]। 'अशोक की चिन्ता' में भी जीवन को पतंग के समान बतलाया है जो तृष्णारूपी अग्नि में जल रहा है। यह तृष्णा यौवन में उत्पन्न होती है। मनुष्य इसे रोक नहीं पाता और उसी में जलकर भस्म हो जाता है[7]।

'अजातशत्रु' नाटक में तो इस संसार के सभी साधन क्षणिक एवं चंचल बतलाए हैं—

'अणु-परमाणु, दुःख सुख चंचल
क्षणिक सभी सुख-साधन हैं।
दृश्य सकल नश्वर-परिणामी
किसको दुःख, किसको धन है ?
क्षणिक सुखों को स्थायी कहना,
दुःख मूल यह भूल महा।

१. कंकाल, पृ० १६६
२. स्कन्दगुप्त, पृ० ८५
३. वही, पृ० ८५
४. वही, पृ० १२६
५. आंसू, पृ० ४५
६. 'जीवन तेरा क्षुद्र वंश हैं, व्यक्त नील घन माला में
सौदामिनी-संधि-सा सुन्दर, क्षण भर रहा उजाला में।' —कामायनी, पृ० १६
७. लहर, अशोक की चिन्ता, पृ० ४६

चंचल मानव ! क्यों भूला तू,
इस सीठी में सार कहां[१] ?'

यह संसार धन और वैभव से परिपूर्ण मधुशाला सदृश है, जहां मनुष्य मदिरा-पान में संलग्न रहता है। उसकी महत्वाकांक्षाएँ कभी समाप्त नहीं होतीं । वह सुख और विलास के मद में अपना जीवन-यापन करता रहता है और जीवन की निस्सारता पर दृष्टि नहीं डालता[२] । इस संसार में सुख का अन्त दुःख में होता है। सुख इन दुखी बादलों के बीच बिजली सदृश है। क्षणिक मिलन में वियोग छिपा हुआ है। यह संसार रेगिस्तान में जल का भ्रम मात्र है, जहाँ मनुष्य मृग के समान जल के भ्रम में कष्ट उठाता है[3] ।

यह संसार परिवर्तनशील है, जहां रवि, शशि और तारे नित्य अपना रूप बदलते रहते हैं। मरुभूमि कभी जलनिधि बन जाती है और कभी जलनिधि मरुभूमि का रूप धारण कर लेती है[४] । यह संसार पीड़ा का स्थल है जहां नित्य परिवर्तन होते रहते हैं । जड़ पदार्थ जो नियति के बन्धनों में जकड़े हुए होने पर भी उनमें कुछ न कुछ परिवर्तन होते ही रहते हैं । प्रकृति का यह क्रम अनादिकाल से चल रहा है[५] । इस परिवर्तन में मानव के सौन्दर्य का ह्रास होता है । 'प्रलय की छाया' में सौन्दर्य की स्थिति बतलाई है, जो परिवर्तन के साथ ज्योतिविहीन तारे के सदृश कालिमा की धारा बनकर नीचे गिर रहा है—

'पुण्य ज्योतिहीन कलुषित सौन्दर्य का—
गिरता नक्षत्र नीचे कालिमा की धारा-सा
असफल वृष्टि सोती—
प्रलय की छाया में[६] ।'

---

१. अजातशत्रु, पृ० ४८

२. वैभव की यह मधुशाला,
जग पागल होने वाला,
अब गिरा—उठा मतवाला,
प्याले में फिर भी हाला,
यह क्षणिक चल रहा राग-रंग।
—लहर, अशोक की चिंता, पृ० ४७

३. लहर, अशोक की चिन्ता, पृ० ४८

४. कामायनी, 'संघर्ष सर्ग,' पृ० १६०

५. लहर, अशोक की चिन्ता, पृ० ४६

६. लहर, प्रलय की छाया, पृ० ८०

इस दुःखी संसार की स्थिति क्षणभंगुर है—

'भुनती वसुधा, तपते नग,
दुखिया है सारा अग-जग,
कंटक मिलते हैं प्रति पग,
जलती सिकता का यह मग[1],'

'अशोक की चिंता' में कलिंग युद्ध के भीषण रक्तपात को देख कर अशोक के मन में भीषण परिवर्तन हो जाता है। वह इस संसार में जीवन की निस्सारता का अनुभव करने लगता है[2]। इसी प्रकार स्कन्दगुप्त इस क्षणिक संसार से विराग की ओर उन्मुख होता है। वह अधिकार सुख को मादक और सारहीन समझता है[3]। वह जीवन के संकटमय काल में निर्माण, योगियों की समाधि और पागलों की सम्पूर्ण विस्मृति की कामना करता है[4]। प्रसाद इस क्षणिक संसार को दो दिन का सपना बतलाते हुए वैराग्य धारण करने को उचित मानते हैं। इस अवस्था में लोभ छोड़कर उदार बनना और ईश्वर को याद करना चाहिये[5]।

करुणावाद

करुणावाद का मूल सिद्धान्त बुद्ध के उपदेशों में उपलब्ध है। बुद्ध, जीवन को दुःखमय मानते हैं। दुःखमय जीवन में मानव के प्रति असीम प्रेम की भावना को 'करुणा' कहा है। मानव को निर्वाण में ही शक्ति मिलती है। यह दुःख की निवृत्ति ही बौद्धमत का निर्वाण है[6]।

प्रसाद बौद्ध दर्शन के करुणावाद से प्रभावित हैं। उनकी कृतियों में करुणा मुखर हो उठी है। वे दीन-दुःखियों तथा भूले-भटकों के साथ सहानुभूति रखते हुए उनकी सेवा करने की बात करते हैं[7] तथा मानव की सृष्टि करुणा के लिये बतलाते हुए उसकी महत्ता को प्रतिपादित करते हैं। करुणा प्राणीमात्र पर समदृष्टि रखती है।

'गोधूली के राग-पटल में स्नेहांचल फहराती है।
स्निग्ध उषा के शुभ्र गगन में हास—विलास दिखाती है।

---

१. लहर, अशोक की चिन्ता, पृ० ५०
२. वही, पृ० ४६
३. वही, स्कन्दगुप्त, पृ० ६
४. वही, पृ० १२३
५. अजातशत्रु पृ० ३६
६. डा० रामानन्द तिवारी, भारतीय दर्शन, पृ० १३५-१३७
७. झरना, तुम, पृ० ५१

मुग्ध मधुर बालक के मुख पर चन्द्रकान्ति बरसाती है।
निर्निमेष ताराओं से वह ओस-बूंद भर लाती है॥
निष्ठुर आदि सृष्टि पशुओं की विजित हुई इस करुणा से।
मानव का महत्व जगती पर फैला अरुणा करुणा से[1]।'

करुणा द्वारा ही प्राणीमात्र सुखी रह सकता है। उसके अभाव में दुःख के बादल छाये रहते हैं तथा संसार पीड़ित दिखाई देता है[2]।

प्रसाद ने करुणा को अपनी कृतियों में जीवन-दर्शन के रूप में ग्रहण किया है। वे इस दर्शन के अन्तर्गत पुरुष पात्रों में प्रमुख रूप से प्रेमानन्द, दिवाकर मिश्र, और गौतम में तथा नारी पात्रों में चन्द्रलेखा मल्लिका, राज्यश्री, जहांनारा, ममता और श्रद्धा को प्रधानता देते हैं। 'विशाख' में प्रेमानन्द उस व्यक्ति को जिसका घोष करुणा का हो, जो विश्व-वेदना का सुख से आवाह्न करता हो, मोह त्याग कर प्रेम का सम्मान करता हो, जो किसी का द्वेषी नहीं हो, चाहे वह नर हो या किन्नर, निर्बल हो या बलवान, उसे भगवान मानकर उसका गुणगान करना चाहता है[3]। गौतम और दिवाकर मित्र अपने उपदेशों द्वारा करुणा का प्रसार करते हैं। चन्द्रलेखा अपनी करुणा द्वारा नरदेव की नृशंसता का अन्त करती है। इसी प्रकार मल्लिका अजातशत्रु, प्रसेनजित् और विरुद्धक की नृशंसता का अन्त करती है। 'स्कन्दगुप्त' की देवकी ज्वाला की आंधी को शीतल होने, विपदा को पास न आने के लिये दया और करुणा की आकांक्षा करती है[4]। 'कामायनी' की श्रद्धा करुणा की मूर्ति है। वह इड़ा को, जिसने रूप सौन्दर्य से मनु को मोहित करके, उसका सुहाग छीना था, को दीन स्थिति में देख कर उसके दुःखों की समाप्ति के लिये अपने प्रिय पुत्र को दे देती है[5]।

प्रसाद ने, इस पीड़ित संसार में मानव के शुद्ध मानस पर पवित्र अक्षरों से बाधा और बंधनों के भेद को तोड़कर, स्वार्थ त्याग कर, द्वन्द्व छोड़ कर प्रार्थना और भक्ति के समय दुखियों पर दया करने में अग्रसर होने का आदेश लिखा है[6]। प्रसाद इस दुःखी पृथ्वी को शीतल कर, तृष्णा को दूर कर, करुणा सरोवर में स्नान करके अपना कीच घोलने की बात करते हुए[7] करुणा-कादम्बिनी द्वारा संसार का उद्धार करना चाहते हैं—

---

१. अजातशत्रु पृ० ३०
२. लहर, अशोक की चिन्ता, पृ० ५०
३. विशाख, पृ० ६३
४. स्कन्दगुप्त, पृ० ६७-६८
५. कामायनी, पृ० २४२
६. झरना, आदेश, पृ० ६४
७. राज्यश्री, पृ० ५५

'करुण-कादम्बिनी बरसे ।
दु:ख से जली हुई यह धरणी प्रमुदित हो सरसे ।
प्रेम-प्रचार रहे जगती तल दया-दान बरसे ।
मिटे कलह शुभ शांति प्रकट हो अचर और चर से[1] ।'

इस प्रकार प्रसाद मानव समाज में सहानुभूति, स्नेह, विश्व-प्रेम और कर्त्तव्य परायणता का उपदेश देते हुए करुणा की प्रधानता को व्यक्त करते हैं । वे सहानुभूति द्वारा ही भूमंडल पर करुणा, स्नेह और क्षमा का शासन फैलाना चाहते हैं[2] । उनका यह आदेश है—'विश्व के कल्याण में अग्रसर हो । असंख्य दु:खी जीवों को हमारी सेवा की आवश्यकता है । इस दु:ख-समुद्र में कूद पड़ो । यदि एक भी रोते हुए हृदय को तुमने हँसा दिया तो सहस्रों स्वर्ग तुम्हारे अन्तर में विकसित होंगे । फिर तुमको पर दु:ख कातरता में ही आनन्द मिलेगा । विश्व-मैत्री हो जायेगी—विश्वभर अपना कुटुम्व दिखाई पड़ेगा । उठो, असंख्य आहें तुम्हारे उद्योग से अट्टहास में परिणित हो सकती हैं[3] ।' प्रसाद इस दर्शन में मानव की पाश्व-वृत्तियों पर करुणा की विजय का दिग्दर्शन कराते हैं ।

कर्मवाद

भारतीय दार्शनिक धाराओं में कर्मवाद की मीमांसा प्रमुखता से हुई है । बुद्ध, जैन, हिन्दू—सभी दर्शन कर्मवाद को महत्त्व देते हैं । गीता का कर्मवाद अनासक्ति को प्रेरित करता है । कर्म करते समय आसक्ति का परित्याग करने में किसी प्रकार का डर नहीं । कर्म और फल के सम्बन्ध में चार सिद्धान्त प्रमुख हैं—आलस्यवश फल की इच्छा न रखते हुए उसके लिये कर्म करना, फल की इच्छा रखते हुए तदुचित कर्मों का निष्पादन करना । फलों की अनावश्यक इच्छा न रखना तथा फलों की आकांक्षा न रखते हुए कर्म करना । यही गीता के कर्मयोग का सिद्धान्त कहलाता है[4] ।

प्रसाद ने अपनी रचनाओं में गीता के कर्मवाद का आश्रय लेते हुए कर्म को त्याग और सेवा की वस्तु माना है । इसीलिये वे 'स्कन्दगुप्त' में कमला के शब्दों में यह मत व्यक्त करवाते हैं—'जो अपने कर्मों को ईश्वर का कर्म समझ कर करता है, वही ईश्वर का अवतार है[5] ।'

कर्म का स्वरूप हित चिंतन है । कर्म उपयोग की वस्तु न होकर त्याग और सेवा की वस्तु है । 'वीर-बालक' कविता में प्रसाद ने सिक्खों के गुरु गोविन्दसिंह के

---

१. राज्यश्री, पृ० ७५
२. अजातशत्रु, पृ० १३२ ३. वही पृ० १३७
४. पं० बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, ८१-८४
५. स्कन्दगुप्त, पृ० १२५

दो पुत्रों—जोरावरसिंह और फतहसिंह को कर्मपथ पर अग्रसर होते हुए बतलाया है। दोनों पुत्रों ने मुस्लिस धर्म स्वीकार न करते हुए भारत के गौरव को ऊंचा किया तथा स्वयं को मिट्टी की दीवार में चुनवाना स्वीकार कर लिया। अंतिम समय में भी वे अपने प्रण से विचलित नहीं हुए[१]। 'श्रीकृष्ण जयन्ती' में श्रीकृष्ण को शान्ति का दूत बतलाते हुए उन्हें इस संसार में आकर इसे आनन्दमय करने की तथा कर्म-मार्ग दिखलाने की बात कही है—

'वही कृष्ण हैं आते अपनी कान्ति से
परमोज्ज्वल कर देंगे अपनी कान्ति से
अन्धकारमय भव को। परमानन्द मय
कर्म-मार्ग दिखलावेंगे सब जीव को[२]'

'कुरुक्षेत्र' आख्यानक में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्म करने का उपदेश दिया—

'कर्म जो निर्दिष्ट है, हो धीर, करना चाहिये
पर न फल पर कर्म के कुछ ध्यान रखना चाहिये।
उठ खड़े हो, अग्रसर हो, कर्मपथ से मत टरो
क्षत्रियोचित धर्म जो है युद्ध निर्भय हो करो[३]।''

इसी प्रकार प्रसाद ने अपनी कृतियों में आये हुए महात्माओं में से गौतम, प्रख्यातकीर्ति, दिवाकर मित्र, और प्रेमानन्द से मानव की कुत्सित प्रवृतियों को समाप्त करके उन्हें सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करने के उपदेश दिलवाए हैं।

'कंकाल' में प्रसाद कर्मवाद के सैद्धांतिक पक्ष का उल्लेख करते हुए कहते हैं—"आर्यों का कर्मवाद संसार के लिए विलक्षण कल्याणदायक है। ईश्वर के प्रति विश्वास रखते हुए भी उसे स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाया है[४]।' आगे वे इसी कर्मवाद पर विश्वास करते हुए अपने अपने कर्मफल को भोगने की बात कहते हैं।[५]

परमाणुवाद

न्याय व वैशेषिक दर्शन के अनुसार इस संसार में जितनी वस्तुएं दृष्टिगोचर होती हैं वे सभी भिन्न-भिन्न अवयवों की बनी हुई हैं। इन अवयवों के जितने टुकड़े चाहें कर सकते हैं, परन्तु किसी वस्तु के टुकड़े करने की भी एक निश्चित सीमा होती

---

१. कानन कुसुम, वन मिलन, पृ० ११८-१२२
२. वही, श्रीकृष्ण जयन्ती, पृ० १२५
३. वही, कुरुक्षेत्र, पृ० ११६
४. कंकाल, पृ० ४३
५. वही, पृ० १३१

है, जहाँ उस वस्तु के और टुकड़े नहीं हो सकते। इस प्रकार किसी वस्तु के सूक्ष्मता के कारण अन्य अवयव या टुकड़े न हो सकें, परमाणु कहलाता है। पृथ्वी, जल, तेज और वायु परमाणु रूप हैं। पृथ्वी के परमाणुओं का गुण गंध है। जल के परमाणुओं का शीत स्पर्श, तेज के परमाणुओं का ऊष्ण स्पर्श है। वायु रूपहीन और स्पर्शहीन होती है। शरीर में उसी का रूप है। दो परमाणुओं के संयोग से द्वियणुक और तीन अणुओं के संयोग से त्र्यणुक बनता है। प्रलयकालीन अवस्था में पदार्थ परमाणु रूप धारण कर लेते हैं[1]।

प्रसाद भी उक्त दर्शन से प्रभावित हैं। वे प्रलयकालीन अवस्था के उपरांत सृष्टि के विकास में इन परमाणुओं का सहयोग बतलाते हैं, जहाँ वह मूल शक्ति जड़ अवस्था से चेतन की ओर आकर्षित होती है। ऐसी स्थिति में समस्त परमाणु सृष्टि-रचना में सक्रिय हो गए हैं—

'वह मूल शक्ति उठ खड़ी हुई
अपने आलस का त्याग किए,
परमाणु बाल सब दौड़ पड़े
जिसका सुन्दर अनुराग लिए[2]।'

प्रसाद सृष्टि के विकास में विद्युत्कणों का आकर्षण और मिलन बतलाते हैं, जो सृष्टि के विकास का मूल रहस्य है—

'कुंकुम का चूर्ण उड़ाते-से
मिलने को गले ललकते से,
अन्तरिक्ष के मधु उत्सव के
विद्युतकण मिले झलकते-से[3]।

विद्युत्कणों का आकर्षण अन्ततोगत्वा मधुर मिलन में परिणित हो जाता है। विनाश के सूचक अणु-परमाणु भी संश्लिष्ट हो जाते हैं। इस संश्लेषण के परिणाम-स्वरूप सृष्टि पुनः अपने अस्तित्व में आ जाती है। सृष्टि के निर्माण में जड़ और चेतन समान रूप से कार्य करते हुए दिखाई देने लगते हैं[4]। इस प्रकार प्रत्येक परमाणु का मिलन ही सृष्टि के विकास की अवस्था थी। जड़ और चेतन के मूल में एक शक्ति है 'जो बाह्य जगत् में कोकिल की काकली, फूलों की हंसी, सरिता के कलकल, शिशुओं

---

१. डा० देवराज तथा डा० रामानन्द तिवारी, भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास हिन्दुस्तानी एकेडेमी, संस्क० १९५०, पृ० २६०-६१
२. कामायती, काम सर्ग, पृ० ७२
३. वही, कामसर्ग, पृ० ७३
४. कामायनी, काम सर्ग, पृ० ७३-७४

के कौलाहल, लता के फूलों तथा धरणि की गंध आदि तरल रूपों में अपनी अभिव्यक्ति करती है और अन्त में अन्तर्लीन होकर 'अचल एकान्त' में परिवर्तित हो जाती है। इसी 'अचल एकांत' को जब वह छोड़ती है तभी उसके परमाणुओं से नानात्मीय सृष्टि हो जाती है[1]।'

निष्कर्ष

संक्षेप में यह कहना असमीचीन न होगा कि प्रसाद साहित्य में इच्छा, ज्ञान और क्रिया, दुःख-सुख, नर-नारी अधिकारी-अधिकृत और विश्व-पीड़ितों की समरसता का समन्वय दृष्टिगोचर होता है, जो प्रत्यभिज्ञा दर्शन का आधार सूत्र है। इसके अतिरिक्त प्रसाद ने नियतिवाद में नियति को भाग्यलिपि न कहकर नियन्त्रणकारी शक्ति के रूप में देखा है, जो कर्मचक्र का संचालन करती हुई परिलक्षित होती है। आभासवाद में उन्होंने उस महाचित् सत्ता का स्वरूप-निर्देश दिया है, जो विश्व के जड़ और चेतन का आभासरूप है। स्वातंत्र्यवाद में ईश्वर की उस चित् सत्ता के स्वातन्त्र्य को बतलाया गया है, जो स्वतंत्र्य रूप में विश्व का उन्मोहन करती दिखाई देती है। प्रसाद का दुःखवाद बौद्ध दर्शन के चार आर्य सत्यों पर अवलम्बित है। क्षणिकवाद का सिद्धांत बौद्धों के प्रतीत्यसमुत्पाद के अन्तर्गत आता है, जहां इस संसार को क्षणभंगुर निर्दिष्ट किया गया है। प्रसाद दुःख का निवारण करुणा में मानते हैं जिसका आधार है बौद्धों के उपदेश तथा उनका निर्वाण मार्ग। प्रसाद कर्म को त्याग और सेवा की वस्तु मानते हैं। परमाणुवाद में वे सृष्टि का निर्माण परमाणुओं में निहित होना स्वीकारते हैं। इस स्थिर रहस्य को वे स्वीकार करते हैं कि ये परमाणु एक-दूसरे से मिलने के लिए सदैव आतुर रहते हैं।

---

१. डा० फतहसिंह, कामायनी सौन्दर्य, पृ० २४०-२४१

अध्याय ८

उपसंहार

विगत पृष्ठों में किए गए विवेचन से थह स्पप्ट हो जाता है कि प्रसाद छाया-
वादी युग के सर्वश्रेष्ठ कवि रहे हैं। उनकी प्रतिभा काव्य के क्षेत्र में ही अपना प्रभाव
नहीं दिखलाती अपितु काव्येत्तर-साहित्य के अन्य अंगों को भी अपना प्रकाश देकर
दीप्ति प्रदान करती है। प्रसाद ने अपने साहित्य निर्माण के लिए जिस विषय-वस्तु का
चयन किया वह प्रायः चिरकाल से भारतीय जनता और भारतीय ऐतिहासिकों के लिए
प्रिय विषय रहा है। इसी कारण उसमें भारतीय संस्कृति का परम उज्ज्वल स्वरूप
दिखाई पड़ता है। विद्वानों ने भारतीय संस्कृति में सत्य, अहिंसा, धैर्य, क्षमा, निर्वैरता
अनासक्ति, इन्द्रियनिग्रह, शुचिता, निष्कपटता, त्याग, उदारता, लोकसंग्रह आदि जिन
सात्विक तत्वों का समादर किया है उन सबका समादर प्रसाद की विभिन्न साहित्य
कृतियों में स्पष्टतया दीख पड़ता है। इसी कारण अन्य भाषाओं में उनकी कई कृतियों
का अनुवाद भी हो चुका है। इससे प्रसाद की लोकप्रियता स्वयंसिद्ध है।

प्रसाद की गणना उन साहित्यकारों में है जिनकी काव्य-प्रतिभा निरन्तर प्रौढ़
और प्रदीप्त होती रही। क्रमशः उनके विचारों में प्रांजलता, भावों में मोहकता और
कल्पनाओं में गहराई आती गई। उनकी सफलता का रहस्य इसी में छिपा हुआ है।

काव्य के क्षेत्र में प्रसाद ने भारतीय संस्कृति से विषय ग्रहण किए। उन
विषयों को ग्रहण करते हुए कवि की कल्पना और इच्छा ने स्वतंत्र रूप से परिवर्तन
किए। 'प्रेम-पथिक' की स्वतन्त्र कल्पना से प्रसाद ने अपने जीवन-दर्शन की स्थापना
की[1]। इसके साथ-साथ वे प्रबन्धात्मक शैली की ओर उन्मुख हुए। 'प्रेम-पथिक' में वे

---

१. 'जीवन-दर्शन की दृष्टि से यह प्रसादजी की प्रथम प्रौढ़ रचना है। कवि का उपनिषद्, शैव ग्रन्थों आदि का अध्ययन इसमें आभासित होता है।'

—डा० प्रेमशंकर, प्रसाद का काव्य, पृ० १४१

सरल और सीधी-सादी विषयवस्तु और भाषा को लेकर चले हैं। यहां उन्होंने भारतीय प्रेम की उज्ज्वलता को प्रस्तुत किया है[१] और आदर्श को स्थापित करने की चेष्टा की है। इस रचना के माध्यम से प्रसाद के भावी साहित्यकार के महान् रूप को देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति के उदात्त तत्वों के प्रति उनके आदर्शोन्मुख प्रेम का मोह निरन्तर तीव्रतर दिखाई पड़ता है। उनकी परवर्ती कृतियां उत्तरोत्तर भारतीय संस्कृति के स्वर को वेग और तीव्रता प्रदान करती चली गई हैं। प्रसाद की 'कामायनी' तक पहुंचते-पहुंचते प्रसाद जी की साहित्यिक मान्यताओं में जो प्रखरता आई उसके परिणाम स्वरूप भाषा की प्रौढ़ता और अभिव्यक्ति की सुघड़ता ने 'कामायनी' को सर्वोत्कृष्ट काव्य की संज्ञा दिला दी है। कहने का तात्पर्य यह है कि अनुभूति और अभिव्यक्ति का सम्मिलित स्वर कामायनी के पाठकों को आसानी से सुनाई पड़ सकता है।

न केवल पथ के क्षेत्र में ही अपितु गद्य के क्षेत्र में भी प्रसाद की काव्य-प्रतिभा प्रौढ़ता की ओर उन्मुख रही है। प्राचीन भारतीय सस्कृति के परिपेक्ष में लिखे जाने पर भी अभिव्यंजना की वह प्रौढ़ता इनके प्रारम्भिक नाटकों में नहीं आ पाई है जो परवर्ती नाट्य-साहित्य में सहज प्राप्य है। 'अजातशत्रु', 'स्कन्दगुप्त' 'चन्द्रगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' ऐसे ही नाटक हैं जो प्रौढ़ता के चरम शिखर पर पहुंचे हुए हैं। इन नाटकों में प्रसाद की नाटकीय प्रतिभा का उज्ज्वलतम रूप प्रकट हुआ है। कथा-साहित्य में भी प्रसाद की कला निरन्तर प्रौढ़ता की ओर उन्मुख होती रही है। 'छाया' की कहानियां प्रारम्भिक प्रयास के रूप में साधारण कोटि की हैं, किन्तु 'आकाशदीप' और 'इन्द्रजाल' की कहानीयों में कला का निखार स्पष्ट है। उनमें सांस्कृतिक दृष्टिकोण अधिक प्रौढ़ और स्पष्ट है। इनमें सामाजिक हलचल, राजनीतिक संघर्ष और मानसिक उद्वेलन के होते हुए भी, भारतीय संस्कृति के स्वरूप की स्पष्ट और सहज झांकी देखते ही बनती है।

प्रसाद की सांस्कृतिक देन का अधिकांश उनके उस साहित्य में निहित है जो इतिहास पर आधारित है। प्रसाद के आविर्भाव के समय भारत विदेशियों से आक्रान्त था और उनके प्रभाव से यहां का जनमानस भी विदेशी संस्कृति के व्यामोह से उत्पी-

---

१. प्रेम पवित्र पदार्थ, न इसमें कहीं कपट की छाया हो,
इसका परिमित रूप नहीं जो शक्ति मात्र में वना रहे
क्योंकि यही प्रभु का स्वरूप है जहां कि सबको समता है।
इस पथ का उद्देश्य वहीं है श्रांत-भवन में टिक रहना
किन्तु पहुंचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं—

—प्रेमपथिक, पृ० २२

ड़ित था। विदेशी संस्कृति अपने मोहक छद्म में भारतीय संस्कृति को निरन्तर दबाती चली जा रही थी। परिणामस्वरूप भारतवासियों में हीनता की भावना मूलबद्ध होती जा रही थी। भारतीय जनमानस प्राचीन भारतीय संस्कृति की महत्ता को दीर्घकालीन दासता के कारण लगभग भुला चुका था। उस महत्ता को प्रसाद ने अपने इतिहास परक साहित्य का सृजन करके पुनर्जीवित किया। यह प्रसाद की सबसे बड़ी साँस्कृतिक देन थी। प्रसाद ने भारतीय इतिहास के अध्ययन को साहित्य के माध्यम से दो रूपों में आगे बढ़ाया। एक तो उन्होंने इतिहास के उस अन्धयुग को लिया जिसके संबंध में इतिहासकार प्रायः मौन दीखते हैं और जिसे हम प्रागैतिहासिक काल कह सकते हैं। इस काल में भारतीय संस्कृति कितनी उच्चतम पीठिका पर आधारित थी इसका स्पष्ट संकेत प्रसाद-साहित्य में मिलता है। साथ ही इसमें भारतीय संस्कृति के विकास का विवरण भी उपलब्ध होता है, दूसरे उन्होंने भारतीय आदर्शों के अनुसार रामायणकाल से अंग्रेजकाल तक की ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल रूप प्रस्तुत करने की चेष्टा की। उन्होंने विभिन्न कालीन ऐतिहासिक घटनाओं को ग्रहण करते हुए उनमें साँस्कृतिक आधार पर एकता लाने का प्रयास किया।

इसके अतिरिक्त उन्होंने प्राचीन भारतीय इतिहास की तत्कालीन परिस्थितियों में आधुनिक भारत की अवस्था के कारणों की खोज की और हमें उनसे मुक्त होने के लिए प्रेरित किया। इतिहास के माध्यम से प्रसाद ने तत्कालीन सामाजिक-व्यवस्था को ही संगठित नहीं किया अपितु अनेक ऐसी घटनाओं को प्रकाश में लाने का भी प्रयत्न किया, जिन पर इतिहासकारों ने मौन साध रखा था। इन सब के द्वारा उन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरव को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया और भारतीयों के मन में समाई हुई हीन भावना का मूलोच्छेदन करके उन्हें गौरव पूर्ण जीवन व्यतीत करने को प्रोत्साहित किया तथा उनमें चेतना, स्फूर्ति, प्राणवता और दर्प की ज्वाला को अनुप्राणित किया।

इतिहासपरक घटनाओं के माध्यम से प्रसाद ने तत्कालीन सामाजिक-व्यवस्था का जो सजीव चित्र प्रस्तुत किया, वह वस्तुतः अमूल्य है। प्राचीन सामाजिक व्यवस्था का उल्लेख करके वर्तमान समाज की जर्जरता और विषमता को पाठकों के सामने रखना ही प्रसाद का उद्देश्य था। इतना ही नहीं वर्तमान समाज में जो सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से बिखराव आ गया था उसको दूर कर, उन्होंने नये सांस्कृतिक ढाचे में समाज को ढाल कर उसे उद्‌बोधन के पथ पर अग्रसर किया। सामाजिक व्यवस्था में वर्ण-व्यवस्था, आश्रम-व्यवस्था, विवाह, नारी-समाज, आजीविका के साधन, अशन, वसन, आवास और कला को पुनर्जीवित किया, पर इन सब में नारी

की ओर उनकी दृष्टि अधिक रही । युगों से दलित, और पीड़ित नारी को नया रूप प्रदान किया । अतः प्रसाद के साहित्य में सामाजिक जीवन का उन्मेष तो हुआ ही, नारी को भी, जो भोग्या थी श्रद्धा की भूमिका पर प्रस्तुत कर दिया ।

प्रसाद साहित्य की राजनीतिक पृष्ठभूमि में मुख्यतः भारत में अंग्रेजी शासन के दूषण ही दृष्टिगत होते हैं, परन्तु उन्होंने अपनी राजनीतिक मान्यताओं का प्रतिपादन प्राचीन भारतीय संस्कृति की आधार-शिला पर किया है । श्रुति, स्मृति और पुराणों में राजनीति के जो प्रमुख स्तंभ निर्दिष्ट किये गये हैं, प्रसाद-साहित्य की राजनीति का भवन उन्हीं पर आधारित है । प्रसाद इस दिशा में सर्वत्र गणतन्त्र में विश्वास करते हुए दीख पड़ते हैं । इसीलिए उनके साहित्य में राजा और प्रजा के संबंध को निर्धारित करने में प्रजा का स्थान महत्वपूर्ण बतलाया गया है । अत्याचारी शासक अपनी मन-मानी राह पर नहीं चल सकते थे, फिर भी यदि चलते थे तो उन्हें प्रजा द्वारा दण्डित किया जाता था । तत्कालीन समाज की यह न्याय-व्यवस्था प्रजा के महत्व को ही प्रति-पादित करती है । इसी प्रकार राज व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए न्याय, दण्ड और सैन्य व्यवस्था, सन्धि, दौत्यकर्म आदि राजनीतिक प्रवृत्तियों का उल्लेख उनकी कृतियों में हुआ है । इस प्रकार प्रसाद ने राजनीति के अन्तर्गत उन तत्वों का विश्लेषण और विवेचन किया है, जिससे भारतीय जनता के हृदय में राष्ट्रीयता की भावना पनप सके और वे अत्याचारी अंग्रेज शासकों की दासता का खुल कर विरोध कर सकें । इस प्रकार प्रसाद का यह उद्देश्य प्राचीन राजनीतिक पृष्ठभूमि के माध्यम से राजतन्त्र पर गणतन्त्र की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करना था ।

प्रसाद राजनीति के क्षेत्र में धर्म को घसीटना नहीं चाहते । उनका विचार था कि जब किसी धर्म-विशेष का संबंध राजनीति से हो जाता है तो फिर अन्य धर्मावल-म्बियों का शोषण और उत्पीड़न होने लगता है[1] । उनके साहित्य में स्थान-स्थान पर ऐसे संकेत मिलते हैं जहाँ उन्होंने राज्य को धर्म निरपेक्ष होना आवश्यक बतलाया है[2] । वे मानव की चतुर्दिक उन्नति को प्रश्रय देते हैं । कामायनी में उनकी आशावादी प्रकृति कार्य कर रही है—

विधाता की कल्याणी सृष्टि
सफल हो इस भूतल पर पूर्ण

१. 'तुमको चाहिए कि अशोक का आतंक एक बार फिर फैला दो; और यह आज्ञा प्रचारित कर दो कि जो मनुष्य जैनों का साथी होगा, वह अपराधी होगा, और जो एक जैन का सिर काट लावेगा, वह पुर-स्कृत किया जावेगा ।' (अशोक)

२. अजातशत्रु, पृ० ३०, १३०, जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ७७

पटे सागर, बिखरें ग्रह-पुंज
और ज्वालामुखियां हों चूर्ण ।
उन्हें चिनगारी सदृश सदर्प
कुचलती रहे खड़ी सानन्द,
आज से मानवता की कीर्ति,
अनिल, भू, जल में रहे न बंद ।

....

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय,
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय[1] ।'

इस संबंध में उनकी विचारधारा भारतीय संस्कृति पर आधारित है । जहां कहा गया है—'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' अर्थात् अपना धर्म चाहे कोई भी क्यों न हो उसके लिए मर मिटना भी अच्छा है, किन्तु व्यक्तिगत जीवन में धर्म का पालन करना आवश्यक है क्योंकि यह मनुष्य की वृत्तियों को उन्नत बनाता है और उसकी सात्विक विचारधारा को ऊर्ध्वमुखी बनाता है । इसी कारण प्रसाद प्राचीन धर्म की भूमिका पर आज के धर्म की प्रतिष्ठा करते हैं । धर्म के अन्तर्गत वे ब्राह्मण और बौद्धधर्म के तत्वों का निरूपण करते हैं । इस निरूपण में प्रसाद संकीर्णता से बहुत ऊँचे उठ गये हैं । जिन धार्मिक क्रिया-कलापों में उन्हें क्रूरता का आभास मिलता है, मानवता की हत्या होती दीख पड़ती है और सात्विक वृत्तियों का लोप होता दीख पड़ता है, वे इस प्रकार की वृत्तियों का पूरी शक्ति के साथ खण्डन करते हैं । इतना ही नहीं, अपनी श्रेष्ठता के हामी ब्राह्मण धर्म द्वारा किये गये नरबलि और पशुबलि जैसे कुकृत्यों को भी प्रसाद की सहानुभूति नहीं मिल सकी है—दूसरी ओर बौद्धों की कायरता और देश-द्रोही प्रवृत्ति की स्थान-स्थान पर भर्त्सना भी की गयी है । इसका यह तात्पर्य नहीं कि उन्होंने बौद्ध धर्म से कुछ लिया ही न हो, वे तो बौद्धों की इन धार्मिक-प्रवृतियों का उल्लेख करते हुए भी उनके दुःखवाद, क्षणिकवाद और करुणावाद के ऋण से मुक्त नहीं हैं । नैतिक आस्थाओं को भी प्रसाद ने भारतीय संस्कृति से संबद्ध करने की भरपूर चेष्टा की है । प्रसाद नीति के क्षेत्र में मर्यादावादी हैं । प्राचीन भारतीय संस्कृति सत्य, अहिंसा, परोपकार आदि जिन सद्गुणों का आचरण मनुष्य का प्रथम धर्म मानती हैं, प्रसाद ने उन पर अत्यन्त बल दिया है । पिता-पुत्र, भाई-बहिन, पति-पत्नी आदि का संबंध परस्पर क्या होना चाहिये, इस संबंध मे प्रसाद के विचार नवीन से आभा-

---

१. कामायनी, श्रद्धासर्ग, पृ० ५८-५९

सित होते हुए भी सांस्कृतिक महत्व रखते हैं। नवीन सामाजिक सुधारों को प्राचीन संस्कृति का आवरण पहना कर जनता के समक्ष उपस्थित करने में प्रसाद की सबसे बड़ी नैतिक देन है, जिसका अनुसरण परवर्ती साहित्यकारों ने भी किया है।

धर्म और नीति के साथ-साथ प्रसाद ने भारतीय संस्कृति के परिपार्श्व में अपने साहित्य में दर्शन का समावेश भी किया है। प्रसाद के प्रारम्भिक जीवन को देखने से विदित होता है कि वे शैवगामी थे। अतः उन पर शैवमत का प्रभाव अधिक मात्रा में परिलक्षित होता है। उन्होंने शैवमत के काश्मीरी प्रत्याभिज्ञा दर्शन को अपने साहित्य में स्थान दिया है। इस दर्शन के अन्..र्गत उन्होंने समरसतावाद, नियतिवाद, आभासवाद तथा स्वातन्त्र्यवाद को ग्रहण किया है तथा दूसरी ओर बौद्ध दर्शन से प्रभावित होकर उनके दुःखवाद, क्षणिकवाद और करुणावाद को अपनी साहित्यिक कृतियों में स्थान दिया है। हम दोनों दर्शनों के अतिरिक्त वे गीता के कर्मवाद तथा न्याय वैशेषिक के परमाणुवाद से भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहे हैं।

प्रसाद प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अन्तर्गत इच्छा, ज्ञान और क्रिया का समन्वय बतलाते हुए उसकी परिणिति आनन्दवाद में बतलाते हैं, जहाँ इच्छा, ज्ञान और क्रिया मिल जाते हैं और सर्वत्र आनन्द की प्राप्ति हो जाती है। नियतिवाद की सांस्कृतिक पीठिका ग्रहण करते हुए भी प्रसाद नियति के साथ कर्म को प्रधानता देते हैं। वे अकर्मण्यवादी नहीं बनना चाहते। वे यह मानते हैं कि कर्मयोग द्वारा ही सांसारिक विषमताओं से मुक्ति मिल सकती है। आभासवाद में वे सर्वत्र शिव की अभेद सत्ता को प्राथमिकता प्रदान करते हैं। स्वातन्त्र्यवाद में ईश्वर की चित् सत्ता को स्वतन्त्र बतलाते हैं, जो विश्व की सिद्धि के लिए स्वच्छन्द होकर अपना कार्य करती है। संसार दुःखमय है और मानव जीवन उसी का अनुवर्तन है। ऐसी ही कुछ बातें कहकर प्रसाद क्षणिकवादी दार्शनिक की पंक्ति में आ खड़े होते हैं। विश्वप्रेम, विश्वबन्धुत्व और समानता की भावनाएँ उन्हें बौद्ध-दर्शन से जोड़ देती हैं। इसके अतिरिक्त वे गीता के कर्मवाद को अपनाते हुए उसे सेवा और त्याग की वस्तु स्वीकारते हैं और न्याय वैशेषिकों के परमाणुवाद का आधार पाकर सृष्टि-निर्माण का समाधान प्रस्तुत कर देते हैं।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि प्रसाद-साहित्य की पीठिका में भारतीय संस्कृति का प्रमुख योग है। प्रसाद-साहित्य में जो तत्व सांस्कृतिक हैं, वे भारतीय हैं। अभारतीय तत्वों का समावेश प्रसाद ने अपने साहित्य में इस प्रकार से किया है कि वे अधिक स्पष्ट होकर पाठक के सामने नहीं आ पाते। उन तत्वों का कुछ साहित्यिक मूल्य अवश्य है किन्तु युग-साहित्य के प्रवाह में उनकी

भिन्नता की प्रतीति नहीं हो पाती । प्रसाद साहित्य को पढ़ते समय एक बात के सम्बन्ध में अधिक सतर्क रहना चाहिए कि प्रसाद, भारतीय जीवन के ऐतिहासिक मूल्यों के प्रतिष्ठाता तो अवश्य हैं, किन्तु साथ ही उसकी रूढ़िगत विकृतियों के कुशल आलोचक भी हैं । भारतीय संस्कृति ने जो कुछ आत्मसात् किया है वही प्रसाद साहित्य की सम्पत्ति है, किन्तु भारतीय संस्कृति के अपच रूप को वे किसी आग्रह की दृष्टि से न तो देखना पसंद करते हैं और न उसे चलने देने के लिये ढील ही देते हैं । उन्होंने जो कुछ अपने साहित्य के द्वार से हमें दिखाया है वह भारतीय संस्कृति का दीप्त, उदार स्वरूप है । वे धर्म के उस इतिहास के समर्थक नहीं हैं जिसने भारत को छिन्न-भिन्न किया है वरन् इतिहास से उस धर्म की खोज करते हैं जिसमें सहिष्णुता और उदारता का बल और मानवता की शक्ति है किन्तु इससे वे स्मृति-धर्म की उपेक्षा नहीं कर देते हैं । उनका स्मृति-धर्म उन रूढ़ियों या अन्धमान्यताओं से आपीड़ित नहीं है जो भारतीय समाज के वहन पर कलंक का टीका बन गई है वरन् उन गुणों से विभूषित है जो भारतीय समाज की विशेषता को प्रत्यक्ष करके मानवता को उज्ज्वल करते हैं । 'चन्द्रगुप्त मौर्य' में जिस ब्राह्मण धर्म की व्याख्या या प्रशस्ति की गई है वह स्मृति धर्म से अभिन्न होकर भारतीय धर्म के आधुनिक आलोचकों को स्तंभित करने में समर्थ हैं ।

अतएव प्रसाद का साहित्य संस्कृति की उस पीठिका पर प्रतिष्ठित है जो सामान्यत: भारतीय है। प्रसाद भारतीय संस्कृति के प्रशंसक और समर्थक हैं। प्रशंसक तो मैथिलीशरणजी भी हैं, किन्तु मैथिलीशरणजी का प्रचार कार्य पाठक के सामने उतर आता है और प्रसाद की संस्कृति पाठक को प्रभावित करके उसके हृदय पर शासन जमाती है । गुप्तजी आधुनिकता के छींटे देते हुए भी पौराणिक सांस्कृतिक धारा के प्रवाह को ही प्रेरित करते दीखते हैं, किन्तु प्रसाद उस संस्कृति के उन्नायक हैं जो भारत की शाश्वत सम्पत्ति ही नहीं मानव सम्पत्ति है । इस विशेषता के कारण ही प्रसाद का साहित्य साहित्य-पद्धति पर अपना निर्मल पंदाक अर्पित कर रहा है ।

परिशिष्ट १

प्रसाद साहित्य में नवधा-भक्ति के कुछ रूप

कीर्तन :

(१) जयति जयति करुणा सिन्धु
जय दीनजन के बन्धु— —राज्यश्री, पृष्ठ ६३

(२) "अलख अरूप"
तेरा नाम, सब सुख धाम
जीवन ज्योति स्वरूप— —राज्यश्री, पृष्ठ ६८

(३) दाता सुमरति दीजिये —अजातशत्रु, पृष्ठ ८६

(४) विमल इन्दु की विशाल किरणें
प्रकाश तेरा बता रही हैं
अनादि तेरी अनन्त माया
जगत् को लीला दिखा रही हैं —कानन कुसुम, प्रभो, पृ० १

(५) जो सर्व व्यापक तऊ सबके परे है
जो सूक्ष्म है पर तऊ वसुधा धरे हैं ।—चित्राधार, पृ० १५५

स्मरण :

(१) आओ; हिये में अहो प्राण प्यारे —अजातशत्रु, पृष्ठ ४५

(२) बजा दो वेणु मन मोहन ! बजा दो ।
हमारे सुप्त जीवन को जगा दो । —स्कन्दगुप्त, पृष्ठ १२२

(३) त्रस्त पथिक, देखो करुणा विश्वेश की
खड़ी दिलाती तुन्हें याद हृदयेश की —कानन कुसुम, पृ० १४

(४) मूरति तिहारी उर अन्तर खड़ी है तुम्हें,
देखबे के हेतु ताहि मुख दरसाओ तो ।।
—चित्राधार, मकरंद विन्दु, पृष्ठ १७७

पाद-सेवन :

हे पावन ! पतितन के सरबस ! दीन जनन के मीत ।
सब बिसारि दुर्गुन निज जन को, देहु चरण में प्रीत ।।
—चित्राधार, मकरंद विंदु, पृष्ठ १८५

अर्चन :

देखिए यह विश्व-व्याप्त महा मनोहर मूर्ति ।
चितरंजन करति आनन्द भरति है धरि स्फूर्ति ।।
देव बालागन सबै पूजन करत सुख पाई ।
तारकागन कुसुम माला देत हैं पहिराई ।।
—चित्राधार, शारदीय महापूजन, पृ. १५६

वन्दन :

(१) हे हे करुणा सिंधु, नियन्ता विश्व के,
हे प्रतिपालक तृण, वीरुध के, सर्प के,
हाय, प्रभो ! क्या हम इस तरी सृष्टि के,
नहीं, दिखाता जो मुझ पर करुणा नहीं ।
—करुणालय, पृ. २५

(२) जयति प्रेम निधि ! जिसकी करुणा नौका पार लगती है ।
—कानन कुसुम, पृ० ३

(३) बना लो हृदय-बीच निज धाम
करो हम को प्रभु पूरन-काम —कानन कुसुम, पृ० ५८

(४) हम हों सुमन की सेज पर या कंटकों की आड़ में
पर प्राणधन ! तुम छिपे रहना, इस हृदय की आड़ में ।
—कानन-कुसुम, पृ० ६३

दास्यभाव: हों पातकी तदपि हों प्रभु, दास तेरो ।
हों दास नाथ तब है दिय आस तेरो ।।
है आस चित यहं होय निवास तेरो ।
होवे निवास महं देव ! प्रकाश तेरो ।।

चित्राधार, विभो, पृ० १५७

परिशिष्ट २

(क) प्रसाद के मूल ग्रन्थ

कविता—

चित्राधार, करुणालय, कानन-कुसुम, प्रेम पथिक, महाराणा का महत्व, आंसू, झरना, लहर, कामायनी ।

नाटक—

राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, कामना, स्कन्द गुप्त, एक घूँट, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी ।

कहानी-संग्रह—

छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आंधी, इन्द्रजाल ।

उपन्यास—

कंकाल, तितली, इरावती ।

विविध—

काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध ।

(क) सहायक ग्रन्थ

१. हिन्दी ग्रन्थ

अशोक के फूल	डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी
अशोक	प्रो. भगवती प्रसाद पांथरी
अशोक (हिन्दी अनु०)	डी. आर. भंडारकर
आधुनिक साहित्य	आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी
आधुनिक हिन्दी नाटक	डा. नगेन्द्र
आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास	डा. श्रीकृष्ण लाल

आर्य संस्कृति के मूलाधार	पंडित बलदेव उपाध्याय
औरंगजेब	यदुनाथ सरकार
करुणा	राखल दास
कर्म भूमि	प्रेम चंद
कवि प्रसाद	डाक्टर भोलानाथ तिवारी
कवि प्रसाद की काव्य साधना	रामनाथ 'सुमन'
कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन	डाक्टर द्वारिका प्रसाद
कामायनी दर्शन	डाक्टर विजयेन्द्र स्नातक
कामायनी-सौंदर्य	डाक्टर फतहसिंह
काशी का इतिहास	मोती चन्द
काँग्रेस का इतिहास (प्र० खं०, अनु०)	हरिभाऊ उपाध्याय
किसान	मैथिलीशरण गुप्त
गुप्त साम्राज्य का इतिहास	डाक्टर वासुदेव शरण उपाध्याय
चन्द हसीनों के खतूत	पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'
चाणक्य	डाक्टर सत्यकेतु विद्यालंकार
चंद्रगुप्त मौर्य और उसका काल	राधा कुमुद मुकर्जी
जयशंकर प्रसाद	आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी
जयशंकर 'प्रसाद'—जीवन, दर्शन, कला और कृतित्व	सम्पादक महावीर अधिकारी
दिल्ली सल्तनत	डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव
दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता	
धर्म निरपेक्ष प्राचीन भारत की प्रजातन्त्रात्मक परम्पराएँ	यदुनन्दन कपूर
नालन्दा विशाल शब्द-सागर	
पंजाब हरण और दिलीपसिंह	नन्द कुमार शर्मा
पाटलीपुत्र की कथा	डा० स० के० विद्यालंकार
प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन	किशोरीलाल गुप्ता
"प्रसाद" का काव्य	डा० प्रेम शंकर
"प्रसाद" के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन	डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा
प्रसाद की विचारधारा	डा० रामरतन भटनागर
प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक	डा० जगदीश जोशी
प्रसाद का साहित्य	डा० रामरतन भटनागर

प्रसाद साहित्य कोष	डा० हरदेव बाहरी
प्रसाद की कहानियां	केदारनाथ शुक्ल
प्राचीन भारत का इतिहास	डा. भगवत शरण उपाध्याय
प्राचीन भारत का इतिहास	डा. रमाशंकर त्रिपाठी
प्राचीन भारत का इतिहास	डा. सत्यकेतु विद्यालंकार
प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन	वासुदेव शरण उपाध्याय
प्रेमाश्रम	प्रेमचन्द
भक्ति का विकास	डा. मुंशी राम शर्मा
भारत का वृहत् इतिहास	राय चौधरी
भारत का वृहत् इतिहास	मजूमदार चौधरी तथा गुप्ता
भारत में अंग्रेजी राज्य के दो सौ वर्ष	केशव कुमार ठाकुर
भारत-भारती	मैथिलीशरण 'गुप्त'
भारतीय दर्शन शास्त्र का इतिहास	डा. देवराज तथा रामानन्द तिवारी
भारतीय दर्शन	पं० बलदेव उपाध्याय
भारतीय दर्शन का परिचय	डाक्टर रामानन्द तिवारी
भारतीय संस्कृति का विकास (वैदिक धारा)	मंगल देव शास्त्री
भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास	डाक्टर सत्यकेतु विद्यालंकार
भारतीय संस्कृति की रूपरेखा	बाबू गुलाबराय
भारतीय संस्कृति	शिवदत्त ज्ञानी
मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास	ईश्वरी प्रसाद
मुगलकालीन भारत	डाक्टर आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव
मुगल साम्राज्य का पतन	यदुनाथ सरकार
रंगभूमि	प्रेमचन्द
राजस्थान का इतिहास (हिन्दी अनुवाद)	टाड
राजपूताने का इतिहास	जगदीश सिंह गहलोत
राजपूताने का इतिहास	गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
रामचरित् मानस	गोस्वामी तुलसीदास
वृहत् हिन्दी कोष—विचार और वितर्क	डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी
विजयनगर साम्राज्य का इतिहास	वासुदेव उपाध्याय
वीर विनोद (प्रथम भाग)	
शंकर सर्वस्व	सं० पं० हरिशंकर शर्मा
शराबी	पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

संस्कृति के चार अध्याय	रामधारीसिंह 'दिनकर'
स्वतंत्रता और संस्कृति (हिन्दी अनु०)	डाक्टर राधाकृष्णन
संगीत सम्राट तानसेन, जीवन और रचना	प्रभुदयाल मीतल
साहित्य, सिद्धान्त और समीक्षा	डा. सरनाम सिंह
साहित्य, शिक्षा और संस्कृति	डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद
हमारे साहित्य निर्माता	शान्तिप्रिय द्विवेदी
हिन्दी-साहित्य कोष	
हिन्दी विश्वकोष (द्वितीय भाग)	
हिन्दी नाटक उद्भव और विकास	डाक्टर दशरथ ओझा
हिन्दी नाट्य साहित्य का इतिहास	डाक्टर सोमनाथ गुप्त
हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास	डाक्टर लक्ष्मीनारायण लाल
हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन	डाक्टर ब्रह्मदत्त शर्मा
हिन्दी की आदर्श कहानियाँ	सम्पादक प्रेमचन्द
हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि	डाक्टर विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास	डाक्टर शम्भूसिंह
हिन्दू राज-शास्त्र	अम्बिका प्रसाद वाजपेयी
हिमकिरीटनी	माखनलाल चतुर्वेदी

२. संस्कृत ग्रन्थ

अग्निपुराण	
अथर्ववेद	
अर्थशास्त्र	कौटिल्य
अभिज्ञान शाकुन्तल	कालिदास
आपस्तम्ब धर्मसूत्र	
ऐतरेय ब्राह्मण	
काव्य मीमांसा	राजशेखर
गौतम-सूत्र	
चाणक्य नीति	
छान्दोग्योपनिषद्	
जैमिनीय पुराण	
तंत्रालोक	अभिनव गुप्त
तंत्रासार	अभिनव गुप्त
तैतिरीय उपनिषद्	
धम्मपद	
नीतिसार	कामंद

ब्रह्मपुराण	
भागवत्पुराण	
मनुस्मृति	
मत्स्यपुराण	
महाभारत	
मार्कण्डेयपुराण	
याज्ञवलक्यस्मृति	
योगवासिष्ठ	
रघुवंश	कालिदास
राजतरंगिणी	कल्हण
ऋग्वेद	
वसिष्ठधर्म सूत्र	
वायुपुराण	
बाल्मीकि रामायण	वाल्मीकि
विदुर नीति	
विष्णु पुराण	
वैशेषिक दर्शन	कणाद्
शतपथ ब्राह्मण	
शिव पुराण	
शुक्रनीति	
श्रीमद्भागवतगीता	
स्वच्छन्द तंत्र	
हर्ष चरित्	

३. अंग्रेजी ग्रन्थ

अर्लीहिस्ट्री आफ इण्ड़िया	स्मिथ
अर्लीहिस्ट्री आफ इण्डिया	टी० एस० इलियट
इण्डिया इन कालिदास	भगवतशरण उपाध्याय
इण्डिया ऐज़ नोन टू पाणिनी	वासुदेव शरण अग्रवाल
इन्वेंशन आफ ऐलक्ज़ेन्डर	मैकडानल
ए शोर्ट हिस्ट्री आफ दि सिक्खस् (वाल्यूम फर्स्ट)	तेजसिंह एण्ड गण्डासिंह
कम्प्रिहैन्सिव-इंगलिश हिन्दी डिक्शनरी	
कल्चर एण्ड एनार्की	मैथ्यू आर्नल्ड

कॉर्पस इन्सक्रिप्शन्स इंडीकैरम — फ्लीट (वा० थर्ड)
कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया (वाल्यू० थर्ड, फोर्थ)
ग्लोरीज आफ इण्डिया — डा० पी० के० आचार्य
डिक्शनरी आफ पाली प्रापरनेम्स
दी एज आफ इम्पीरियल यूनिटी — विद्या भवन
दी एज आफ दि इम्पीरियलें
गुप्ताज — आ० डी० बनर्जी
नोट्स टुवार्डस दि डैफीनेशनआफ कल्चर — टी० एस० इलियट
नोट्स — कनिंघम
पोलिटिकल हिस्ट्री आफ एनशिएन्ट इण्डिया — राय चौधरी
प्रिमिटिव कल्चर — ई० बी० टायलर
बुद्धिस्ट इण्डिया — टी० डब्ल्यू० राइस—डेविस
मारक्विस आफ़ डलहौज़ी — सर विलियम विल्सन हंटर
रेशनल मिस्टिसिज्म — किंग्सलैण्ड
लाइफ आफ बुद्धा — राकहिल
वीमेन इन रिग्वेद — भगवत शरण उपाध्याय
वैदिक इंडैक्स
वैष्णविज्म एण्ड माइनर रिलीजियस
सिस्टम्स — रामकृष्ण गोपाल भंडारकर
स्टूडेंट्स हिन्दी संस्कृत डिक्शनरी — डा० रघुवीर
सोसाइटी — मैकजाइवर एण्ड पेज
हिस्ट्री आफ इण्डिया — ई. बी. कॉवेल
हिस्ट्री आफ सिक्खस् (वाल्यूम फर्स्ट) — हैनरी कोर्ट
हिस्ट्री आफ़ मोहम्मडन पावर इन इण्डिया — जान ब्रिग्स
हिन्दू पोलिटी — जायसवाल

४. पत्र-पत्रिकाएँ

कल्याग (हिन्दू संस्कृति विशेषांक) जनवरी १९५० गीता प्रेस, गोरखपुर
कल्याण (नारी अंक, १९४८), गीता प्रेस, गोरखपुर
धर्मयुग साप्ताहिक (१९५९)
संगीत (फरवरी १९५९)

++++